UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182494

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 Accession No. H2002

Author B57K
भट्टाचार्य, भवानी

Title कजली

This book should be returned on or before the date last marked below.

सलिला

को

स प्रे म

कजली

कापीराइट, १९४७

पहला हिन्दी संस्करण, १९५२

मूल्य चार रुपये आठ आने

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई।
मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

cked 1969

कापीराइट, १९४७

पहला हिन्दी संस्करण, १९५२

मूल्य चार रुपये आठ आने

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई।

मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

एक

एक नम्र, नपी-तुली, निराधार आवाज़; ऐसी रूखी आवाज़ जिसमें कोई उत्तेजना या आग न थी; इतिहास ने अपने लक्ष्य के रथ में इस आवाज़ को जोत लिया था, जिससे सहसा अंकुश खाकर वह गतिमान हो गई थी। राहुल जानता था कि प्रधान मन्त्री तर्क-संगत परिस्थितियों का कठोरतम दास है। फिर भी राहुल मन्त्र-मुग्ध-सा ध्यान-मग्न होकर आकाश-रश्मियों पर तिरकर आये इस दूरागत सपाट स्वर के आघात अपने कानों पर सहता रहा। उसने अपनी धमनियों में सनसनाहट का अनुभव किया जो रीढ़ से होकर घुटनों तक दौड़ गई थी। तनाव पाकर उसके अंग अवसन्न हो गए। लेकिन ज्यों ही साड़ी में लिपटी एक आकृति आहिस्ता-आहिस्ता दालान से गुज़रती नज़र आई वह अपने को झकझोरकर दरवाज़े की ओर भागा।

"माँ!" राहुल ने जीभ फेरकर अपने ओंठ गीले किये, "क्या हुआ माँ?"

वह मुड़ पड़ी और उसने इसके हृदय की वेदना भाँप ली। कितना भावुक लड़का है! उसके मुख पर माँ की स्निग्ध दृष्टि पड़ रही थी। क्या वह अपने को जीवन की कठोरताओं के योग्य न बना पायगा?

"अभी कुछ नहीं हुआ," उसने अपना सिर हल्का-सा फेरते हुए कहा, "वक्त क़रीब है। दस-दस मिनट पर दर्द उठ रहे हैं।"

इन शान्त, शीतल शब्दों ने उस पर घूसों-जैसा आघात किया। वह पीड़ा से सहम गया। उसने खड़े होने के लिए चौखट का सहारा लिया।

"सख़्त और भारी दर्द हो रहे हैं, होने भी चाहिएं। आधा घंटा और लगेगा राहुल, और फिर सब ठीक हो जायगा। तुम्हें लालों के लाल की चीख़ें सुनाई देंगी।"

आधा घंटा और! युग बीत जायंगे। लेकिन उसने अपने को सम्हालकर उत्तेजित विचारों को सुखमय कल्पनाओं से शान्त किया।

"पैदा होते ही वह चीखेगी?" उसके स्वर में उत्कंठा भरी थी। वह उसे देख रहा था, अपनी बेटी को—नन्ही-नन्ही मुट्ठियों को बाँधे, घुटने पेट से लगाये, और चेहरा अपनी नई हासिल की हुई चीख़ों से सिकोड़े हुए।

माँ अपने बेटे के लड़कपन पर मुस्करा दी—"हाँ हाँ, वह पैदा होते ही चीख़ेगा—अपने पूरे गले से। लेकिन जब तक तुम्हारी यह मशीन शोर मचाती रहेगी, तुम्हें सुनाई कैसे देगा, राहुल?"

उसकी निगाह मशीन पर जा पड़ी और वह कुछ देर तक सुनता रहा, उसके मुख की रेखाएं भी एकाग्र हो गईं।

"और वह ठीक इस युद्ध के बीच पदार्पण करेगी। माँ, तुमने सुना?" वह मुड़ा, उसकी आवाज़ काँप रही थी, शब्द अपने-आप फिसलते आ रहे थे। "वह सारी महान् जातियाँ, जिन्होंने अपना विकास करने के लिए शताब्दियाँ गुज़ार दी हैं, इस आग की लपट में फँस जायंगी। एक ज़बर्दस्त संघर्ष और असीम यातनाएं। इससे फ़ायदा? हाँ है, अगर यह उस बुराई का अन्त कर दे जिसने सभ्य जीवन का गला घोंट रखा है। और···ओह!" उत्तेजना के कारण कंठ में फँसे हुए शब्दों को उसने जैसे निगला, "ठीक इस वेला में वह जन्म लेने वाली है।"

माँ चिन्तित हो गई। "युद्ध? क्या शुरू हो गया? अरे, पंसारी

को ख़बर होने से पहले ही हमें आधे साल के लिए चावल और कड़वा तेल ख़रीद लेना चाहिए, भाव फिर आसमान पर चढ़ जायंगे।" वह रुकी और स्मृति में डूब गई। "ताज्जुब है, तुम भी लड़ाई के दिनों में ही पैदा हुए थे, राहुल! तब नर-संहार जारी था। कौनसा साल था?"

"माँ, मैं इतनी सफ़ाई से वक्त नहीं चुन पाया था। मैं आश्विन के मध्य में पैदा हुआ था," राहुल ने बीच में बात काटकर कहा, "लड़ाई शुरू होने के हफ़्तों बाद माँ! और इसकी सोचो कि आज ही पैदा हो रही है।"

माँ मुस्करा दी और बोली, "घीनी भी चाहिए, कपड़े भी। तुम दोनों लड़कों के लिए और तुम्हारे पिता के लिए मुझे सफ़ेद अंग्रेज़ी ज़ीन की ज़रूरत है और टीन में बन्द मक्खन और मछली की भी। तुम बालकों की जीभ पर अनोखे स्वाद चढ़ गए हैं। बंगाल की नदियों में छोटी-बड़ी हर किस्म की मछलियाँ ठूँसे नहीं समातीं, लेकिन बन्द टीनों की साल-साल पुरानी मछलियाँ ही तुम्हें और कुणाल दोनों को स्वादिष्ट लगती हैं। कितनी तेज़ बू आती है उनमें।"

अपने उदात्त भाव के कारण राहुल अपनी माँ की सांसारिक चतुरता के प्रति उत्साह न दिखा पाया। उसके कान फिर रेडियो पर जा लगे। मोटे चश्मे के नीचे उसकी तेज़ आँखें चमक रही थीं। माँ मुड़कर दालान से होती हुई चली गई।

"एक ही पीढ़ी में बरतानिया जर्मनी के विरुद्ध दूसरी बार युद्ध के मैदान में उतर रहा है।"

वायु-मंडल की गड़बड़ी से रेडियो में एक विस्फोट-सा सुनाई दिया और राहुल ने बिना सोचे-समझे घुण्डी को घुमाना शुरू कर दिया। रेडियो से कभी स्टुडियो-संगीत की ध्वनियाँ, कभी धुआँधार भाषणों के अंश सुनाई दे रहे थे कि सुई घूमकर ज़ीसन पर जा रुकी। एक फासिस्ट की कर्कश, दुनिया पर रौब गाँठने वाली आवाज़ सुनाई दी। राहुल ने घृणा से मुँह बिगाड़ लिया। एक महान् राष्ट्र ने गुण्डों के अनुशासन

में पड़कर दुनिया को नष्ट-भ्रष्ट करने का कार्य-क्रम अपना लिया था। यह राष्ट्र अब यह सोचने लगा था कि उसके जीवित रहने के लिए युद्ध अनिवार्य हो गया है, क्योंकि उसके दिल पर पराजय की भावना का एक भारी बोझ था जो उसका गला घोंट रहा था। और यह राष्ट्र सोचता था कि यूरोप की लाशों से पटी रण-भूमि में शायद उसका आत्म-सम्मान उसे फिर वापस मिल जाय। कितनी भयानक भूल थी। पराजय—जर्मनी के पुनर्जीवित होने की एक-मात्र आशा। इंग्लिस्तान की प्रतिक्रियावादी शक्तियों को अपने सजातीय नात्सी-दल को बरबाद करने दो। तभी जर्मनी फिर से ज़िन्दा होगा।

इंग्लिस्तान, हाँ इंग्लिस्तान भी तब अपने अनुदारपन्थी राजनीतिज्ञों द्वारा पैदा की हुई मूर्छा से जागेगा। इंग्लिस्तान तब नये प्रगतिशील नेतृत्व में नैतिकता के उच्च शिखरों को दीपक दिखायगा।

और इस तरह विश्व-संकट की इस वेला में राहुल अपने मन में गुनगुनाता रहा।

कहीं झपाटे से एक दरवाज़ा खुला। झट से उसने रेडियो बन्द कर दिया। सड़क का द्वार खुला और जैसे ही वह धड़कते हुए दिल से भागकर दालान में आया तो एक आवाज ने उसका अभिनन्दन किया—'हाल्ट!' खिलाड़ियों-जैसी फलालैन की पतलून पहने लम्बे छरहरे बदन का कुणाल अपने हाथ में टैनिस का बल्ला थामे लम्बे डग भरता हुआ अन्दर आया। "सैल्यूट!" उसने अपने-आपको आदेश दिया और जूते की एड़ियाँ खटकाकर चुस्ती से अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाया।

"दादा, मुझे सम्राट् की सशस्त्र घुड़सवार सेना के एक अफसर से अपना परिचय कराने की अनुमति दीजिये," उसने हाथ नीचे करके धीमी आवाज़ में कहा, "शायद आपने अभी तक खबर नहीं सुनी? आप-जैसे विद्वान् के अध्ययन-कक्ष में दुनिया की यह छोटी-मोटी बातें...!"

राहुल मुस्कराया। "क्या? मैंने नहीं सुना? इतना ही क्यों कुणाल, आज तो मैंने ड्रामे के नायकों को—उन सबको मैंने जैसे हू-बहू अपनी आँखों से देखा है। पार्लियामैण्ट में भाषण देते हुए प्रधान मन्त्री को मैंने सुना है, भारत के सम्बन्ध में होने वाली बहस को भी सुना है। और बर्लिन में मैंने समस्त मानव जाति के सबसे बड़े दुश्मन की भी एक झलक देख ली है···" कुणाल अपना हाथ हिलाकर जैसे कह रहा था कि बस-बस बहुत हो गया।

"यहीं मैं परास्त हो जाता हूँ। चार-पाँच साल आप योरप रह आए हैं। लार्ड में आप क्रिकेट खेले हैं, विम्बलडन का टेनिस-मैच, बर्लिन में ओलम्पिक, सब देखा है। जीवन की सब अच्छी चीज़ें आपने देखी हैं। भाग्य हो तो ऐसा हो! लेकिन अब मेरी बारी है। कैप्टन-बसु फौज के बख्तरबन्द अग्रभाग को लेकर सीगफ्रिड-लाइन के एक मोर्चे पर आक्रमण करता है, दुश्मन को नेस्त-नाबूद कर देता है और फौजी गज़ट में उसका नाम छपता है।"

"मेरा तो खयाल था कि लेफ्टिनेण्ट बसु अश्वारोही सेना में है।"

"जनाब लेफ्टिनेण्ट नहीं, कैप्टन बसु कहिए। किसी में योग्यता होती है तो उसको तरक्की भी मिलती है। कैप्टन बसु तो एक बख्तर-बन्द फौज की टुकड़ी का सैनिक है। पुराने ज़माने में वह शायद अश्वारोही-सेना में होता, लेकिन आज तो वह तीस टन के टैंक में चढ़कर चलता है। दादा, सच मैं मज़ाक नहीं करता। मैं आज ही यू० टी० सी० के कमाण्डर मेजर बर्ड से मिलने जा रहा हूँ। मुझे कमीशन मिल जायगा, ऐसा मेरा विश्वास है। थोड़ी-सी ट्रेनिंग तो मैं ले चुका हूँ—नायब अफसर आदि की।"

राहुल खामोश रहा; सोच में पड़ने से उसकी भौंहें खिंचकर आपस में मिल गई थीं। कर्मचेता कुणाल ने सही और ग़लत की व्याख्याओं में बिना उलझे ही अपने बारे में सहसा एक फैसला कर लिया था। युद्ध एक महान् साहसिक घटना होगी। युद्ध के उद्देश्यों से उसे कोई

मतलब नहीं। यह तो एक संयोग की बात है कि कुणाल प्रजातन्त्र की सशस्त्र शक्तियों के शिविर में होगा। लेकिन राहुल भी अपने मन में जीवन के सूक्ष्म मूल्यों की तुला थामे, आज फ़ासिस्ट आक्रमण के विरुद्ध प्रजातन्त्र के युद्ध में सक्रिय भाग लेने की वैसी ही प्रेरणा महसूस कर रहा है। पिछले वर्षों में क्या उसने इस युद्ध के छिड़ने की कामनाएं नहीं कीं ?

"मैं भी भरती हो जाऊँ···!" राहुल बड़बड़ाया, उसके स्वर में याचना का-सा एक विचित्र भाव था।

"आप ?" कुणाल ने घूरकर देखा, "अरे नहीं नहीं ! खगोल-विद्या और भौतिक विज्ञान के इतने बड़े अध्यापक कैम्ब्रिज के डाक्टर ! एक दिन आप किसी अनजानी सूर्य-रश्मि को खोज निकालेंगे या शायद तारक-रश्मि को ?" आर्द्र स्नेह से उसके मुख की सबल मूर्तिवत् रेखाएं कोमल हो गईं। वह अपने बड़े भाई से लगभग दो इंच लम्बा था। "तुम यहीं ठीक रहोगे, दादा ! नहीं तुम भरती नहीं हो सकोगे। जो भी हो, भाभी तुम्हें न जाने देंगी। रही मेरी बात, मैं असल में चाहता हूँ, कोई साहसिक कार्य, तीव्र गति। सोचो तो, क्या मैं सारी ज़िन्दगी दफ़्तर के काम में ही बिता सकता हूँ ? पिताजी सैकड़ों जगह मेरे लिए कोशिश करते रहे हैं।" वह एक क्षण के लिए रुककर सुनने लगा— "वह अभी एक-आध मिनट में ही आते होंगे। साइकिल से आते हुए मुझे अभी सड़क के कोने पर मिले थे। उनको इतना तेज़ चलते हुए तो कभी नहीं देखा। उन्होंने भी सुन लिया होगा। अच्छा तो मैं चलूँ।" वह फिर रुका, उसकी निगाह पत्थर की सीढ़ियों की ओर उठ गई। और उसने धीमे स्वर में कहा, "पैदा होने पर नवजात बालक को मेरी तरफ़ से प्यार कीजिएगा।"

"बालिका को····?" राहुल ने बिना ध्यान दिये ही कहा।

युद्ध का विचार मन से दूर हट गया और मंजु की आकृति पुनः सामने आ गई। वह कराह रही थी और आँसुओं ने उसकी दृष्टि को

धुँधला बना दिया था। उस दिन कुछ देर पहले उसने राहुल का हाथ पकड़कर हाँफते हुए कहा था, "यह सब तुम्हारी ही ग़लती से हुआ है। अगर तुमने मुझे पहले से गर्भ धारण न करने के लिए कह दिया होता।" लेकिन गर्भ तो उसे धारण करना ही था। मातृत्व की माँग उसके रक्त में निरन्तर प्रवाहित हो रही थी।

"बालिका!" कुणाल ने हक्का-बक्का होकर साँस खींची। फिर एक उत्तेजित चीख़ के रूप में उसका स्वर फूट पड़ा, "दादा!" वह अपने भाई के कन्धे पकड़कर झकझोरते हुए चिल्लाया, "तुमने मुझे बताया क्यों नहीं? क्या बच्ची हो गई? क्या खूब है! मैं तो इतना परेशान था। भाभी बेचारी···!"

उस समय राहुल को अपने भाई के प्रति प्रेम उमड़ आया। क्या कभी किसी ने सोचा भी था कि कुणाल इन बातों की भी चिन्ता करेगा! दिन-भर इधर-से-उधर भागा-भागा फिरता है; अपनी मर्ज़ी के सैंकड़ों कामों के पीछे, उसे अपने घर की बातों में दिलचस्पी लेने का समय ही कब रहता है? और फिर कोई अपने घर की छोटी-छोटी बातों में दिलचस्पी कैसे ले सकता है, जब कि वहाँ मैदान में बनर्जी इतने शानदार ढंग से क्रिकेट खेल रहा हो।

"अभी हुई नहीं। सिर्फ मैं यह आशा लगाये बैठा हूँ कि लड़की होगी।" राहुल भाई की ऊपर उठती भौंहों को देखकर निर्लज्जतापूर्वक मुस्करा दिया, "माँ नीचे आई थीं और कहा कि अब समय निकट है।" मुस्कान ढीली पड़ गई। "मंजु ठीक हो जायगी। उसकी देख-भाल करने वाले बहुत कुशल हैं। सिर्फ इसमें इतनी पीड़ा होती है···।"

"मुझे पीड़ा से नफरत है," कुणाल ने सहसा उद्वेग में भरकर कहा, "एक स्त्री की पीड़ा से। पुरुष यन्त्रणा झेल सकते हैं; वह सबल होते हैं। किन्तु स्त्रियाँ नहीं झेल सकतीं—माताएं, बहनें और पत्नियाँ।" कुणाल अपने आवेश से हड़बड़ाकर यकायक रुक गया। "लीजिए, पिताजी भी आ गए, और वह ज़रूर मुझे कोई-न-कोई नसी-

हत करेंगे।" वह अपना टेनिस का बल्ला घुमाता हुआ भागा।

पिताजी लगभग पचास वर्ष के स्थूल-काय व्यक्ति थे। उनके चौड़े भारी जबड़े वाले मुख पर सफेद होते हुए महीन काले बालों के नीचे से चमकती हुई चतुर आँखें; उनकी आकृति अपने दोनों बेटों से भिन्न थी। उनका अंग्रेजी लिबास उन पर फिट न बैठता था। काला चमकता हुआ अलपके का कोट, काली बो-टाई और सफेद ज़ीन की पतलून, जो उनकी तोंद पर खूब कसी होती और टखनों से एक इंच ऊपर उठी रहती। घड़ी की एक मोटी सोने की चेन उनके सीने पर लटकती रहती।

"तो जंग शुरू हो गई?" वह दालान में धीरे-धीरे टहलने लगे। उन्होंने मुड़कर पूछा, "राहुल, तुम्हारा क्या विचार है, लड़ाई कितने दिन चलेगी?"

"जब तक कि नये युग का जन्म नहीं होता," राहुल ने अपना उत्तर इस अन्दाज़ में दिया मानो ज़ोर से सोच रहा हो। "शीघ्र ही बदलकर यह साम्राज्यवादी युद्ध विचारों का, जीवन-मूल्यों का युद्ध हो जायगा। अनुदारदलीय नेताओं को ऐसे नारे लगाने पड़ेंगे जिनसे वह घृणा करते हैं और उन शक्तियों को आज़ाद करना होगा जिनसे वह भय खाते हैं।"

"सोना या लोहा?" समरेन्द्र यकायक बोल पड़े। उनकी आँखें संकुचित हो गईं। वह भी ज़ोर से सोच रहे थे।

राहुल हक्का-बक्का-सा रह गया।

"दोनों ही युद्ध की सामग्रियाँ हैं। युद्ध का पेट भरने के लिए इन दोनों की आवश्यकता है।"

समरेन्द्र ने धीरज खोकर अपना सिर हिलाया।

"अब भी नहीं समझे? मैं क्या खरीदूँ···सोने की छड़ियाँ, लोहे की सलाखें?" उनका स्वर धीमा और गम्भीर था, "सट्टे के बाज़ार में कल एक तूफान मच जायगा। जो पहले पहुँच जायंगे उनकी चाँदी होगी और बाकी अपनी किस्मत को रोयंगे। लोहे का भाव तेज़ी से

चढ़ेगा और सोने का भी। बोलो, इनमें से क्या लिया जाय? ज़िन्दगी में ऐसे मौके एक-आध बार ही आते हैं।"

युद्ध शुरू होने में कुणाल की खुशी का एक कारण था; उसी तरह पिता की खुशी का भी एक कारण था। "क्या तुम भी?" राहुल ने अपने-आपसे पूछा, 'कुणाल सैनिक बनने जा रहा है, पिताजी हिस्से खरीदने जा रहे हैं, और माँ चावल और कड़वा तेल···। किन्तु मैं?'

आधा घंटा बीत गया—सारी बातों के बीच एक यही विचार लगातार उभरता रहा। वह क्षण आ गया था जिस पर ज़िन्दगियाँ निर्भर करती हैं, एक कोमल धागे से इतना बड़ा भार टँगा होता है। मंजु को अगर कहीं कुछ हो जाय। नहीं! गत वर्षों से साथ रहकर वह अब उसके अन्तर्तम प्रदेश का एक अंग बन गई थी। फिर भी क्या उसने कभी-कभी मंजु के प्रति लापरवाही नहीं दिखाई? अपने काम में डूबे रहकर, क्या उसने मंजु को अनेक छोटे-छोटे सुखों से भी वञ्चित नहीं रखा? नहीं अब कभी ऐसा नहीं होगा। उससे वह जो-कुछ भी चाहती है, वह उसे मिलेगा—सब-कुछ। बस वह जीवित रहे, अपने मातृत्व में सुखी परिपूर्ण। यकायक शंख की ओ३म्-ओ३म् की ध्वनि ने उसे चौंका दिया। सीढ़ी के मोड़ पर माँ खड़ी थी।

"आओ, तुम दोनों आओ। द्वार पर खड़े होकर नवागता को जी भरकर देख लो—वह अभी नहलाई गई है—बड़ी-बड़ी आँखें गुलाब और मक्खन-जैसा रंग, बिलकुल अपनी माँ की-सी छवि पाई है।"

"अगर अपनी माँ की-सी शक्ल है, तब तो सचमुच वह बड़ी भाग्यवान् है," समरेन्द्र ने खुशी से खिलकर कहा, "हमें उसका वर ढूँढ़ने में नींद हराम नहीं करनी पड़ेगी।" उसने सन्तोष की हँसी हँसकर कहा, "राहुल, तुम पहले जाओ और प्यारी मुन्नी को देखो। मैं बस अभी आया। ज़रा दलाल को टेलीफोन कर लूँ। समझ गए?"

एक अनकहे विचार के मन में उठते ही उन्होंने अपने कन्धों को हिलाया। अरे, ऐसे मौके पर तो जब एक महायुद्ध छिड़ा हो और एक

फूल-सी सुन्दर पोती पैदा हुई हो, मुझे तो धनकुबेर होना चाहिए, नहीं समझे ?

"माँ, मन्जु ?"

माँ ने किंचित् मुस्कराकर कहा, "अभी पल मारते ही तुम उसे देख लोगे। वह कुछ थक गई है, लेकिन बड़ी खुश है। डॉक्टरनी को अपना काम समाप्त कर लेने दो।" और वह बच्ची को लेने चली गई।

चीख़ ! नवजात शिशु की पतली, निस्सहाय, दुराग्रही चीख़ ! राहुल जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया। वह उल्लास जिसने उसके हृदय को फुला दिया था। पतझड़ के इस मौसम में आज के दिन दो घटनाएं उसके जीवन में घटी थीं। प्रधान मन्त्री ने स्वस्तिका के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की थी और मंजु ने एक बच्ची को जन्म दिया था। दोनों ही घटनाओं से उसे इतना गम्भीर अनुभव हुआ था कि उसके भाव स्पन्दित हो गए थे, मानो आज उसने व्यक्तिगत पूर्ति पा ली हो। जैसे इस गम्भीर वेला में जब कि दुनिया की पुरानी सड़ी-गली व्यवस्था से मोह रखने वाले, एक राजनीतिज्ञ ने अनिच्छापूर्वक उस पुरानी व्यवस्था को ही अपनी कब्र खोदने के लिए आदेश दिया था। ऐसा लगता था मानो बच्ची का जन्म लेना लाक्षणिक अर्थ रखता हो।

हाँ, इस युद्ध की खूनी नदियों में स्वस्तिका के अतिरिक्त और भी बहुत-सी चीजें डूब जायंगी। लाखों नौजवान व्यर्थ ही अपने प्राण नहीं गवायंगे।

दो

नया दिवस—एक नये युग के ज्वलन्त अग्रदूत के रूप में—खिड़की के शीशों से होकर अन्दर फूट पड़ा और उसके जाग्रत विचारों को छूकर उनमें एक चंचल उत्सुकता भरने लगा।

पिछली रात की चिन्ताओं से मुक्त होकर वह आज अच्छी तरह सोया था। कल मंजु पीड़ा से दोहरी हो रही थी, उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में भय का आतंक छाया हुआ था—और अन्धेरी गली में, जब एक बिल्ली की अपशकुन-भरी म्याऊँ उसने सुनी तो यह भय एक निश्चित आशंका में बदल गया कि वह अब अपने बच्चे को देखने के लिए जीवित नहीं रहेगी। आह, वह इस भरी जवानी में नहीं मरना चाहती थी—इस बीस-इक्कीस साल की उम्र में जब कि उसके पास वह सब-कुछ था जिसकी कल्पना कोई औरत कर सकती थी। दर्द बढ़ने पर अपने पति की बाँहें पकड़कर, और फिर उसकी बाँहों को अपने वक्ष पर ज़ोर से दबाकर उसने अपनी असह्य वेदना को जैसे उसकी भी रक्त-शिराओं में उँडेल दिया, और राहुल जैसे उसकी आशंका की प्रतिध्वनि अपने अन्दर सुनकर उसके और निकट खिंच आया, और अपनी बाँह में उसका सिर उठाकर उसे ऊपर से ढक लिया, मानो किसी मरणान्तक आघात से उसकी रक्षा कर रहा हो। राहुल ने उसकी आँखों की पुतलियों को फैलते हुए देखा, जिनमें गहरे होते हुए भय की छाया अंकित

थी, मानो रात के समय यमराज अपने एक हाथ में आत्मा को बन्द करने वाली नलिका थामे, उसके सिरहाने खड़ा हो और जीवन-चिंगारियाँ बटोरकर उस नलिका में डाल रहा हो; जीवन के ज्योतिर्मय कण !

आज दुःस्वप्नों की वह घड़ियाँ बीत चुकी थीं। मंजु एक माँ बन गई थी और बच्ची तो मानो आनन्द की प्रतिमा थी ! सब-कुछ ठीक हो गया था।

मित्रराष्ट्रों को आखिरकार स्वस्तिका के विरुद्ध युद्ध का एलान करना पड़ा था। दुनिया की सभ्य चेतना के सहयोग से वे फासिज्म की महामारी को निर्मूल कर देंगे, और मौत के चंगुल से उसकी आत्मा को मुक्त कर देंगे। बड़े-बड़े दुर्ग धराशायी हो जायंगे, और केवल जर्मनी में ही नहीं। मित्रराष्ट्र जिस आदर्श का आह्वान कर रहे थे वह एक दो-धारी तलवार थी--जो आगे बढ़कर दुश्मन की सड़ी-गली व्यवस्था पर आक्रमण कर रही थी, और दूसरी ओर इस सड़ी-गली व्यवस्था पर भी। सब ठीक हो जायगा।

क्या भारत में भी सब-कुछ ठीक हो जायगा ? हाँ, भारत भी स्वस्तिका के जीवन के आदर्शों से घृणा करता है। भारत भी युद्ध में लड़ेगा। यह उसका ही युद्ध था।

राहुल बिस्तर छोड़कर उठ बैठा। इस समय वह खुशी से गा सकता था। लेकिन उसने ज़ोर से सीटी बजाकर यह सन्तोष कर लिया, मानो विश्व की शक्तियाँ उसकी लय पर नाच रही हों। अपनी कल्पना में कई बार पहले क्या उसने मुक्ति की खोज करने वालों की एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना संगठित करके फ़ासिस्ट महामारी के विरुद्ध धावा नहीं बोला था ? राहुल ने मुँह धोया और दाढ़ी बनाई। आज वह अपने रक्त में भारत की वाणी के स्पन्दन का अनुभव कर रहा था।

उसके विचारों की पृष्ठभूमि में मंजु थी, जो आगे आने को कसमसा रही थी। राहुल दौड़ता हुआ सीढ़ियों पर चढ़ गया। समाज की प्रथा नई माँ से एकान्तवास कराती है, और जिस कमरे में वह बच्चे को

जन्म देती है उसमें से वह यदि लड़का हुआ तो तीन हफ़्ते तक और अगर लड़की हुई हो तो एक महीने तक बाहर नहीं निकल सकती। मंजु बेचारी! उसकी दुनिया सिकुड़कर कितनी छोटी रह जायगी। हिन्दुओं की यह अन्ध-प्रथाएं देखने में अजीब लगती थीं और अब तेज़ी से मिटती जा रही थीं, लेकिन अगर इनकी तह में घुसकर देखें तो अक्सर उनमें एक आन्तरिक उद्देश्य छिपा दिखाई दे जाता है। आखिरकार मंजु के लिए यह अच्छा ही होगा। उसे लम्बे विश्राम की ज़रूरत थी। विश्राम से वह चंगी भी हो जायगी।

वह दरवाज़े पर ही ठहरकर सुनने लगा। वह निस्सहाय चीत्कार! वह एक तरह से भूल-सा गया था कि उसकी अपनी एक नन्ही-सी बच्ची है। आवाज़ें···माँ बार-बार आग्रह कर रही है। मंजु कह रही है कि उसे इस तरह से पीड़ा होगी। और बच्ची चीख़ रही है—उसके नन्हे-से शरीर के मुकाबले में फेफड़े अधिक मज़बूत हैं। मंजु को कौन सी चीज़ पीड़ा दे रही है? बच्ची का चीख़ना यकायक बन्द हो गया। ख़ामोशी। राहुल ने उत्सुकता से दरवाज़ा हटाकर अन्दर झाँका। एक क्षण में ही वह पीछे हट गया, ओठों को भींचकर मन-ही-मन हँसा। एक नई माँ का सौन्दर्य! एक नवयुवती का, जो अभी-अभी माँ बनी हो, अद्भुत रूप!

सीढ़ियों से उतरकर वह अध्ययन के कमरे में चला आया। एक नौकर चाय और समाचार-पत्र ले आया। मोटी-मोटी रेखांकित पंक्तियों पर उसने एक नज़र दौड़ाई। फिर समाचार-पत्र को दूर रखकर वह विचारों में डूब गया और उस खोई-खोई दशा में ही प्याली में चाय उँडेली। दृष्टिकोण बिलकुल साफ था। भारतीय जनता एक मत से दुनिया की प्रगतिशील शक्तियों के साथ थी। लेकिन किसी देश के लोग एक ऐसे युद्ध में भाग लेने के लिए मैदान में कैसे उतर सकते थे जिसके लिए दावे तो यह किये जाते हों कि वह [illegible] आज़ादी की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है, लेकिन वही आजादी उस देश के लोगों को प्राप्त

न हो ? गले में गुलामी का तौक पड़े भारत से कहा जाता है कि दुनिया की आज़ादी के लिए लड़ो।

लेकिन राहुल एक स्वप्निल मुस्कराहट से टकटकी बाँधे देख रहा था कि यह तौक और यह बेड़ियाँ टूट रही थीं उस महान् क्षण में। आज़ादी एक तूफ़ान बनकर यूरोप के देश-देशान्तर की सीमाओं को पार करके और समुद्रों को लाँघकर एशिया के देशों में हुंकार रही थी। युद्ध की यातनाओं में मानव-जाति की आत्मा शुद्ध हो जायगी। युद्ध के बाद की मानव-जाति युद्ध से पहले की मानव-जाति से भिन्न होगी।

द्वार खुला और आहिस्ता से माँ अन्दर दाखिल हुई। राहुल ने घूमकर देखा कि उसके मुख पर गहरे दुःख की छाप थी, और वह घबराकर बोला, "मंजु, कुछ गड़बड़ तो नहीं हुई ?"

माँ ने सिर झुका लिया। "वह तो अच्छी तरह है। रात को बच्ची रोई थी, पर ज्यादा नहीं।" माँ ठहर गई। "तुम्हारी चाय ठंडी हो गई है," माँ ने प्याली को छूते हुए कहा और उसे फेंककर फिर से चाय ढालते हुए बोली, "लो चाय पी लो, कहीं फिर ठंडी न हो जाय।" वह एक थकी हुई दीर्घ साँस लेकर दीवान पर बैठ गई।

"तुम्हारे मन पर कोई बात छाई है माँ! मुझे तो बताओ।" उसने अपनी कुरसी निकट खींचते हुए कहा।

माँ ने सिर हिलाकर हामी भरी, "हाँ, यह कुणाल···" आगे कहने से पहले वह फिर सोच में पड़ गई। "रातको प्रसूति वाले कमरे का द्वार कुणाल ने आकर खटखटाया। जब मैं बाहर आई तो दबी जबान से पूछा, 'भाभी अच्छी तरह तो हैं ? और नन्ही बच्ची !' और फिर उससे कहा, 'माँ मुझे तुमसे एक ज़रूरी बात कहनी है।' और उसका चेहरा लाल पड़ गया, मानो वह कोई पाप करके आया हो, और फिर वह मुझे अपने कमरे में ले गया और मुझे कुरसी पर बिठाकर, स्वयं फर्श पर मेरे चरणों में बैठ गया, और मेरी गोद में अपना सिर रखकर बोला, 'माँ, मैं युद्ध में जा रहा हूँ। तुम मुझको रोकना मत।' मैं भौंचक्की

रह गई। मैंने कहा, 'कुणाल, जब मैं मर जाऊँ तब तुम जहाँ चाहो चले जाना, मैं तुम्हें मना करने के लिए न रहूँगी। पर तब तक रुको।' उसने ऊपर को मुँह उठाकर कहा, 'माँ, तुम मुझे रूई के गुड्डे की तरह निकम्मा बनाकर रखना चाहती हो? इससे तुम मेरा दिल तोड़ दोगी।' मैंने उससे पूछा, 'उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जर्मनी के लोगों ने?' और उसने उत्तर दिया, 'माँ, मैं ऊँचे आदर्शों की सेवा करने नहीं जा रहा। मैं तो अपनी आत्मा के सन्तोष के लिए ···।' इतना कहकर वह उछलकर खड़ा हो गया, और व्याकुलतापूर्वक कमरे में टहलने लगा। उसके मुख पर उसके हृदय की भावनाएं अंकित हो गईं और तब मैं जान पाई कि मुझे उसके हृदय पर चोट नहीं पहुँचानी चाहिए, 'कुणाल, जो ठीक समझो वही करो। मैं अपना आशीर्वाद देती हूँ, बेटा!' वह गुम-सुम खड़ा रह गया, और फिर मेरे चरणों में झुक गया और मेरी गोद में मुँह छिपा लिया। उसकी आँखें गीली हो गई थीं। वह बोला, 'माँ, मैं ठीक हो जाऊँगा, मेरे कारण चिन्ता मत करना।' उत्तेजित होकर उसने सहसा अपना मुँह उठाकर कहा, 'क्यों नहीं, अभी इसी क्षण सारी दुनिया में लाखों माताएं अपने बेटों को युद्ध में भेज रही होंगी।'"

माँ के दुःख से दुखी होकर राहुल ने सोचा कि कुणाल तो ऐसा ही है। यह लड़का संकल्प करने में देर नहीं करता। उसके स्वभाव में द्विविधा कहीं नहीं है। यह उसकी शक्ति है; किन्तु उसकी कमजोरी भी है। अगर ग़लत मार्ग पकड़ लेता है तो उससे भी पीछे नहीं हटता। बस आगे बढ़ता ही चला जाता है—उसको ही प्रयोजन मानकर।

और मैं? राहुल ने दसवीं बार अपने से पूछा। खोज का काम स्थगित किया जा सकता है। आज दुनिया में जिस महान् नाटक का सूत्रपात हुआ है उसमें मुझे भी तो अपनी भूमिका खेलनी है। अखबारों में जो-कुछ छपा है, वह सच है। लेकिन इंग्लिस्तान के लोग वहाँ के राजनीतिज्ञों से अधिक सच्चे हैं। राजनीतिज्ञ तो केवल बातें ही बनाते

हैं, लेकिन लोग उन आदर्शों को अपने जीवन का साध्य मानकर चलते हैं। लोग केवल अपनी ही नहीं बल्कि दूसरों की आज़ादी की कीमत भी समझते जा रहे हैं। इनकी संख्या दिनों-दिन बढ़ती जायगी। जिन आदर्शों के लिए वह अपना रक्त बहायंगे, क्या उन आदर्शों को किसी को पैरों के तले कुचलने देंगे ?

"तुम्हारे पिता इस लड़के को न जाने देंगे। उन्होंने कहा है कि किसी दफ़्तर में उन्होंने उसके लिए एक जगह तलाश कर ली है। लेकिन अगर इससे लड़के को खुशी न हो तो क्या फायदा ?" माँ ने उदास मन से सिर हिलाकर कहा, "कहीं माँ अपने बेटे के दिल को तोड़ सकती है ?"

राहुल जानता था कि वह ऐसा नहीं कर सकेगी और मन-ही-मन असह्य वेदना सहती रहेगी। दोनों बेटों में कुणाल उन्हें अधिक प्रिय था। और वह चाहे इस बात को माने न, किन्तु राहुल को विश्वास था कि माँ कुणाल को ही ज्यादा प्यार करती थी। कुणाल युद्ध में लड़ने जाय—कितनी साहसी है माँ !

"तुम्हारे पिता पर एक अजब भूत सवार था। रात-भर वह एक पल के लिए भी नहीं सोये। घोर रात के बीच, जब पुलिस का चौकीदार सड़क पर रोज़ की तरह चोरों से सावधान रहने के लिए आवाज़ देता जा रहा था, उस समय मैंने उनके कमरे में जाकर देखा। तुम्हारे पिता, मेज़ के सहारे बैठे कागज़ों पर शेयरों का हिसाब जोड़ रहे थे। उस समय वे इतने उत्तेजित दिखाई देते थे कि मानो कोई बड़ी घटना होने वाली है।" दीवान छोड़कर माँ उठ खड़ी हुई, "राहुल, बेटी ने दूध पी लिया होगा, तुम अन्दर जाओ। तब तक मैं बच्चे के नहाने के लिए गरम पानी तैयार कराऊँ।"

माँ चौके की ओर चली गई। राहुल तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ प्रसूति के कमरे की ओर लपका। झालरदार जम्पर के खुले बटन से बाहर मंजु का उन्नत, गोल स्तन पूरा खुला था। स्तन के मुख पर दूध की

एक बूँद छलक आई थी। पके हुए फल की तरह उसके स्तन में भी एक नया भराव आ गया था। राहुल की निगाह के साथ उसकी दृष्टि भी अपनी छाती पर झुक गई और उसके मुख पर एक लाली दौड़ गई। अपने को ढकने के लिए उसने अपने निढाल पड़े हुए हाथ को उठाया, लेकिन राहुल ने बीच में ही रोककर उसका हाथ थाम लिया और कसकर दबा दिया। उसका मुख लाज से और अधिक लाल हो गया और आँखें झुक गईं तथा उसने अपने पति की इच्छा के आगे आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन उसके समर्पण करते ही राहुल ने भी समर्पण किया। उसने कोमलता से मंजु का हाथ छोड़ दिया और दुलार से उसने जम्पर को गले तक खींचकर उसकी छाती को ढक दिया। लेकिन वह दूध की बूँद उसकी कल्पना में बहुत देर तक झूमकर एक ऐसे भाव को उजागर करती रही जिसे वह दबा न सकता था, क्योंकि अब उसे ऐसा लगता था कि मंजु अब वह पुरानी मंजु न रही हो, जिसे वह जानता था और प्यार करता था। मानो वह पहले से कुछ अधिक और कुछ कम, अपने से दूर, अप्राप्य हो गई हो।

"मंजु, मैं कहता था न कि लड़की होगी सो लड़की ही हुई," उसने मृदु स्वर में कहा और पलंग की पाटी पर बैठकर वह झुक गया।

"बड़े चालाक हो। तुमने जो चाहा था सो तुम्हें मिल गया, लेकिन मैं तो लड़का चाहती थी।"

"तुमको निराशा हुई मंजु?"

उत्तर देने के लिए उसने अपनी बगल में टटोला और हाथ से बच्ची की कोमल और गरम देह का स्पर्श करके पाँव के अँगूठे से उसके सिर तक अपना हाथ फेरा और उसका मुख जैसे अपने में ही सीमित होकर रह गया हो।

"यह तुम पर पड़ी है, देखो। तुम्हारे-जैसे होंठ, तुम्हारी ही जैसी नाक!"

"और आँखें भी तो," राहुल मुस्कराया।

चश्मे के नीचे उसकी आँखें संकुचित और भूरे रंग की थीं और सीधी भौंहें एक-दूसरे से जुड़ी हुई थीं—"तब तो जरूर बड़ी सुन्दर होगी ?"

"सुन्दर तो है ही, और नहीं क्या ? तुम इसका मज़ाक उड़ाते हो। इसका नाक-नक्श रंग-रूप तो देखो ! तुम्हें गर्व नहीं होता ? इसे गोद में नहीं लोगे ?"

राहुल झुका और उसने अपने हाथ उस रहस्यमय अजनबी के नीचे सरकाये जो आँखें खोले पलकें झपका रही थी, और उसे एक बे-ढंगेपन से ऊपर उठा लिया। अरे ! इतनी छोटी (अपनी बाँह में लुढ़कते सिर को सँभालना एक ख़तरनाक काम है) ! बच्ची चीख़ उठी और उसने इस डर से कि उसने कहीं उसके किसी अंग को चोट तो नहीं पहुँचा दी उसे फौरन फिर बिस्तर पर डाल दिया और उसका नन्हा-सा लाल मुखड़ा चीख़ों से सिकुड़ गया। माँ ने घबराकर उसे अपनी छाती से लगा लिया और उसको चुप कराती हुई बोली, "न न, बेटी की माँ यहाँ है।" उसने अपने पति की ओर कनखियों से देखा और उसके होंठों पर विद्युत्-सी एक मुस्कान खेल गई, जिसने राहुल को आश्वस्त कर दिया। "यह तुम्हें अभी नहीं जानती, केवल अपनी माँ को ही पहचानती है।" और वह बच्ची को दुलराने लगी—"यह तुम्हारे पापा हैं, मेरी बच्ची, तुम्हारे पापा हैं।"

फिर भी एक विचित्र भावना राहुल के मन पर बोझिल होकर छाई रही कि मंजु अब पहले-जैसी मंजु न रही। वह पहले से कुछ अधिक और कुछ कम अज्ञेय हो गई है।

"मौका मिलते ही कुणाल युद्ध में लड़ने चला जायगा।"

मंजु ने सिर हिलाकर कहा—"माँ ने मुझे बताया है। बेचारी माँ ! चिन्ता के कारण रात-भर उनकी आँख नहीं लग पाई।" फिर उसने अपनी बच्ची की ओर एक सवेग दृष्टि से देखा और उसे अपने हृदय से

कसकर लगाते हुए कहा, "मुझे खुशी है कि यह लड़की है। यह तो लड़ाई पर नहीं जायगी। बेचारी माँ!"

"तुम तो इसका दम घोटे दे रही हो मंजु," राहुल ने नीचे देखकर घबराहट से कहा।

मंजु हँसी। होंठों के बीच उसके दाँत मोतियों-से चमक उठे। माँ अपनी प्यारी लाल मणि को चोट पहुँचा सकती है? बच्ची को अपनी छाती से दबाकर वह उस पर झुक गई। "इस प्यारी लाल मणि को कैसे सम्हालना चाहिए, क्या यह मुझे नहीं आता?" उसके नन्हे-नन्हे अँगूठे और गोल पेट चूमकर उसने कहा—"नहीं, ऊँ!"

इसी समय, जब मंजु अपनी सृष्टि में खो गई, राहुल सोचने लगा। मंजु को अब शायद उसकी तीव्र आवश्यकता नहीं रही। और उसने कहा—"अगर मैं भी चला जाऊँ तो?"

चौंककर मंजु ने ऊपर देखा—"तुम?"

साँस रोककर उसने पूछा, "हाँ, क्यों नहीं?"

"लड़ाई पर जाओगे?" मंजु की आँखें फैल गईं।

राहुल ने सिर हिलाकर हुंकार भरी। और सहसा जैसे वह बहुत दूर चला गया हो। मानो इस समय वह अपने से ही कोई पुराना भुगतान चुका रहा हो।

"इंग्लिस्तान से जब मैं वापस आया, उसके छः महीने पहले फ़ासिस्ट विद्रोही स्पेन की जनता द्वारा चुनी गई सरकार को बरबाद कर रहे थे; मैड्रिड पर घेरा डालकर उसका गला घोंट रहे थे। उस समय बहुत-से देशों से स्पेन में आज़ादी की रक्षा करने के लिए स्वयं-सेवक वहाँ गये। उन दिनों मेरी भी इच्छा हुई कि आज़ादी की उस सेना में नाम लिखा लूँ। रैलफ़ फ़ॉक्स गया। मेरे जाने-पहचाने और न जाने कितने लोग गये, फिर भी मैं रुक गया। मेरे पास इसका बहाना था—विज्ञान। सोचा कि इसके द्वारा मैं मानवता की अधिक सेवा कर सकूँगा और मैं अपने देश वापस चला आया। मेरे अन्दर यह घाव रह-रहकर

टीसें मारता है। आज आज़ादी की लड़ाई फिर शुरू हो गई है—आज तक की सबसे बड़ी लड़ाई। इस बार मैं क्या करूँ ?"

मंजु का मुख थोड़ा खुल गया और उसकी घबराई आँखें उसकी ओर एकटक देखती रहीं और जब तक उन्होंने उसकी वह दूर-दृष्टि पकड़ नहीं ली तब तक वहीं लगी रहीं। और तब उसने देखा कि उसकी वह दूर-दृष्टि एक छाया की तरह सिमटती गई। तब उसने राहुल को फुसफुसाते हुए सुना, "इतनी जल्दी नहीं है मंजु, अभी फ़ौजी-भरती शुरू नहीं हुई।"

मंजु ने बढ़कर उसके हाथ में अपना हाथ डाल दिया। वह उसे नहीं जाने देगी। नहीं, कभी नहीं जाने देगी। वह उससे अलग नहीं हो सकती—एक दिन के लिए भी नहीं।

"सब आदमी एक-से नहीं होते।" हृदय पर लगे आघात से त्राण पाकर उल्लास भरे उच्छ्वास से उसने कहा, "तुम्हारी उचित जगह तो तुम्हारी पुस्तकों के साथ, तुम्हारे गणित के साथ और कालेज के कमरे में रखे उन विचित्र यन्त्रों और औजारों के साथ है, जहाँ तुम मुझे एक बार दिखाने ले गए थे। तुम्हारे पास आकाश के नक्षत्र हैं। तुम उनके हो, वह तुम्हारे हैं। यह नक्षत्र और अदृष्ट ज्योतियाँ! तुम संसारी नहीं हो।" उसका स्वर स्नेह से कोमल और आर्द्र हो गया था। "तुम हमारी इस नन्ही बच्ची से अधिक संसारी नहीं हो।"

कुछ देर वह स्तब्ध-सा खड़ा रहा और फिर हिचकिचाकर बोला—"मैं इस बारे में बात करके देखूँगा।"

"हाँ, पिताजी से पूछ लो," मधुर किन्तु सवेग स्वर से मंजु बोली, "वह जानते हैं कि तुम्हें क्या करना चाहिए। बस पिताजी से पूछ लो।"

होंठ भींचकर राहुल ने सिर हिलाया, "पिताजी से ? वह इन बातों को समझते ही नहीं।" अपनी अश्रद्धा से लज्जित होकर भी वह कहता गया, "पिताजी केवल अपने काम की ही बातें जानते हैं।

वह इसकी परवाह नहीं करते कि दुनिया में क्या हो रहा है। वह उस जीवन और उस युग के आदमी हैं, जो बीत गया है।"

मंजु की आँखों में फिर भय की रेखा दौड़ गई। राहुल की मुट्ठी में उसकी पतली उँगलियाँ काँप उठीं। वह जानती थी कि राहुल किससे जाकर बात करेगा—दादा से, जो एक झक्की आदमी हैं। उनके विचार भी अजीब हैं। नगर के एक स्कूल की अध्यापकी से जब से रिटायर हुए थे तब से वह समुद्र के निकट के एक गाँव में अकेले रहते आए थे। वह एक किसान की तरह रहते थे। कुछ साल पहले, जब कांग्रेस ने सरकार के खिलाफ़ असहयोग-आन्दोलन शुरू किया तो यह बुजुर्ग उसमें कूद पड़े थे। उन्होंने किसानों और मछुवों को लेकर स्वयंसेवकों का एक जत्था बनाया और कानून का उल्लंघन करके समुद्र के पानी से नमक बनाने के लिए वह उस जत्थे को लेकर बंगाल की खाड़ी तक ले गए थे। जेल गए। सारे भारतवर्ष में उस समय एक ही महीने के भीतर कोई एक लाख आदमी और औरतें जेल चले गए थे। राहुल उन दिनों एक विद्यार्थी था। वह भी कोई ऐसी ही जल्दबाज़ी की हरकत कर बैठता—हाँ, जेल जाने को वह उतारू बैठा था—लेकिन पिताजी ने उस पर कड़ी निगाह रखी और ऐन मौक़े पर उसे पढ़ने के लिए इंग्लिस्तान भेज दिया। शादी के कुछ दिनों बाद ही पिताजी ने मंजु को यह बातें बताई थीं और उन दिनों के उत्तेजित और हलचल-भरे वातावरण में अपने इस मन-मौजी बेटे की रक्षा कर सकने के विचार से उन्हें कितनी खुशी और गर्व का अनुभव हुआ था। पिताजी विवेकशील और व्यावहारिक आदमी हैं; बूढ़े दादा की तरह झक्की और अनोखे विचारों के आदमी नहीं। सत्तर साल की उम्र हो गई और अब भी केवल अपने ही भरोसे वह एक कठोर जीवन व्यतीत करते जाते हैं—अपने सगे-सम्बन्धियों से दूर रहकर। जहाँ बीमार पड़ जायं तो कोई दूध का एक गिलास भी लाकर न दे। प्रपौत्री के जन्म होने पर भी क्या वह नहीं आ सकते थे और अपने लोगों के साथ रहकर अपनी

वृद्धावस्था के अनुकूल हम सबकी परिचर्या और हमारी श्रद्धा स्वीकार नहीं कर सकते थे?

वह राहुल से क्या कहेंगे? उसे कौन सी नेक सलाह दे सकेंगे? समझदारी की कोई बात भी तो नहीं बता सकेंगे— नहीं! लेकिन मंजु अपने पति के लिए लड़ेगी। वह लड़ेगी और हार नहीं मानेगी। वह अपने पति से अलग नहीं होगी। वह उसे आपत्तियों के मुख में जाते हुए नहीं देख सकती। और एक विदेशी सरकार की, जिससे तुम इतनी तीव्र घृणा करते हो, आज क्यों मदद करना चाहते हो? फिर यह बात संगत कैसे है?

"तुम लोग अपने में ही डूबे रहते हो," वह बड़बड़ाई और उसके होंठ फड़कने लगे, "अपने हृदय को इच्छा से बाहर पुरुष एक इंच भी इधर-उधर नहीं देखते। और मैं हूँ जिसने नौ महीने की यातना से छुटकारा पाया है। लेकिन अभी छुटकारा कहाँ? अपनी बच्ची के साथ अकेली इस चहारदीवारी में क़ैद हूँ। और तुम हो, जो अगर लड़ाई पर जाने के नहीं तो गाँव जाने के मनसूबे तो बाँध ही रहे हो। मुझे मालूम है कि तुम मुझसे ऊब गए हो।" उसकी आँखें डबडबा आईं—"सचमुच, सब मेरी ही ग़लती है।"

उसने मंजु की उँगलियों को अपनी मुट्ठी में दबा रखा था। "सिर्फ एक या दो दिन के लिए ही जाऊँगा, मंजु," उसने खेदपूर्वक कहा।

पर मंजु कहती ही गई—"सारी मानवता के लिए तो तुम्हारे दिल में दर्द है, सिर्फ अपनों के लिए नहीं। इस बच्ची की भी तुम्हें चिन्ता नहीं है। मुझे मालूम है तुम इसे नहीं चाहते थे। यह तुम्हारी कोई नहीं होती।" उसकी आँखों में आँसू उमड़ रहे थे। नहीं, नहीं, वह राहुल को कभी नहीं जाने देगी।

"मंजु, मैं अभी-अभी तो नहीं जा रहा। कोई विशेष जल्दी नहीं है। देखें आगे क्या होता है, हम इन्तज़ार कर सकते हैं, मंजु, सुनो तो!"

× × ×

क्लाइव स्ट्रीट में सोने की लूट मची थी। स्टॉक एक्सचेंज के दरवाज़े पर बेतहाशा भीड़ लगी थी, लेकिन उसका लम्बा, विशाल, गहरे कत्थई रंग का दरवाज़ा सिर्फ़ पैसे वालों के लिए ही खुलता था। सड़क के फुटपाथ पर, जिसे किनारे की दैत्याकार भूरे रंग की इमारतें अपनी छाया डालकर सूरज के कोप से बचा रही थीं, एक बड़ी भीड़ हलचल मचा रही थी, जहाँ आवाज़ें गूँजती थीं और दिमाग कशमकश में लगे थे। अन्दर दलाल और दलालों के एजेण्ट और उनके भी सहायक बाहर की भीड़ में खड़े अपने असामियों का आर्डर बुक करा रहे थे। और उनके असामी, जो आज इतने उत्तेजित थे कि घर पर बैठकर टेलीफ़ोन से चिपके न रह सकते थे, यहाँ आकर आर्डर-पर-आर्डर देते जा रहे थे—खरीदो, बेचो, फिर खरीदो ; खरीदो, बेचो, फिर खरीदो। धन के शहद की मक्खियाँ फुदक-फुदककर भिनभिना रही थीं।

दिल धड़क रहे थे। कनपटियों में रक्त की धमक सुनाई देती थी। बैंकों में धन जमा करने वालों की भीड़ धन से खेल रही थी। जिसने एक हज़ार बन्दूकचियों और एक जाली दस्तावेज को लेकर साम्राज्य खड़ा कर दिया था, इस क्लाइव की सड़क पर आज खूब चहल-पहल और गहमा-गहमी थी।

युद्ध के हथियार खरीदो—वह चीज़ें जिनसे बन्दूकें और बम के गोले बनाए जाते हैं। जंगी जहाज़ बनाने का सामान खरीदो। लोहा खरीदो। युद्ध लोहा खाता है। एक टन लोहे से फ़ौज के एक ब्रिगेड का सफाया किया जा सकता है। एक लाख टन लोहे से एक शहर का सफाया किया जा सकता है। दस लाख टन लोहे से सारी पृथ्वी को नष्ट किया जा सकता है। कोयला खरीदो—युद्ध की भुजाओं को गरम रखने के लिए। अपने लोहे के पंजों से आदमी ज़मीन की आँतों को चीर डालता है और जानवरों से भी ज्यादा गहरी खंदकें खोदकर उनमें छिप जाता है। एल्युमिनियम खरीदो—हवाई जहाज़ों के पंखों को एल्युमिनियम की ज़रूरत है। रेलें खरीदो—पहियों पर बेतहाशा

यातायात और इस यातायात से धन की कमाई। युद्ध पहियों पर सवार होकर चलता है—लोहे के पहियों पर रबड़ के पहियों पर। मलाया की रबड़ खरीदो, बाज़ार में रबड़ के शेयर नहीं हैं? सिंगापुर को तार भेजने से काम चल जायगा। सिंगापुर को एक के बाद दूसरा तार भेजते जाओ। सिंगापुर में हलचल मचा दो। कलकत्ता खरीद रहा है। ट्रकों और बख्तरबन्द गाड़ियों के पहियों के लिए रबड़। बर्मा का तेल खरीदो। युद्ध तेल के समुद्र में तैरता है।

भुगतान की क़िस्म की दर बढ़ गई है? ऊँची दर की किस्त पर खरीदो। किस्त की दर और चढ़ाते जाओ, और चढ़ाते जाओ। तीस फ़ी सदी, पचास फ़ी सदी, सौ फ़ी सदी हिस्सा। मृत्यु के यन्त्र बनाने के लिए हिस्से। प्रतिमास तोपों से दस लाख टन लोहे के गोले बरसाना। प्रतिमास दस लाख लोगों की मौत। मौत को हिस्सों में ढाल दो। हिस्सों को मौत में ढाल दो।

बेचो! मुनाफ़ा कमा लो। यह पहले-जैसा महायुद्ध नहीं। कुछ ही दिन चलेगी चटपट की लड़ाई। एक साल में फिर शान्ति! यह लोग आपस में लड़ना नहीं चाहते। जंगी लूट में ज्यादा लाभ है। नात्सी पूर्वी अफ्रीका ले लेंगे। नात्सियों को पेट भरकर हड़पने के लिए हब्शी मिल जायंगे। पूर्वी अफ्रीका में झरबेरी की तरह हब्शी पैदा होते हैं। शान्ति स्थापित होते ही मण्डियों पर वज्र गिरेगा। ऊँची दर की किस्त पर अभी बेच दो। टाटा का लोहा बेच दो। वह अमरीकी लोहे का मुकाबला नहीं कर सकता। मन्दी आ गई, बेचो!

खरीदो! फौज के लिए रूई खरीदो। सैनिकों को वर्दियाँ पहननी हैं। एक करोड़ वर्दियाँ! मुर्दा सिपाहियों की लाशों के साथ वर्दियाँ भी बेकार हो जाती हैं। जूते, ऊनी कपड़े। विदेशों में हिन्दुस्तानी सैनिकों को गरम रखने की जरूरत है—लाल इमली के ऊनी कपड़े।

खरीदने के लिए कितने पैसे हैं? पास-बुकें देख लो। जो-कुछ है सब दाँव पर लगा दो। दोस्तों से कर्ज लो। अपना घर गिरवी रख

दो। बेचो—अपना सोना बेच दो, अपनी बीवी के शरीर पर का सोना। चुटकी बजाते तुम्हारी रकम दूनी हो जायगी। एक के दो मकान खड़े हो जायंगे। एक क्या दस गलों में पहनाने लायक सोना हो जायगा। कीमत का एक-चौथाई ही अदा करो। बाकी रकम छः फ़ी सदी व्याज पर दलाल तुम्हारे नाम लगा देगा। बाजार-भाव चढ़ते ही बेच दो। दलाल की रकम चुकाकर मुनाफा अपनी जेब में डाल लो। तुम्हारी पूँजी दुगुनी-तिगुनी हो जायगी। मार्जिन सिस्टम पर बेचो। अपनी पूँजी जमा कर दो। उस हिस्से को बेच दो जो तुम्हारे पास है ही नहीं। बाजार-भाव जब गिरे तो कटौती के भाव पर खरीद लो और जो हिस्सा तुमने बेच दिया था वापस कर दो। जो मुनाफा बच रहे अपनी जेब में डाल लो। फिर देखना, तुम्हारी पूँजी दुगुनी होती है या नहीं!

जूट खरीदो! सामान भरने के लिए पटसन की बोरियाँ चाहिएं। बमों से बचने के लिए बालू-भरी जूट की बोरियाँ। कागज खरीदो—हाँ, हाँ, कागज भी जंग का हथियार है।

मौक़ा हाथ से जा रहा है। बीस साल में एक ही बार तो आया है। बीस साल तक अब फिर युद्ध न होगा। युद्ध, जो धनी बनाने वाला सबसे बड़ा उद्योग है। कीमतें आसमान छूने लगी हैं। लोहे की सब तरफ से माँग है। भीड़ में रेल-पेल मची है। धन के शहद के लिए मधु-मक्खियाँ भिनभिना रही हैं।

एक चौड़े जबड़े वाले मुख में तेज चालाक आँखें! चमकता हुआ काला अलपके का कोट। काली बो-टाई। टखनों से ऊँची पतलून। घड़ी की चेन के नीचे दिल में तेज धड़कन। देर हो गई; देर हो गई; देर हो गई।

खरीदो! युद्ध दस साल तक चलेगा और दूसरे देश बैठे देखते ही नहीं रह जायंगे—जापान, अमरीका। आज किस्तों में ही खरीदो।

बेचो! मुनाफे की नकद रकम मिलेगी। शान्ति किसी समय भी हो सकती है।

खरीदो और मैदान में डटे रहो। अभी सात साल तक युद्ध चलेगा।

तीन

सूर्यास्त के समय राहुल जिस दो कमरे वाले छोटे स्टेशन पर गाड़ी से उतरा, उसके दरवाजे तक सर्दियों में काटे गए धान के नंगे, सूखे, कहीं पपड़ियाँ पड़े खेत फैले हुए थे।

बाहर के सँकरे द्वार पर एक माधवी लता मेहराब बनाकर फैली हुई थी, जिस पर कोमल श्वेत फूलों के असंख्य गुच्छे खिले हुए थे। लेकिन उसकी जड़ वाली मिट्टी धूप से सूखी पड़ी थी और उसकी पीली निढाल पत्तियाँ जैसे रस की भिक्षा माँग रही थीं। मुग्ध होकर राहुल ठहर गया और उसने एक गुच्छे से अपनी नाक लगाकर उसकी मधुर गन्ध से अपनी श्वास भर ली। यह बंगाल है—उसके मन में विचार उठा। इतनी उपेक्षा और कठिनाइयों के बीच इतना सौन्दर्य बंगाल में ही पैदा हो सकता है।

इस छोटे स्टेशन पर यद्यपि रेल उच्च वर्ग के यात्रियों के कहने पर ही रुकती थी तो भी यह अच्छा ही था कि रेल गाँव के समीप होकर जाती थी। दादा यहाँ से ज्यादा दूर पर नहीं रहते थे। लाल मिट्टी की पगडण्डी पर केवल आध घण्टे ही चलना पड़ता था। एक हल्का-सा सूटकेस हाथ में उठाए राहुल तेज़ी से कदम उठाता हुआ आगे बढ़ा ताकि अंधेरा हो जाने से दिशा न भूल जाय।

सर्दियों और वसन्त के दिनों में वह लगातार अपने मन में व्याकुल

बना रहा था। विज्ञान उसके विचारों को थामकर न रख पाता था। नई विश्व-व्यवस्था का विचार क्या एक कोरा सपना था? मित्रराष्ट्र क्या केवल अपनी विजय के लिए ही लड़ रहे थे और इसके आगे उनका क्या कोई उद्देश्य नहीं था? क्या वे केवल सोगफ्रिड लाइन (रक्षा-पंक्ति) पर अपने कपड़े धोकर सुखाना चाहते हैं? उनके घोषित उद्देश्यों में कोई ऊँचा आदर्श नहीं था। एक भी ऊँचा आदर्श नहीं था; एक भी नहीं।

उसके स्वप्न का उन्माद जैसे ही कम हुआ मन में और सन्देह जगने लगे थे। राहुल को इस बात की जरूरत पड़ गई कि वह अपने दादा से मिलकर उनके सहज सरल विश्वास से अपनी आत्मा को नई स्फूर्ति और नया बल दे। कैम्ब्रिज की पढ़ाई से पहले के दिनों में उस पर दादा के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा था। जिसने उसके विचारों को अपने साँचे में ढालकर उसके हृदय में एक चिंगारी जला दी थी। कालेज की पढ़ाई समाप्त करके अभी वह निकला ही था। युवावस्था का उत्साह और उत्सुकता लेकर जब राहुल कालेज की पढ़ाई खत्म करके बाहर आया तो उस समय उसने अपने को राष्ट्रीय आन्दोलन के तूफान के किनारे खड़ा पाया और वह अपने गुरु के इशारे पर उसकी बीच धार में कूदने को तत्पर हो गया। घबराकर उसके पिता ने एक लालच दिया। कैम्ब्रिज की पढ़ाई या कारावास—उसने अपने मन में दोनों को तोला और चूक गया। उन दिनों जेल जाना एक तीर्थ-यात्रा बन गया था। उसने तर्क की दूसरी राह पकड़ी। अपनी मातृभूमि की सेवा में क्या हमें अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ अंश नहीं अर्पित करना चाहिए? एक विश्व-वंद्य महान् वैज्ञानिक बनकर उसका जितना हित मैं कर सकता हूँ क्या उससे अधिक किसी और ढंग से सम्भव है? इसके लिए कैम्ब्रिज से अधिक उपयुक्त शिक्षणालय और कौन है? नमक-कानून तोड़ना और जेल चले जाना, यह तो कोई भी कर सकता है। हजारों लाखों ने ऐसा किया है। क्या मैं अपनी महान् प्रतिभा और योग्यता के

बावजूद (और राहुल से अधिक अपनी प्रतिभा के बारे में इतना निश्चित और कौन हो सकता था ?) मरुस्थल में पड़ा सड़ता रहूँ ?

"कैम्ब्रिज तो फिर बाद को भी जा सकते हो," दादा ने कहा था। उनका स्वर हमेशा की तरह उतना ही कोमल लेकिन फौलाद की तरह दृढ़ था।

राहुल ने अपना सिर झुका लिया था, "यही एक अवसर है। बाद में वह मुझको पासपोर्ट न देंगे।"

"न सही, तब तुम्हारा बेटा एक आज़ाद प्रजातन्त्र का नागरिक होकर गर्व के साथ कैम्ब्रिज जायगा।"

राहुल हँस पड़ा था। उसका बेटा। उसने अपने जीवन का जो चित्र बनाया था उसमें उस समय विवाह का कोई स्थान न था। बेटे की बात खूब रही।

"इंग्लिस्तान के लोगों के विरुद्ध संघर्ष करने से पहले क्या मुझे यह नहीं चाहिए कि मैं उनको निकट से जान लूँ ?" उसने अपनी वकालत की।

इंग्लिस्तान के विरुद्ध तुम क्यों संघर्ष करो ? वे लोग अच्छे हैं। लोग सब जगह अच्छे हैं। हमारा संघर्ष तो इंग्लिस्तान के शासकों के विरुद्ध है, जिन्होंने अपने संकुचित स्वार्थों के लिए हमको गुलाम बना रखा है।"

इस प्रकार उसके मन में एक तीव्र संघर्ष चला था, पर कैम्ब्रिज ने विजय पाई। तब से वह बहुत बदल गया था। उन दिनों की भावोत्तेजनाएं यदि आज खो चुकी थीं तो वह अपने प्रति पहले से अधिक ईमानदार भी हो गया था। वह अब स्वीकार करने लगा था कि विज्ञान उसके लिए एक बौद्धिक आवरण के समान था। हिम-शीत वायु के झकोरों से बचने के लिए, जिसमें वह शरण लेता था, उस समय उसके मित्र अपने मन के काम को छोड़कर केवल आत्मा की पुकार सुनकर स्पेन चले गए थे। उस पुकार से अधिक मूल्यवान और जीवन में क्या था ?

सत्तर वर्ष से अधिक उम्र के दादा ने, जो इतने कोमल और कठोर थे, सदा अपनी आन्तरिक प्रेरणा के अनुकूल ही काम किया था। इस निर्णयात्मक घड़ी में वह क्या करे ?

पगडण्डी धुँधली पड़ गई और एक जगह दक्षिण-पश्चिम की ओर दो राहें उसमें से फूट गईं। पुराने समय में राहुल को गाँव के पथ परिचित थे, लेकिन इधर कई वर्ष से वह यहाँ नहीं आया था। इसलिए अनिश्चित होकर रुक गया। उसने इधर-उधर घूमकर निगाह दौड़ाई और देखा—दो किसान अपने कन्धों पर हल रखे फसल-कटे नंगे खेतों में से होकर आ रहे थे। राहुल अपना सूटकेस नीचे रखकर उनकी प्रतीक्षा करने लगा और जब वह निकट आ गए तो उसने मार्ग पूछा। अपने दादा का नाम लिया—देवेश। दोनों किसान अपना सिर खुजाकर सोचने लगे। फिर दोनों एक-साथ बोल पड़े, "देवता तो नहीं ? उनका घर इस ओर रहा—दो-तीन क़दम पर।"

राहुल ने सामने घूरकर देखा, "खजूर के कुञ्ज के आगे न ?"

"हाँ, आगे," उन दोनों ने सिर हिलाकर कहा, "दो-तीन क़दम पर।"

देवता ? उनके जाने पर राहुल आश्चर्य से सोचने लगा। दादा का नाम यह तो नहीं था। देवेश ! देवता नाम तो किसी का नहीं रखा जाता।

"उन्हें देवता क्यों पुकारते हो ? सिर्फ भगवान् को ही इस नाम से पुकारा जाता है," उसने कहा।

"ऐसा हम उनके प्रति अपने प्रेम के कारण करते हैं," किसानों ने कहा।

"प्रेम ? अरे, देवता की तो पूजा की जाती है। उससे प्रेम नहीं किया जाता।"

एक किसान ने मानो समर्थन में सिर हिलाया।

"हम लोग साधारण आदमी हैं, बाबू ! हम पढ़े-लिखे नहीं हैं—हमारे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। पूजा में हमें प्रेम दिखाई

देता है और प्रेम में पूजा। भगवान् की दया से उनका दिल बड़ा है।"

दूसरे आदमी ने बात और खोलकर समझाई, "जब हम उन्हें देवता कहकर पुकारते हैं तो उससे हमारी जिह्वा और आत्मा को फल मिलता है। हम तो बस किसान हैं, बाबू!"

ख़ामोशी और फिर "मेरे दादा हैं," राहुल ने कहा। उसका हृदय गर्व से फूल गया था।

"तुम्हारे···?" किसानों ने आश्चर्यपूर्वक पूछा और जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गए। और उन्होंने अपने कन्धे से हल उतारकर नीचे रख दिए और घुटनों के बल झुक गए और पृथ्वी पर माथा टेककर बोले—"हमारा प्रणाम लो।" और फिर वह उठे और उन्होंने उसके सूटकेस की ओर हाथ बढ़ाया—"मालिक, यह हमें दे दो।"

"नहीं, नहीं," राहुल ने कहा, "इसमें अधिक वज़न नहीं है।"

"मालिक, क्या हमसे नाराज़ हो गए?"

राहुल ने घूमकर उनके दुखी चेहरों की ओर देखा और मुस्करा दिया—"तुम्हारे पास उठाने को अपना बोझा क्या कम है?"

"मालिक," उन्होंने हाथ जोड़कर अनुनय की और एक ने दूसरे से दबी जबान में कहा, "हमारे रहते उनका पोता अपना सामान उठाकर चले? गाँव की हया-शर्म नहीं है? गाँव की अपनी इज्जत नहीं?"

और राहुल ठहाका मारकर हँस पड़ा और उनकी इच्छा के आगे झुक गया।

"वह देखो, खजूर का कुञ्ज पार करते ही," एक किसान चिल्ला पड़ा, "वह खुद इस ओर आ रहे हैं।"

राहुल ने देखा एक लम्बी-सीधी काया श्वेत खादी में लिपटी, उन्नत ललाट पर लम्बे रजत केश और एक लम्बी फहराती हुई श्वेत दाढ़ी। वह दादा ही थे। किसानों की तरह वह नंगे पैरों ही फिरते थे।

चरणों में झुकते हुए राहुल को अपनी भुजाओं में भरकर हृदय से लगाते हुए वह चिल्लाए—"राहुल! युग बीत गए, तब से तुम्हें नहीं

देखा। तुम्हारे विवाह के बाद से आज तक तुम्हें नहीं देखा।" फिर उसे पकड़कर आगे करते हुए दादा ने अपने पोते को एक बार ध्यान से देखा। "आओ तुम्हें एक बार जी भरकर देखूँ। बहुत दुबले हो गए हो। बीमार तो नहीं हो? कोई चिन्ता तो नहीं लगी है, राहुल?"

"सैकड़ों चिन्ताएं मन पर छाई हैं," राहुल ने करुण मुद्रा बनाकर कहा, "एक लड़की का पिता बनना हँसी-खेल नहीं है। आप कैसे जानेंगे? आपके तो बेटा ही हुआ है।"

"इतनी चिन्ताएं? बेचारा!" फिर दोनों किसानों की ओर उन्होंने मुड़कर कहा—"विन्दा, इस बकस को घर पहुँचा दो। हम कुछ देर में आयंगे।"

दादा में कोई परिवर्तन नहीं आया था, सिर्फ उनके माथे की रेखाएं कुछ और गहरी हो गई थीं। सिर के बालों और दाढ़ी की सफेदी से उनके मुख की कान्ति बढ़ गई थी। दादा पहले की ही तरह अब भी उसे सही मार्ग दिखायंगे। राहुल ने नए विश्वास के साथ सोचा। फिर कहा, "दादा, मुझे कहाँ ले जा रहे हो?"

"थोड़ी ही दूर। भात खाने को किसी ने बुलाया है। तुम्हें गाँव के लोगों से मिलाऊँगा।"

"बिना बुलाए अतिथि बनकर जाऊँ?" राहुल ने संकोच से कहा, "उनके यहाँ खाना···"

"राहुल, हमारा खाना बहुत साधारण होता है। हमारे भात के साथ और बहुत प्रकार के व्यंजन नहीं होते। मछली, मांस, दही, रायता, मिठाई—यह सब हमारे बस की बात नहीं है। वहाँ तुम्हें केले के पत्ते पर उबला हुआ चावल और मसूर की दाल; एक चुटकी नमक और एक नींबू; दो एक भुनी हुई शकरकन्दें, एक साग-पात की भाजी और शायद पीतल के कटोरे में थोड़ा-सा गाढ़ा औटा हुआ दूध भी मिल जाय। इस तरह यह बड़ी शानदार दावत होगी।"

"फिर भी दादा मैं एक अजनबी···"

"तुम क़तई अजनबी नहीं हो। वह मेरी बेटी का घर है। उन्होंने तुम्हारे बारे में सब-कुछ सुन रखा है।"

राहुल ने उनकी ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा, "तो इस गाँव में तुम्हारी एक बेटी भी है, और हमें पता भी नहीं?"

"मेरी एक बेटी भी है," दादा ने एक अपराधी-जैसी मुद्रा बनाकर कहा।

इस तरह वह अपने साधारण क्षणों में मित्रों की तरह आपस में बात करते थे और यह भूल जाते थे कि उनके बीच आधी शताब्दी का व्यवधान है। लेकिन तुरन्त अपना भाव बदलकर दादा ने गम्भीर स्वर से कहा—"यहाँ वरुणी गाँव में मेरे दर्जनों बेटे-बेटियाँ हैं। मुझे अपने लोगों को देखकर गर्व होता है। वह उतने तेजस्वी, ज्ञाता और सभ्य नहीं हैं जितने तुम नगर की हवा में पले हुए लोग होते हो। लेकिन ये अच्छे लोग हैं। सदियों की बर्बर कठोरताएं और जीवन की विडम्बनाएं भी मानव-मूल्यों के सम्बन्ध में उनका विश्वास मिटा नहीं पाईं।"

"तो मुझे भी गाँव के बारे में कुछ बताओ दादा," राहुल ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"यह अच्छा ख़ासा गाँव है—हमारा वरुणी। न बहुत बड़ा, न छोटा ही, सौ से कुछ ही कम परिवार इसमें बसते हैं। उनमें से चौथाई के पास ज़मींदार की पट्टे पर ली हुई ज़मीन है। एक चौथाई खेत मजदूर हैं, जिनके पास अपनी ज़मीनें नहीं हैं। अपने से ज्यादा भाग्यवान किसान-बन्धुओं के यहाँ मेहनत-मजूरी करते हैं। हर रोज के हिसाब से खाना-मजूरी लेकर उनके धान बोते और काटते हैं। बाकी बहुत सारे मछुए हैं। इस तरह धान के खेतों और नदी पर यहाँ का जीवन केन्द्रित है।"

"हमारे देशवासियों के प्रतिदिन की औसत आमदनी दो आने से भी कम है, ऐसा अनुमान लगाया गया है," राहुल ने कहा।

"इस संख्या पर विश्वास नहीं होता, यद्यपि इससे असलियत का अधिक पता नहीं चलता।"

दादा ने हामी भरी—"तथ्य और आँकड़ों से सचमुच उस समय तक असलियत का कुछ पता नहीं चलता जब तक कि उन्हें मानवीय अनुभवों द्वारा देखा-समझा न जाय। अपनी स्वल्प-सी आय के द्वारा ज़मीन रखने वाला किसान भी केवल दो जून भात ही खा सकता है। बुरे दिनों के लिए उसके पास कुछ भी जमा नहीं रहता। और जो खेतों में मज़दूरी करने वाले किसान हैं, उन्हें तो साल में उन दो-तीन महीनों को छोड़कर, जब वह खेतों में काम करते हैं, बाकी दिन भूखे पेट ही रहना पड़ता है। भारतवर्ष में ऐसे दस करोड़ किसानों को हमेशा भूखों रहना पड़ता है। ऐसे दिन विरले ही आते हैं जब उनको भर-पेट भोजन मिलता हो। ऐसे दिन उनके जीवन में त्योहार बन जाते हैं।" वह रुके और एक मिनट ख़ामोश चलते रहे—"भूखे और अधनंगे ये दस करोड़ प्राणी भला अपने लिए लम्बी-लम्बी धोतियाँ, जो उनके टख़नों तक आती हों, कहाँ से खरीद सकते हैं? राहुल, इससे तुम उस चरखे के सच्चे महत्त्व का अनुमान कर सकते हो जो हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रतीक है। हिन्दुस्तान की जनता, जिसकी औसत आय दो आना प्रतिदिन है, अपनी नग्नता को ढकने के लिए चरखा चलाकर खद्दर पैदा कर सकती है। लोग प्रायः इस मामूली-सी बात को नहीं समझ पाते।"

"बात मामूली है अगर हम दो आने प्रतिदिन का अर्थ समझ सकें।" उस समय राहुल बंगाल के उन असंख्य स्त्री-पुरुष किसानों की कल्पना कर सका, जो अपने साधारण चरखे पर श्वेत कोमल सूत कातते हैं और जिसे गाँव के जुलाहे पुरुषों के लिए खद्दर और स्त्रियों के लिए लाल किनारी की धोती के रूप में बुन देते हैं।

"जमीन का फिर से बटवारा होना ही चाहिए, लेकिन उसके साथ-साथ पैदावार बढ़ाने के लिए विज्ञान का भी पूरा उपयोग ज़रूरी है," राहुल ने विचारपूर्वक कहा। "हमारे खेत सूखे और उजड़े हैं।

चावल पैदा करने वाले दूसरे देशों के मुक़ाबले में इन खेतों की पैदावार सबसे कम है। उपयुक्त खाद, बीज और जुताई से—लेकिन जुताई के लिए इस आदिम प्रकार के हल का त्याग करके नए ढंग के हलों की ज़रूरत पड़ेगी—इस पैदावार को तिगुना बढ़ाया जा सकता है। जापान में ऐसा ही हुआ। हमारे यहाँ अपनी ज़रूरत से अधिक पैदा हो सकता है। क्या जमींदार पैदावार बढ़ाने में कोई दिलचस्पी नहीं लेता ?"

"जमींदार !" दादा ने जैसे उपेक्षा से कहा। और फिर उन्होंने बंगाल के ग्राम-जीवन का पूरा इतिहास कह सुनाया कि किस तरह बहुत दिन पहले १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी के एक कर्मचारी ने बंगाल के जमींदारों से मिलकर (इस्तमरारी बन्दोबस्त करके) हमेशा के लिए सरकारी कर बाँध दिया था। तब से जमीन की क़ीमत दस गुनी हो गई और रुपए का मूल्य गिर गया, लेकिन इस सरकारी कर में कोई अन्तर नहीं आया। दूसरी तरफ़ जमींदार और किसान के बीच कोई समझौता नहीं हुआ, जिससे उसके लगान की दर ऊपर चढ़ती गई। कर जमा करने के झंझट से बचने के लिए जमींदार अपनी जागीरों को पट्टे पर उठाते गए और स्वयं एक बँधी हुई आमदनी के सहारे निश्चिन्त विलास का जीवन व्यतीत करने के लिए नगर की कोठियों में जा बसे। ठेकेदार अपने से छोटे ठेकेदारों को, और वह उससे भी छोटे ठेकेदारों को जमीन का पट्टा देते गए। और इस तरह गाँव के मालिकों की तले-ऊपर एक श्रेणी बन गई। फसल चाहे जैसी हो किसान को अपने लगान की रक़म चुकानी ही पड़ती थी। तो फिर ऊपर के मालिक पैदावार बढ़ाने की चिन्ता क्यों करते ? उनकी दृष्टि में किसान जीवित मानवों का समूह नहीं है। किसानों का वर्ग उनके निकट एक कोयले की खान के समान है, जिसमें से मुनाफे के लिए कोयला निकालते जाओ—और अधिक मुनाफे के लिए और अधिक निकालते जाओ; और इसकी कभी चिन्ता न करो कि वह कभी खत्म भी हो जायगी।

दादा ने आगे बताया कि बंगाल के किसान अपनी सामर्थ्य के अन्तिम छोर तक पहुँच चुके थे और अब दम तोड़ रहे थे।

"यह जमींदार कैसा है दादू, जो आपके मकान के पास रहता है?"

"अरे, वह विपिन घोष," दादा ने कहा, "हाँ सुनो, उसकी भी अजीब कहानी है। विपिन हमारे ही गाँव में एक कारिन्दे के घर पैदा हुआ था। बड़ा होकर वह भी कारिन्दा बना। एक बार ऐसा हुआ कि हमारे पड़ोस के गाँव विष्णुपुरा के किसानों ने जत्थेबन्दी करके नियम से अधिक लगान देने से साफ़ इन्कार कर दिया। इसलिए अदालत की डिगरी पर उनके खेत कुर्क करके नीलाम कर दिये गए। लेकिन जमींदार के जिन दलालों ने ये खेत खरीदे थे वे किसानों की जत्थेबन्दी के कारण उन पर कब्जा नहीं कर पाए। तब एक दिन यह विपिन घोष डोली में चढ़कर कराहता हुआ थाने में पहुँचा। उसके कपड़े रक्त में सने थे। उसने रपट लिखाई कि बेदख़ल किये हुए किसानों ने, उनकी सभा के नेताओं ने, उस पर हमला किया है। इस पर वे लोग इसके शनाख्त करने पर तुरन्त गिरफ़्तार कर लिये गए और सजा देकर जेल में डाल दिये गए। किसानों की ताकत टूट गई और जमीन पर नये मालिक का हल चलने लगा। यह सारा मुक़दमा गढ़ा हुआ था। बाद को अपने मित्रों की मण्डली में बैठकर विपिन घोष ने इस झूठ के लिए डींग मारी थी। उसने खुद अपने को जमींदार के लोगों से एकान्त में जान-बूझकर पिटवाया था ताकि यह मुक़दमा गढ़ा जा सके। इसके लिए इनाम के तौर पर उसे अपने गाँव में चालीस बीघे मिले! यहाँ से शुरुआत हुई। इस साँचे के आदमी थोड़े से ही सन्तोष नहीं करते। एक चीज़ हड़पकर दूसरी और तीसरी चीज़ हड़पने के लिए लालायित रहते हैं। तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है कि विपिन बाबू आज वरुणी के मालिक हैं और एक कीमती पालकी में गर्व से बैठकर चलते हैं!"

"फिर किसानों के जीवन में कौनसी आशा बाकी है ?" राहुल ने विचारमग्न होकर पूछा !

"कौनसी आशा ?" सड़क पर भागते हुए पैरों की चाप सुनकर दादा ने ठहरकर पुकारा, "अनु !"

"दादू," पगडण्डी से होता हुआ एक दस-ग्यारह साल का बालक आया। उसने अपरिचित व्यक्ति पर एक आश्चर्य-भरी दृष्टि डाली। अनु साफ-सुथरे कपड़े पहने था। एक छोटी-सी घर की काती-बनी धोती और बिना बाँह का वास्कट।

"जूते अच्छे हैं ?" दादा ने पूछा। उनका स्वर स्नेह-द्रवित था, "अनु, पसन्द हैं तुमको न ?"

उत्तर देने के लिए बालक ने अपने पाँव उठाए और दस-दस क़दम आगे बढ़ गया—"सुनो, चर्र-मर्र," और वह फिर दृढ़ता से पाँव पटकता हुआ वापस आ गया। "कैसा चर्र-मर्र करता है ?" आनन्द के उद्वेग से उसकी आँखें चमक रही थीं। "मैं इस ओर आया उस ओर गया, चारों कोनों में घूम आया, आज तक किसी ने ऐसी चर्र-मर्र नहीं सुनी। गोदाम वाले ने ? उसने भी नहीं। वह भी कह रहा था।"

अनु चर्र-मर्र का आनन्द लेने के लिए फिर चल पड़ता, लेकिन बाबा तब तक झुककर उसके जूते के फीते बाँधने लगे थे। "देखो बेटा, इस तरह बाँधना चाहिए," उन्होंने एक फीता बाँधा, फिर दूसरा; और राहुल की ओर मुख उठाकर कहा, "राहुल, तुम्हारे पास भी ऐसे जूते नहीं होंगे जो अनु के जूतों की तरह चर्र-मर्र करें। कल मैं शहर गया था, वहाँ से यह जोड़ा ले आया था।"

राहुल उस लम्बी झुकी हुई काया की ओर देखता रहा जो एक किसान-बालक के जूतों के फीते बाँध रही थी।

कितनी प्रेममय, कितनी स्नेहशील काया थी यह ! फिर भी दृढ़ और राजसी। दादा राष्ट्रीय आन्दोलन के एक वयोवृद्ध नेता थे। तीन बार जेल गए थे। सात वर्ष जेलों में काटे। गाँव के लोग उन्हें देवता

कहकर पुकारते थे। इसमें आश्चर्य ही क्या था!

"अनु, भागकर घर जाओ और माँ से कहो, राहुल आया है—मेरा पोता राहुल। वह भी मेरे साथ आयगा।"

"अच्छा दादू", और फुर्ती से वह अपरिचित व्यक्ति के चरणों पर झुक गया। और फिर उठकर आधी मुस्कराती और आधी जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखकर खबर सुनाने के उत्साह को लेकर हवा पर चढ़कर भागा। लेकिन कोई तीस क़दम जाकर वह रुका और घूमकर पूछा, "दादू, दौड़ने से अगर जूतों की एड़ियाँ निकल गईं तो क्या होगा?" और फिर पाँव से जूते निकालकर उन्हें हाथों में लेकर वह नंगे पाँव ही भागा।

"अनु मेरी बेटी का सबसे छोटा बालक है," दादा ने उसे बताया, "इसका एक भाई है कनु, और एक बहन है कजली। कनु पहला है। तुम अभी देखना। और एक मंगला भी है।"

"वह इसकी दूसरी बहन है क्या?"

"मंगला! नहीं दूध देने वाली गाय है—परिवार की सखी।"

"और पिता कौन है?"

"वह साधु कहीं गया है। वह घर पर नहीं मिलेगा। वह किसान है। उसके पास थोड़ी-सी ज़मीन, कोई तीन खेत हैं और एक बैलों की जोड़ी। लेकिन उसकी आत्मा भजन और पर्यटन में रहती है। सचमुच वह गीतों के लिए ही जीवित है और उसके स्वर को सुनने के लिए शाम को सारा गाँव जमा हो जाता है। लेकिन अधिकतर वह बाहर ही रहता है; बीज बोने और फसल काटने के दिनों में गाँव आता है। नहीं तो एकतारा लेकर बंगाल के गाँव-गाँव और गली-गली की खाक छानता फिरता है। इसलिए लोग उसे साधु कहते हैं।"

जदि तोर डाक सुने केउ ना आसे
तबे एकला चलो रे
एकला चलो, एकला चलो एकला चलो रे!

"कैसा भला आदमी है," राहुल ने कहा। और उसके नेत्रों ने कल्पना से उस साधु को देखने की चेष्टा की।

"हमारे बंगाल के गाँवों में ऐसे बहुत लोग घूमते हैं," दादा ने कहा। "गीत हमारी जनता की आध्यात्मिक आवश्यकता है। हर गाँव का अपना कवि और साधु होता है। उन्हें वहाँ के लोगों का सहज प्रेम और आदर मिलता है," दादा कहते-कहते रुक गए। मानो उनका मन कहीं दूर पहुँच गया हो। फिर बोले, "राहुल, मैंने तुम्हारा प्रश्न सुना था—फिर किसानों के जीवन में कौन सी आशा बाकी है? तुम जानते हो कि राष्ट्रीय आन्दोलन में गाँवों ने पुनर्निर्माण के काम को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। हमारे आगामी जीवन का यही तो आधार होगा। ज़ाहिर है कि सरकार इस काम को पसन्द नहीं करती। वह और जमींदार किसान जनता से डरने लगे हैं। कई साल पहले एक बार, अब सोचकर अचरज होता है, इन लोगों ने बुद्धिजीवी वर्ग के मुकाबले में अपने को देश की मूक जनता के हितैषी बनने का ढोंग रचा था। बुद्धिजीवियों के विरुद्ध इसलिए, क्योंकि वह सबके लिए आज़ादी की गरम-गरम बातें करते थे। लेकिन अब समय बदल गया है। उनके चेहरों का नकाब उतर गया है। मैं गाँव वालों के लिए शाम को एक पाठशाला चलाता हूँ। इस पाठशाला पर दृष्टि रखने के लिए एक जासूस लगाया गया है। वह इसे तोड़ना चाहते हैं। जन-शिक्षा हमारे शासकों के लिए खतरे की चीज़ लगती है। वह जानते हैं कि दबे-पिसे लोग इससे जन्म-सिद्ध अधिकार के बारे में सचेत हो जायंगे; वह यह जान जायंगे कि उन्हें भी मनुष्यों की तरह जीवन बिताने का अधिकार है।"

"वर्तमान व्यवस्था के भीतर रहकर हमारा देश अब साँस नहीं ले सकता," राहुल ने कहा, "सब्र का प्याला भर चुका है। हमारे जीवन की गति आज रुद्ध हो गई है। लेकिन इस युद्ध ने परिस्थिति को बहुत जटिल बना दिया है। मैं हैरत में पड़ा हूँ दादू! और तुमसे सब बातें कर लेना चाहता हूँ।"

दादा ने मुस्कराते हुए सिर हिलाया, "हम कांग्रेस के अनुशासन से बँधे हैं। जब तक वह कर्म का आदेश न दे तब तक हम कुछ नहीं कर सकते राहुल ! हम फिर बातें करेंगे—अगर चाहो तो रात-भर बातें करेंगे। हमारे साधु का घर अब आ गया।" और उनके स्वागत के लिए अनु के जूतों की चर्र-मर्र निकट आती सुनाई दे रही थी। एक लम्बा दुर्बल बालक भूरे रंग की गाय की पीठ पर चढ़ा हुआ था। वह कूदकर नीचे उतरा। उतरकर राहुल से बोला, "प्रणाम करता हूँ।"

दादा ने परिचय कराया, "यह कनु है, यह मंगला है।"

"जीते रहो," राहुल ने दादा पर एक दृष्टि फेंकते हुए कहा। दोनों की आँखों में विनोद की एक झलक झिलमिला उठी; मानो दादा कह रहे थे, 'तुम हमारी देहाती भाषा काफ़ी जल्दी सीख रहे हो।'

कनु ने एक सपना देखा है। वह भी अपने पिता की तरह घूमता फिरेगा। उसमें भी गाने की प्रतिभा है। लेकिन बेचारे के कान बहते हैं।

छोटे-से दरवाजे में एक चमकता हुआ पीतल का लोटा हाथ में थामे एक लड़की नज़र आई।

"कजली है," दादा ने कहा। लड़की ने लोटा रख दिया और फिर राहुल के चरणों पर झुक गई। उसका रंग गोरा था और आकृति सुन्दर थी। उसकी अवस्था चौदह वर्ष की थी।

"जीती रहो," राहुल के होंठों पर शब्द चिपक गए। कजली उसके जूतों के फीते खोल रही थी। घबराकर राहुल ने अपने जूते उतार दिए। उसे मालूम न था कि ड्योढ़ी के भीतर चमड़े के जूते नहीं ले जाते। कजली फिर भी झुकी रही। अब वह पृथ्वी पर बैठ गई थी और सड़क पर लगी धूल साफ करने के लिए राहुल के चरणों पर लोटे से पानी डाल रही थी।

"नहीं, नहीं, यह क्या करती हो ?" अपने टखनों पर उसके हाथ

का स्पर्श अनुभव करके राहुल चिल्लाया और एक कदम पीछे हट गया, "लौटा मुझे दो।" और उसने हाथ बढ़ाया।

जैसे चोट खाई हुई दृष्टि से लड़की ऊपर देखने लगी—कभी राहुल की ओर, कभी दादा की ओर।

तब दादा ने कहा—"राहुल, यह भली किसान-लड़की है। इसके हाथ स्वच्छ हैं। उसको अपने पाँव क्यों नहीं छूने देते?"

राहुल और घबरा गया। "नहीं नहीं, यह क्या करती हो? मेरे पाँवों को छूने···मेरा मतलब है···"

"यह बड़े अच्छे ढंग से पाली हुई संस्कारी लड़की है। इसका आचरण-व्यवहार भारत की परम्पराओं-जैसा ही पुराना है। वह तुम्हारे नये शहरी विचारों के अनुकूल बनने के लिए अपने आचार-व्यवहार को कैसे त्याग दे? तुम घर के सम्मानित अतिथि हो न!"

उस समय राहुल ने देखा कि दादा इस घटना से आनन्दित हो रहे थे। वह मान गया। उसने एक कदम आगे बढ़कर मुस्कराते हुए कहा—"कजली, तो तुम्हारी ही बात रही। मेरे पाँवों में काफी धूल है।"

"दीदी," अनु ने उल्लास से चिल्लाकर कहा, "दीदी, यह तस्वीर देखो।"

दादा के हाथ में एक छपी हुई रंगीन तस्वीर थी। उसे उन्होंने कहीं अपने कपड़ों में छिपा रखा था।

उत्सुकता और उल्लास से उछलकर कजली खड़ी हो गई। एक क्षण के लिए अतिथि के चरणों को भूल गई। "मेरे लिए लाये हो दादा?"

"हाँ, तेरे लिए कजली!"

और जब दादा ने मुड़कर अपने पौत्र की ओर देखा तो उस समय उनके मुख पर गहरे स्नेह की रेखाएं उभर आईं; मानो बादलों में से किरणें छनकर कोमल बन गई हों।

"इस लड़की को तेज रंग के चित्र बहुत भाते हैं। उन्हें यह मिट्टी की दीवाल पर जहाँ-तहाँ टाँग देती है। इस तरह इसकी सौन्दर्य-भावना अपने को प्रकट करती है।" और गहरी करुणा और प्रेम से उनकी दृष्टि इस किसान-कन्या पर आकर टिक गई; मानो उस पर अनिर्वचनीय वरदानों को वर्षा कर रही हो।

चार

समरेन्द्र बाबू का तीर निशाने पर बैठा। साम्राज्य की सैन्य-शक्ति में उनका दृढ़ विश्वास इस बार काम आया। सट्टे के बाज़ार में दो विरोधी मत चल रहे हैं। इससे पहले कि नात्सी अजगर सारे पोलैण्ड को निगल जाय सोवियत रूस की फौजें वहाँ दाखिल हो गई थीं। कुछ लोगों ने सोचा कि सोवियत रूस ने इस प्रकार मित्र राष्ट्रों को चुनौती दी है और कुछ लोगों ने सोचा कि इससे नात्सियों का विद्युत्-गति से आगे बढ़ना रुक जायगा। इस घटना का सैनिक दृष्टि से क्या परिणाम होगा, सट्टे के बाज़ार को तो केवल इतने से ही मतलब था। मित्र राष्ट्र कहीं रूस से तो नहीं लड़ जायंगे? हाँ, लड़ जायंगे; और घबराए हुए सट्टेबाज़ अपने हिस्से बेचने लगे। नहीं लड़ेंगे; और सट्टेबाज़ अपने बेचे हुए हिस्सों को फिर से ख़रीदने के लिए दौड़ पड़े।

हर प्रतिक्रिया के अवसर पर समरेन्द्र नए-नए हिस्से ख़रीदते और अधिक-से-अधिक ऊँचे भावों पर बेचते जाते। उनके मन में सोवियत शक्ति के प्रति भय नहीं था, केवल घृणा थी। साम्राज्य अगर हथियार उठा ले तो उस तूफ़ान के सामने कौन टिक सकता है? जर्मन? हाँ, कुछ देर। रूसी? उनके पास लड़ने के लिए क्या धरा है! प्रतिक्रान्ति के बिना रूस जंग छेड़ने का साहस नहीं कर सकता। जिस समय लाल सेना किसी जगह मोरचे पर मार खा रही होगी, उस समय रूस के

अत्याचार-पीड़ित किसान एक होकर विद्रोह के लिए उठ खड़े होंगे और निमिष-मात्र में उस व्यवस्था का अन्त कर देंगे जिसने उनके घर उनकी ज़मीन, उनकी आज़ादी, उनकी नैतिकता, उनका खुदा और उनकी औरतें तक जब्त कर ली हैं; औरतें तो कहा जाता है कि वहाँ जमीन ही की तरह सामूहिक सम्पत्ति बन गई हैं।

और इस प्रकार समरेन्द्र अपनी जीत की रक़म बटोरते गए और फिर-फिर उसे अपने दाव पर चढ़ाते गए। उनके सामने बस एक ही फार्मूला था जिस पर उनको पूरा विश्वास था। सट्टे का बाज़ार ढेकली के तख्ते की तरह ऊपर-नीचे चढ़ता-उतरता है। उसकी प्रत्येक गति समरेन्द्र की गोद में मुनाफ़े के सोने की धूल फेंक जाती। और यह बढ़ती गई, जमा होती गई, उसके अम्बार लगते गए। यहाँ तक कि समरेन्द्र को भी उसे देखकर विश्वास न होता। बिना यत्न किये हुए मिला धन। अगर अब वह हाईकोर्ट की वक़ालत छोड़ दें तो उससे क्या फ़र्क पड़ेगा? एक वकील की हैसियत से जितना वह पाँच वर्ष में कमा पाते उतना उन्होंने पाँच-छः महीने में कमा लिया था और अगर इसी तरह उन्नति होती रहे तो! जैसे प्रभात की मद्धम रोशनी की आदी आँखों के सामने अचानक मध्याह्न की चमचमाती धूप खिल गई हो।

उसके मन में नए-नए विचार टकराने लगे। विचारों की धुन्ध-सी छा गई। अब वह केवल सट्टेबाज़ी की सफलताओं तक ही अपने को सीमित नहीं रखेंगे। बड़ा कारोबार? युद्ध शुरू होने से अवश्य ही एक भीषण आर्थिक उथल-पुथल मचेगी। भारत की अपार जनसंख्या क्या युद्ध की मशीनों के लिए गैस नहीं तैयार करेगी? मध्यपूर्व के देश भी अगर युद्ध की लपेट में आ गए तो क्या होगा, जैसा होना बिलकुल सम्भव है? समरेन्द्र अपनी आराम-कुरसी पर निढाल होकर लेट गए और दीवार पर लगी चमकते फ्रेम की तस्वीर देखने लगे; मानो वहाँ से रोशनी प्राप्त करना चाहते हों। सम्राट् और सम्राज्ञी! कुछ ही दिन पहले एक दूसरी तस्वीर बदलकर यह तस्वीर लगाई गई थी, क्योंकि

उन दिनों का सम्राट् कुछ दिन राज्य करने के बाद तख्त से उतरकर एक ड्यूक बन गया था, राजकुमार भी नहीं रहा। समरेन्द्र को उस समय धक्का-सा लगा। ऐसी कौन सी ग़लत बात हो गई थी? एक तलाक़ दी हुई स्त्री से उसने विवाह कर लिया था—यही न! लेकिन अंग्रेज़ी कानून और रीति-रिवाज से तलाक़ क्या सम्मत नहीं है? समरेन्द्र ने फिर इससे आगे नहीं सोचा। ग़रज़ भी क्या थी? उसके लिए तो राज-मुकुट का महत्त्व था, इससे ग़रज नहीं थी कि उसको सिर पर रखने वाला कौन है। और उसने भूतपूर्व सम्राट् का चित्र निकालकर गोदाम की अंधेरी कोठरी में फेंक दिया था।

"राहुल, तुमने रात बी० बी० सी० की खबर सुनी। हवाई सेना के मन्त्री ने एक शानदार तकरीर की," समरेन्द्र ने एक दिन सुबह चाय पीते हुए अपने पुत्र से कहा। "नार्वे के तट पर अंग्रेजो फौजों के उतरने के बाद की यह बात है।" कुणाल हमेशा की तरह तीन घूँटों में प्याले की चाय समाप्त करके कमरे से बाहर चला गया था। माँ चौके की ओर जा चुकी थी। राहुल अपने पिता के साथ बैठा रह गया था। उनके बीच एक खाली कुरसी का अन्तर था, जिसकी पीठ पर अलपके का एक काला कोट टँगा था, जो अपने पहने जाने की प्रतीक्षा कर रहा था।

"मैंने सुना था," राहुल ने कहा।

"बड़े दुःख की बात है कि मैं भूल गया। तुमने मुझे बताया क्यों नहीं? यह भाषण देखो पहले ही पृष्ठ पर यहाँ छपा है," समरेन्द्र ने अखबार की ओर अंगुली से संकेत करके अपना गला साफ किया, "सुनो, *'आज हमारे पंख उत्तरी ध्रुव पर फैले हुए हैं। उन पर बरफ जम गई है, लेकिन कल विजय के सूर्य की स्वर्ण-रश्मियाँ उन्हें आकर चूमेंगी'।*" समरेन्द्र ने इसके बाद दो-तीन पंक्तियाँ मन-ही-मन पढ़ीं। फिर अपना स्वर ऊँचा करते हुए उन्होंने नाटकीय ढंग से वायु में अपना घूँसा ताना, "*और जो पंख उत्तरी ध्रुव के विशाल समुद्रों पर चमक रहे हैं वही पंख हमें आज़ाद जनता के सम्मान और एक श्रेष्ठ जाति*

की विजय पर आधारित शांति प्राप्त करने के लिए घर वापस ले आयंगे।" उन्होंने रुककर गर्व और उल्लास की साँस ली और कहा, "कितना अच्छा होता यदि मै भी इन महान् शब्दों को सुन पाता, राहुल ! एक श्रेष्ठ जाति की विजय···!" उनका स्वर भाव-विभोर था।

"मैंने तो आधा भाषण सुनकर ही बटन दबा दिया था," राहुल ने कहा। उसके होंठ घृणा से कठोर हो गए थे। "अभी कुछ दिन की ही बात है कि आज़ाद जनता के इस ठेकेदार ने अपनी ही तरह के एक फ्रांसीसी के साथ मिलकर एक आज़ाद देश को बेच देने का षड्यन्त्र रचा था और साथ ही वह लोगों का सच्चा हितैषी और मित्र होने का दम भी भरता जाता था।"

"तुम्हारा इशारा अबीसीनिया की ओर है ?" चतुर आँखों में उपेक्षा भर आई थी, "इसमें हर्ज क्या था। मुसोलिनी अबीसीनिया के लोगों को सभ्य लोगों की तरह रहना सिखा देता। तुम तो इटली गए हो। पूरी गर्मियाँ तुमने वहीं बिताईं। कम-से-कम तुम्हें तो समझना चाहिए, राहुल !"

राहुल समझता था। इटली में हर प्रकार की आज़ादी का जिस तरह गला घोंटा गया था उसका विचार करके ही उसके मुख पर उद्विग्नता झलक आई। और स्पेन के वे नगर, जिन पर फ़ासिस्टों ने बम बरसाये थे, उसकी आँखों में झूल गए। क्या इसे ही सभ्य लोगों की तरह रहना कहते हैं ? लेकिन पिताजी यह बात कभी नहीं समझेंगे। अगर इंग्लिस्तान में पैदा हुए होते तो टोरी दल के अनुदारपंथी होते। भारत में पैदा होकर तो वे उनसे भी बुरे आध्यात्मिक बन्धनों में ग्रस्त थे—उनकी तरह के लोगों ने ही, जो ह्रास-काल में पैदा होते और पाले-पोसे जाते हैं। हाँ, इन्हीं के तरह के लोगों ने हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों की गुलामी को इतने अरसे तक सम्भव बनाये रखा है। भौतिक लाभ की दृष्टि से उन्हें इसका पूरा पुरस्कार मिल चुका है। इस समय एक विश्व-व्यापी युद्ध पुरानी आस्थाओं को निर्ममतापूर्वक कसौटी पर

कस रहा है। यह युद्ध जैसे एक युग पुरानी समस्याओं को उस्तरे की धार से काट रहा था। सम्पूर्ण मानव-जाति के जीवन में आज संकट छाया था, लेकिन उसके पिता के मन में नहीं। उनका मन आज भी सदा की तरह संवेदनहीन और अडिग था। गुलामी के गर्त में डूबा हुआ यह मन युद्ध को सोने की फसल काटने के एक अवसर के रूप में ही देखता था। देवता के ये पुत्र! कितना कटु व्यंग्य है? देवता ने कभी इस घर में पाँव नहीं रखा, यह अचरज की बात नहीं। चोट खाए और दुखी मन से उसने अपने पिता की ओर देखा। उसके कटु उपेक्षापूर्ण विचारों के सामने उसकी श्रद्धा और उसका प्रेम सहम गया।

"नार्वे की लड़ाई का सही महत्त्व समझते हो?" पिता ने कहा। "दुश्मन ने, जैसा कि सम्राट् की हुकूमत ने कहा है, *कुचलवाने के लिए अपना सिर ऊपर उठाया है।*" उनके मुख की रेखाएं कठोर पड़ गईं और बोलते-बोलते उन्होंने मेज़ पर हाथ मारा। चाय की प्यालियाँ खनक गईं।

दूर देश में लड़ा जाने वाला वह युद्ध उनके मन में अपने समीप लड़े जाने वाले युद्ध से मिलता-जुलता था—भाव चढ़ाने वालों और भाव गिराने वालों के बीच सट्टा-बाज़ार की लड़ाई। अंग्रेज़ी फौजों का संकट अंग्रेज़ी साम्राज्य का संकट था और शेयरों की कीमत तेज़ी से नीचे गिर गई थी। तब अंग्रेज़ी फौज़ें नार्वे में उतारी गई हैं, शाही वायु-सेना ने उत्तरी ध्रुव पर अपने पंख फैला दिए हैं। अब भाव चढ़ाने वालों की बन आयगी और वह अपना बदला चुका लेंगे। समरेन्द्र की इच्छा हुई कि वह ठहाका मारकर हँसे। दुश्मन ने अपना सिर कुचलवाने के लिए ऊपर उठाया है! सट्टे के बाज़ार में भाव चढ़ाने वाले आज कुछ ऐसा ही अनुभव कर रहे थे। हाँ अब वह अपार धन कमायंगे। वायु-सेना के मन्त्री के भाषण का राहुल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। लगता था कि युद्ध-नीति वह समझता ही नहीं था। दरअसल वह एक विद्वान् आदमी है, उसे युद्ध-नीति से क्या मतलब? लड़के का यह

भी नहीं मालूम कि उसके पिता अपनी साम्राज्य भक्ति के कारण और परिस्थिति की ऊँच-नीच को सही मापने की योग्यता के कारण धन के अम्बार लगा रहे थे; हाँ धन के विपुल अम्बार! और यह सब-कुछ वह अपने बेटे की खातिर हो कर रहे थे। उनके चरणों पर आज धन की राशि पड़ी थी, लेकिन उनकी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएं एक चावल के कटोरे से अधिक न थीं। उतनी ही आज भी थीं जितनी जीवन के उन वर्षों में थीं जब ग़रीबी ने उन्हें दास की तरह बाँध रखा था। राहुल और कुणाल अब हृदय को जलाकर क्षार करने वाली उन चिन्ताओं से मुक्त रहेंगे जिनसे उनका संघर्ष और पीड़ा से भरे उन वर्षों में पाला पड़ा था और वह छोटी नन्ही बच्ची तो, जो अब आठवें महीने में थी अब वैभव में पलेगी—राजकुमारियों की तरह, उनकी-जैसी साड़ियाँ पहनेगी और हीरे-मोतियों के आभूषण; समाज में गर्व से सिर उठाकर चलेगी और बड़ी होकर एक बड़े दहेज के साथ सम्राट् की सिविल सर्विस के किसी बड़े अफसर से विवाह करेगी।

जीवन के इस चित्र की कल्पना करके समरेन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने पुत्र की ओर देखा। उनकी आँखों से स्नेह टपक रहा था।

इसी समय एक भयानक दृश्य उनकी आँखों में घूम गया। नेसिल्स के दूध का एक डिब्बा, जीवन के पूर्वार्ध की एक तुच्छ घटना। एक सहपाठी 'मैस' में बैठा अपनी चाय में, इस गाढ़े विचित्र दूध को उँडेल रहा था और वह देख रहे थे। "इसका स्वाद कैसा है?" उन्होंने पूछा था। उनके मुख और स्वर में उत्सुकता थी; आँखें फैल गई थीं। लेकिन उस सहपाठी ने कुछ हँसकर मुँह बिचकाते हुए उस टीन को उठाकर अलग रख दिया था। उस समय उनके हृदय में कितनी आग लग गई थी। उन्होंने मन-ही-मन कसम खाई थी कि वह संघर्ष करके इस ग़रीबी से अपना पिंड छुड़ायंगे और जब उनके पास पैसे हो जायंगे तो वह इस दूध का पूरा डिब्बा बैठकर एक ही बार में उड़ा जायंगे···फिर।

उन्हें जीवन में बहुत रुपया जमा करने का अवसर मिला, लेकिन तब मन की अवस्था बदल गई थी। फिर भी डिब्बे में बन्द दूध की घटना उनके मन की अतल गहराइयों में सदा छिपी पड़ी रही। उसके बेटे अब उन सुखों का पूरा आनन्द लेंगे जिनकी वह व्यर्थ ही कामना करते रहे थे—इसका वह पूरा प्रबन्ध कर जायंगे। उनकी मुट्ठियाँ बँध गई थीं, रुपया चाहे पानी की तरह ही क्यों न बहाना पड़े, लेकिन वह इसका पूरा प्रबन्ध कर जायंगे। इस प्रकार अपने बेटों के माध्यम से वह अपनी ही अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति कर लेंगे।

"पुलिस वाला आया है, मालिक," द्वार पर खड़े होकर एक नौकर ने यह चौंका देने वाले शब्द कहे। उसके मुख पर आतंक छाया था; "पुलिस वाला है, मालिक!"

"कौन पुलिस वाला? पागल हो गए हो, रघुवा!"

"इन्स्पेक्टर है, मालिक!" उसने मालिक की ओर आँखें फाड़कर कहा। मानो अपना आतंक वह उन तक पहुँचाना चाहता था।

समरेन्द्र को जैसे काठ मार गया और उनका मुख पीला पड़ गया और उन्होंने ज़ोर से कुरसी का हत्था थाम लिया। फौजदारी वकील की हैसियत से उनका बड़ा नाम था और काम के दौरान में पुलिस के अफ़सर उनसे अक्सर मिला करते थे। लेकिन उनके ही द्वार पर पुलिस का आना! उनकी कल्पना ने भयानक चित्र गढ़ने शुरू किये और उनका मुख सूखता गया। घर की तलाशी होगी, राहुल गिरफ़्तार कर लिया जायगा। राहुल ही गाँव गया था और वहाँ जाकर सम्राट् के विरुद्ध किसी कार्य में फँस गया होगा। एक राज-द्रोही भाषण दिया होगा। दादा ने उसको उकसाया होगा—यह तो स्पष्ट है। अपनी ढलती उम्र में दादा को अपने परिवार के प्रति कोई ममता नहीं रही है। कानून के फौलादी पंजों में अपने पौत्र को झोंकते हुए उन्हें एक बार भी पीड़ा न होगी। केवल एक विचार के लिए, एक पागल सपने के लिए वह ऐसा कर सकते हैं। और लड़का? उसने किताबें ही चाटी हैं, पर अनुभव-हीन

है। जीवन की वास्तविकताओं का उसे ज्ञान नहीं। उसे सदा किसी की नेक सलाह और संरक्षण की आवश्यकता है। उनके हृदय में अपने बूढ़े पिता के प्रति कटुता भर गई और गोला बनकर उनके कंठ में अटक गई।

"नीचे जाकर मैं देख आता हूँ," अपने पिता के मौन से व्याकुल होकर राहुल ने कहा। लेकिन समरेन्द्र ने अपना सिर हिलाया—"नहीं नहीं!" और स्नेह, भय तथा पीड़ा-मिश्रित दृष्टि से अपने पुत्र को एक-टक देखने लगे।

सहसा फिर सीढ़ियों के नीचे से किसी की आवाज़ आई, "अपने मालिक से कह दो कि गवर्नमेण्ट-हाउस से आया हूँ, मुझे कुछ पूछ-ताछ करनी है।"

'गवर्नमेण्ट-हाउस से,' इन शब्दों का मन्तव्य ग्रहण करने में समरेन्द्र को एक मिनट से अधिक समय लग गया और तब जैसे सन्तोष की एक लहर उनके अन्दर दौड़ गई और उन्होंने लम्बा श्वास खींचकर कहा—"माँ मेरी, हे दयालु काली माँ!" और निढाल होकर उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। फिर एक क्षण में वह उठे और लम्बे डग भरते हुए दरवाज़े से बाहर हो गए।

राहुल कमरे से बाहर जाने ही वाला था कि आगन्तुक ने प्रवेश किया और उसके पिता ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर बड़े गर्व से उसका परिचय कराया, "डॉ० राहुल बसु, मेरा सबसे बड़ा पुत्र; कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय का डी० एस-सी०।" और एकाएक अपने अतिथि को भी अचम्भे में डालते हुए वे खिलखिलाकर हँस पड़े और उनका मुख ख़ुशी से चमकने लगा, क्योंकि कानून का सेवक गिरफ़्तारी करने नहीं आया था। बेटा सुरक्षित था, सुरक्षित। उसके लिए अब उन्हें चिन्ता नहीं करनी थी।

राहुल को सारे तथ्यों का पता चला। उसके पिता ने गवर्नमेण्ट-हाउस में जाकर मेहमानों के रजिस्टर में अपने दस्तख़त कर दिए थे

उन दिनों इस बात का रिवाज़ था कि जो राज-भक्त और उच्चवर्ग के नागरिक होते थे, वह गवर्नमेण्ट-हाउस के पश्चिमी द्वार पर एक रजिस्टर में अपना नाम और पता लिख देते थे। इससे उन्हें लाटसाहब की गार्डन-पार्टी में कभी बुलाए जाने का अवसर मिलने की आशा रहती थी। फिर भी मेहमानों की सूची बनाने और निमन्त्रण-पत्र भेजने से पहले पुलिस के बड़े दफ़्तर की ओर से हर अतिथि के बारे में सख़्त जाँच-पड़ताल की जाती थी।

पुलिस का अफ़सर अपनी नोट-बुक में लिखता जा रहा था।

"मासिक आमदनी · · · अनुमान १२०० रुपए। बस, इतनी ही!"

"भद्र मनुष्य बनने के लिए क्या इतनी आमदनी पर्याप्त नहीं है?" कुछ विनोद-भरे और कुछ अप्रसन्न स्वर से समरेन्द्र कहते गए, "अपनी आमदनी को अधिक बढ़ाने से लाभ भी क्या है? इनकम-टैक्स ही हड़प जायगा। समझ गए न?" वह पुलिस-अफ़सर के मुख की ओर देखते रहे और मन में सोचते रहे, 'मेरे ऊपर अभी क्या बीती थी; कितनी जल्दी बुख़ार चढ़ता और उतरता था? जब यह घटना राहुल की माँ को सुनाऊँगा तो वह फ़ौरन मन्दिर में जाकर काली माई के चरणों में कृतज्ञतापूर्वक माथा टेकेगी।'

जाने से पूर्व पुलिस-अफ़सर ने आश्वासन दिया, "यह उत्सव अगले महीने की बीस तारीख़ को होना तय पाया है। आपको भी निमन्त्रण मिलेगा।"

समरेन्द्र ने मुस्कराकर सिर हिलाया; मुख से अपार हर्ष व्यक्त हो रहा था। यह उनके जीवन का एक सुनहला अवसर था।

"तुमको भी वहाँ चलना चाहिए, राहुल! कैम्ब्रिज की डी० एस-सी० की डिग्री, अपने कुशल वार्तालाप, अंग्रेजी आचार-व्यवहार की जानकारी, इन सबके कारण तुम वहाँ अच्छा प्रभाव डालोगे। बड़े-बड़े अफ़सरों की गोष्ठी में तुम अपनापन अनुभव करोगे। एक बार तुमने किसी लार्ड के साथ खाना खाया था; है न? बातचीत में इस

बात का उल्लेख कर देना; यों ही चलते-फिरते। मानो वह कोई तुम्हारा अनन्य मित्र हो। और सुनो, मोटर लेकर गवर्नमेण्ट-हाउस के पच्छिमी द्वार पर अभी क्यों न चले जाओ और वहाँ अपना नाम, डिग्रियाँ और पता आदि लिख आओ ?"

उत्तर देने के बजाय विशेष ढंग से अपने होंठ बन्द किये राहुल अन्दर-ही-अन्दर मौन हँसी हँसता रहा।

"यह मेरी इच्छा है, देखते नहीं ? हम जिस जमाने में रहते हैं, वह कितना असाधारण है ? यह युद्ध हमारे लिए जैसे भगवान् का दिया हुआ सुनहला अवसर है।"

"हमारे लिए ?" राहुल हैरान रह गया। जब तक कांग्रेस आदेश न दे उस समय तक वह इधर या उधर कुछ नहीं कर सकता था।

"हाँ, मेरे लिए। सिर्फ़ शेयरों की बात नहीं कहता। मेरे दिमाग में और भी बड़े-बड़े विचार आ रहे हैं।" समरेन्द्र ने रुककर गला साफ़ किया—"और तुम्हारे लिए भी मेरे दिमाग में अभी एक नारे की रूपरेखा बनी है, 'विज्ञान द्वारा विजय प्राप्त करो।' हर युद्ध में अस्त्र-शस्त्रों की यान्त्रिक श्रेष्ठता रखने वालों का ही पलड़ा भारी रहेगा। इसलिए गुप्त हथियारों की ज़रूरत है। इस बारे में तुम्हारा भौतिक-शास्त्र और ज्योतिष-विज्ञान भी तो कुछ कर सकता है।" उनके मुख से उत्सुकता टपक रही थी। "इस बात पर सोच लो। इसी को अपना काम बना लो। दिन-रात इसमें एक कर दो। मानो कोई कठिन परीक्षा की तैयारी कर रहे हो और इन लोगों को भी पता चलने दो कि तुम युद्ध के लिए कितना क़ीमती काम कर रहे हो। सोचो तो, इससे तुम्हारा कितना मान बढ़ जायगा। हो सकता है कि तुम्हें कोई ख़िताब मिल जाय और इतनी कम उम्र में देखते नहीं; है न ?"

ख़िताब ! बढ़ते धन के साथ सपना भी बढ़ता गया। यहाँ तक कि अब वह उन्माद बन गया। एक ख़िताब अपने लिए भी; रायबहादुर—राय बहादुर समरेन्द्र बसु। और तब उन्होंने एक क्षण में ही वह

निश्चय कर डाला, जिसके बारे में वह एक सप्ताह से मन में डावांडोल हो रहे थे। वार-फण्ड में दिल खोलकर चन्दा देंगे। क्या पता यह शेयर-बाज़ार से भी बड़ा सट्टे का खेल निकले ? एक बड़ा दाँव फेंकना चाहिए। उन्होंने अपने कन्धे हिलाए। उन्हें अपने कुछ हिस्से बेचने पड़ेंगे। कौनसी बड़ी बात है ? आख़िर उन्हें भी तो आत्म-सन्तोष के लिए कुछ खर्च करने का अधिकार था। और फिर इस ख़र्च के भीतर भौतिक लाभ की संभावनाएं भी निहित थीं। ये सम्भावनाएं क्या थीं—वह अभी नहीं जानते थे। मन में विचारों की धुन्ध छाई थी। उनकी रूपरेखा धीरे-धीरे स्पष्ट हो जायगी तब, तक उन्हें अपनी तैयारी करनी चाहिए। पहला काम पहले करना ठीक होता है। खिताब राज-भक्ति की निशानी है। कल्पना-लोक में ही इस लक्ष्य की प्राप्ति करके उन्होंने सम्राट् के चित्र की ओर दृष्टि उठाकर देखा।

× × ×

लेकिन साम्राज्य ने उनको धता बता दिया।

शिशिर से लेकर बसन्त तक इतिहास के पैरों में बेड़ियाँ पड़ी रहीं। ये बेड़ियाँ पैन्ज़र दस्तों के आघातों से सहसा टूट गईं। यूरोप मृत्यु की शय्या पर पड़ा कराह रहा था। और मृत्यु पर भी हावी हो जाने वाले सैनिक अपनी वीरता की अमिट निशानी छोड़ जाने के लिए इकट्ठे हुए।

समरेन्द्र को साम्राज्य के नाश की अनिवार्यता का अनुभव करके हार्दिक दुःख होना चाहिए था, लेकिन स्वयं उनके सिर पर नाश के जो बादल मँडरा रहे थे उन्होंने उनकी अन्य भावनाओं को जैसे दबा दिया।

कलकत्ते का सट्टा बाज़ार ठप्प हो गया।

कुछ समय तक बाज़ार अच्छे दिनों के लौट आने की प्रतीक्षा करता रहा। लेकिन नार्वे से अंग्रेजों के पलायन ने जैसे इस पर बम गिरा दिया। फिर यूरोप के देशों में नात्सियों के सदर्प घुस जाने से जैसे इस बाज़ार का मेरु-दण्ड टूट गया। अंग्रेजी फ़ौजों को पछाड़ती हुई जब

नात्सी सेना सेडान तक चढ़ आई तो सट्टे के बाज़ार के पाँव के नीचे से जमीन खिसक गई; वहाँ पर जैसे आतंक छा गया। मित्र-राष्ट्र हार रहे थे। भारतवर्ष पर स्वस्तिक का झण्डा फहरायगा; नात्सी इस ओर बढ़ते आ रहे थे। राष्ट्रों के सम्मेलन में भारत के भाग्य का निर्णय होगा और सम्राट् के मुकुट का यह सबसे बड़ा हीरा उसी तरह किसी के हाथ सौंप दिया जायगा जिस तरह कागज का चैक चैक-बुक में से फाड़कर दे दिया जाता है।

साम्राज्य की अपार शक्ति में यदि इतना अन्ध-विश्वास न होता तो सम्भव था कि समरेन्द्र मामूली खरोंच खाकर ही बच जाते। नार्वे के पतन के बाद भी अगर वह अपने शेयर बेच देते तो विशेष हानि न होती। लेकिन उन्होंने पार्लियामेण्ट में दिये गए किसी सदस्य के उस भाषण को पढ़ा था, जिसमें इस बात की शिकायत की गई थी कि कुछ लोग व्यर्थ ही नार्वे की हार को लेकर राई का पर्वत बना रहे हैं और उसने बड़े गर्व के साथ कहा था—*'सौभाग्य से हमारा नेतृत्व एक ऐसे प्रधान मन्त्री के हाथ में है जिसे आसानी से विचलित नहीं किया जा सकता, जिसमें इतना धैर्य और साहस है जितना हममें से बहुतों में नहीं है।'* और समरेन्द्र के हृदय में इन शब्दों की अनुकूल प्रतिध्वनि हुई थी। उन्होंने उनके विश्वास को बल पहुँचाया था। 'बेचो!' यह आवाज़ उठाई गई थी और उनके दलालों ने उनसे बार-बार आग्रह किया था। लेकिन समरेन्द्र ने अपने शेयर नहीं बेचे। वह उन सब शेयरों को दबाए बैठे रहे। वह भी विचलित नहीं होंगे। वह भी धैर्य और साहस दिखायेंगे।

और तब ऐसे दिन आ गए कि घंटे-घंटे पर उनकी सम्पत्ति हज़ार-हज़ार रुपये का घाटा देने लगी और फिर हिस्से बेचने का समय हाथ से निकल गया।

और तब ऐसे दिन आये जब जनरल वेगाँ की तरह वह भी आख़िरी खन्दक की दलदल में जा पड़े। जनरल वेगाँ की तोपें पेरिस के मोरचे पर

पैंज़र दस्तों की अग्रगामी अटूटवाहिनी के सामने अपने भय और निराशा का चीत्कार सुना रही थीं। फ्रांस के प्रधान मन्त्री रेनाँ की तरह उन्होंने भी भगवान् से प्रार्थना की कि वह अतलांतिक महासागर के पार से इतने हवाई जहाज़ भेज दे कि वे आसमान पर बादलों की तरह छा जायं। चर्चिल की तरह उन्होंने फ्रांस की सरकार से अनुरोध किया कि वह अपने समुद्री बेड़े को लेकर फ्रांस से बाहर निकल आय और वहाँ से ही अन्तिम श्वास तक युद्ध जारी रखे। परन्तु यह सब प्रार्थनाएं व्यर्थ गईं।

× × ×

वह बहुत दुःस्वप्न के दिन थे जब जीवन की नींव खिसक गई थी, और जब कोई यह नहीं कह सकता था कि किस महा गर्त में जाकर गिरेंगे। लेकिन समरेन्द्र ने उन दिनों भी अपनी आशाओं को चूर-चूर नहीं होने दिया। उन्होंने जो मुनाफ़ा कमाया था, उस सारी-की-सारी रक़म का इस तरह सफ़ाया हो गया जैसे स्लेट पर लिखे अंक मिटा दिए जाते हैं। उनके पास नीचे गिरी हुई कीमत के बहुत-से शेयर थे जो उधार देने वालों के पास गिरवी रख दिये गए। यहाँ तक कि वकालत की कमाई से उन्होंने जो मकान बनाया था वह भी गिरवी रखना पड़ा। फिर भी समरेन्द्र अपना सिर उठाकर ही चलते, मानो कुछ हुआ ही न हो। उन्होंने फिर से हाईकोर्ट में वकालत शुरू कर दी, और तन-मन से उसमें लग गए। अपनी पत्नी से या राहुल तक से उन्होंने अपने दुर्भाग्य के बारे में एक शब्द तक नहीं कहा ताकि उनके कारण इन सबको दुखी न होना पड़े। अपनी प्रतिदिन की कमाई से ही घर का खर्च पहले की तरह चलता रहा। और उस दिन जब ग्यारहवें महीने में बच्चे का अन्न-प्राशन संस्कार हुआ तो उन्होंने उसे सोने की जंजीर और हाथ के कड़े दिये।

लेकिन गहन रात के समय अपने बिस्तर में अनिद्रा से करवटें लेते हुए वह अंधेरे में आँखें फाड़कर अपने हृदय के रक्त से लिखे अंकों

में अपने नुकसान की बड़ी रक़म देखते रहते। और तक़िए पर अपना सिर धुनकर अपने-आप रह-रहकर बड़बड़ाते—'रक्त, परिश्रम और आँसू !' और सहसा उनकी आँखों से आँसू की धार बह निकलती या सूखी आँखों वह मन-ही-मन सिसकियाँ लेते रहते।

एक बार उनकी पत्नी अपने कमरे में से उनकी सिसकियाँ सुनकर घबराकर उठ बैठीं और कान लगाकर सुनने लगीं। कुछ ही देर बाद सिसकियाँ फिर सुनाई दीं तो वह बिस्तर से उठकर बाहर आईं और उनके दरवाजे से झाँकने लगीं। लेकिन यहाँ उनके पति अपने बिछौने पर आँखें बन्द किये थोड़ा मुँह खोले शान्तिपूर्वक सो रहे थे। उसी समय एक कराह फिर सुनाई दी और तब वह हँसकर यह सोचती हुई वापस लौट आईं, हाय कितना डर गई थी मैं ! लगता है इन्होंने एक नये ढंग से खर्राटे लेना सीख लिया है।

इंग्लिस्तान की लड़ाई, जो दूर के आसमान के नीचे बादलों में लड़ी जा रही थी, मानो यहाँ सट्टे के बाजार में दुबारा लड़ी जा रही थी। शेयरों की कीमतें कुछ दिनों अपने नीचे स्तर पर ही थमी रहीं। दुश्मन अब आगे इतनी आसानी से जीतता नहीं चला जायगा। सट्टे के बाजार में विश्वास की लहर पैदा होने लगी। कौन नहीं जानता था कि इंग्लिस्तान आखिरी लड़ाई को छोड़कर, और सब लड़ाइयाँ हार जाता है। भाव ऊँचे चढ़ने लगे। सौदा पटाने वाले अब चक्कर काटने लगे। उन्होंने बहुत दिनों तक प्रतीक्षा की थी। लेकिन अब चूँकि पासा पलट रहा था, वह मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे और समय निकल जाने से पहले ही खरीद लेना चाहते थे। और भाव नीचे गिराने वाले सट्टेबाज, जिन्होंने लालचियों की तरह जितने शेयर उनके पास थे उनसे भी ज्यादा शेयर बेचकर खूब मुनाफा कमाया था, भी नए शेयर खरीदने के लिए दौड़ पड़े।

सट्टे के बाजार में आशा का प्रकाश फैल गया। समरेन्द्र कई महीनों की मानसिक व्यथा के बाद अब फिर खुश दिखाई देने लगे, लेकिन वह

अप्रसन्न भी थे। सोचते, कि जब दुश्मन डेन्मार्क पर चढ़ दौड़ा था उस समय ही उन्होंने अगर अपने हिस्से बेच दिए होते तो उनके पास आज उन हिस्सों को फिर से खरीदने के लिए पर्याप्त धन होता। आज वह एक करोड़पति बन जाते। इस तरह समरेन्द्र को यदि एक तरफ यह खुशी थी कि तबाह होने से बच गए तो दूसरी ओर यह दुःख था कि करोड़पति नहीं बन पाए। क्या अब कुछ नहीं कर सकते? जिस तेजी से रकम उनके हाथ से निकल गई थी, अब उसी तेजी से वह उनके हाथ में वापस आ रही थी। उन्होंने अपने सारे कर्जे चुका दिए और एक बड़ी रकम बैंक में उनके नाम जमा हो गई। समरेन्द्र ने अपना काम तेजी से फिर चालू कर दिया था। लेकिन इस बार दूरदर्शिता और सावधानी से आगे बढ़े। अमरीका के प्रेसीडेण्ट ने उधार-पट्टे वाले कानून पर हस्ताक्षर कर दिए थे। लड़ाई लम्बी चलेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं रहा था। समरेन्द्र ने भी इसके अनुसार अपनी योजनाएं बनाईं। पिछली बार सट्टे का बाजार बन्द होने से पहले उन्होंने आर्थिक जगत् के हर क्षेत्र की खोज-पड़ताल कर ली थी और हर प्रकार के युद्धकालीन कारोबार की सम्भावनाओं को जाँच-तोल लिया था। किसी चीज़ का उत्पादन वह स्वयं करना क्यों न शुरू कर दें? युद्ध से पहले दुश्मन के यहाँ से एक बड़ी तादाद में रासायनिक पदार्थ और दवाएं आती थीं और अब इनकी कमी हो गई थी। और भी बहुत-से काम विचारणीय थे—बर्तन बनाना, शराब खींचना, तेल-साबुन आदि बनाना। वह एक कम्पनी शुरू कर सकते थे। एक ही क्यों, कई कम्पनियाँ शुरू की जा सकती हैं। समरेन्द्र एक बड़े कारोबार के संचालन करने के स्वप्न में फिर डूब गए।

राहुल के लिए भी उन्होंने एक योजना बना ली। दुःख केवल इस बात का था कि राहुल अब भी गवर्नमेण्ट-हाउस जाने को तैयार न होता था। फिर भी उसने अपने पिता की सलाह मानकर अपने को पूरी तरह खोज के काम में लगा दिया था। उसके प्रसिद्ध प्रोफेसर की उसे मंजूरी

भी मिल गई थी। यह आश्चर्य की बात है कि राहुल-जैसे अपने बारे में मौन रहने वाले आदमी ने भी कैम्ब्रिज से आए पत्र का लोगों से उल्लेख किया था। उसे विज्ञापन और सहायता की जरूरत थी। बड़े अफसरों से सम्बन्ध स्थापित करने की भी जरूरत थी। अगर कोई सही आदमी उसके बारे में कुछ शब्द किसी उपयुक्त आदमी के कान में डाल दे तो नई दिल्ली में उसे टेकनिकल एडवाइज़र की जगह मिल सकती है।

गवर्नमेण्ट-हाउस की एक पार्टी के अवसर पर अब तक उन्हें तीन-चार बार निमन्त्रण मिल चुका था। समरेन्द्र ने अपनी योजना चालू कर दी। नौकरशाही के एक सदस्य से उन्होंने हाथ मिलाया। वह किसी विभाग का सेक्रेटरी था।

"मेरा लड़का राहुल केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय का डी० एस-सी० है," समरेन्द्र ने अवसर पाते ही कहा। वह जानते थे कि सेक्रेटरी के नाम में डिग्रियों के साथ 'कैंटब' लगा हुआ है।

"किस कालेज के ?" सेक्रेटरी ने उत्सुकता दिखाई।

"सेण्ट जॉन्स कालेज का। वह वहाँ चार साल तक एक विश्व-विख्यात प्रोफेसर के नीचे काम करता रहा है। ज्योतिष और भौतिक विज्ञान में खोज की है।" अन्तिम शब्द जोर देकर कहा गया था, जिससे उनका मन्तव्य स्पष्ट हो जाय।

"सेण्ट जॉन्स कालेज में ? मैं भी वहाँ था।" गम्भीरता का अव-गुण्ठन एक हल्की-सी मुस्कान ने उठा दिया। सेक्रेटरी एक लम्बा, अति गम्भीर दीखने वाला व्यक्ति था, जिसके बाल कनपटी के पास से सफेद हो गए थे। "लेकिन मैं आपके साहबज़ादे से बहुत पहले केम्ब्रिज में रहा हूँगा। वह तो अभी युवावस्था में होंगे।"

"हाँ, उसके युवा कन्धों पर एक प्रौढ़ मस्तिष्क है," समरेन्द्र को यह देखकर बुरा लगा था कि ज्योतिष और भौतिक विज्ञान-जैसे शब्दों का इस गोबर गणेश-जैसे नौकरशाह पर बिजली का-सा असर नहीं

हुआ। इस बात को और समझाकर बताने के उद्देश्य से उसने कह
"राहुल इस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर है। ज्योति
और भौतिक विज्ञान में आगे बढ़ी हुई खोज के काम में लगा है। व
प्रकृति से एक-आध ऐसा रहस्य निकाल लेना चाहता है ताकि मनुष्य
हाथ में अपार शक्ति आ जाय। इसमें सन्देह नहीं," उन्होंने स्वर नीच
करके कहा, "आज की युद्धकालीन परिस्थिति में इस शक्ति को विध्व
सात्मक ही होना होगा। गीता में हिन्दुओं के भगवान् ने कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत!
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे ॥"

लगा, जैसे सेक्रेटरी यह सुनकर प्रभावित हो गया। "आइये चा
पिएं," उसने अपने अतिथि को एक खाली मेज़ पर बैठने के लि
कहा।

समरेन्द्र का दिमाग आसमान पर था। उन्हें लगा जैसे हर तर
ईर्ष्यालु आँखें उन्हें घूर रही हों।

"विनाश के द्वारा सृजन," समरेन्द्र ने उत्साहपूर्वक अपनी बा
जारी रखी। सेक्रेटरी प्यालो में चाय ढालता सुनता रहा। वह गीता
एक और उद्धरण देने ही वाले थे कि सेक्रेटरी ने बात काटकर पूछा—
"आपके साहबज़ादे क्या आविष्कार करना चाहते हैं?"

समरेन्द्र को इसका कोई अन्दाज़ न था; लेकिन उन्होंने तुरन्
उत्तर गढ़ लिया और कहा—"राहुल नक्षत्रों की शक्ति को काबू
करके प्रयोग में लाने पर तुला हुआ है। अगर उसका परिश्र
सफल हुआ—जिसकी संभावनाएं पूरी-पूरी हैं—यदि उसे सरकार व
ओर से पर्याप्त प्रोत्साहन और सुविधाएं मिलीं तो युद्ध की वर्तमा
राजनीति को एकदम तिलांजलि देनी पड़ जायगी। उस समय आज व
बड़ी-बड़ी तोपों को हमें प्राचीन काल के अजायबघर में फरसे और तीर

कमान की जगह रख देना होगा। यहाँ तक कि हवाई जहाज़ भी बेकार हो जायंगे। उस समय असंख्य सूर्यों की शक्ति का—उस शक्ति का जो करोड़ों नक्षत्रों को व्योम-मण्डल में निरन्तर गतिमान रखती है, एक स्फुलिंग ही लेकर इंग्लिस्तान में कहीं से भी बैठकर दुश्मन की फौज के एक डिवीज़न पर छोड़ा जा सकता है। जिससे एक क्षण में ही ऐसा दावानल-सा उत्पन्न हो जायगा, जिसमें टैंक, जहाज़, तोपें, सैनिक, सभी रुई की तरह जलकर भस्म हो जायंगे। सूर्य और नक्षत्रों की इस प्रचण्ड शक्ति की कुछ चिनगारियाँ ही किसी भी महान् राष्ट्र की पूरी सैन्य-शक्ति को नष्ट करने के लिए काफी होंगी। इस महास्त्र से प्राचीन भारत परिचित था; वह इसे ब्रह्मास्त्र कहते थे। कृपया यह न सोचें कि राहुल कल्पनावादी है; वह ठेठ वैज्ञानिक है; कैम्ब्रिज में सीखा-पढ़ा। बस समय, सुविधाओं और नैतिक प्रोत्साहन की ही बात है। मृत्यु-किरण की बस एक नली !"

"नली ?" सेक्रेटरी ने किंचित् संदिग्ध भाव से अपनी भौंहें सिकोड़ीं।

"जी हाँ, नली," समरेन्द्र अपने शब्द पर अड़े रहे।

हाथ मिलाकर उन्होंने एक-दूसरे से विदा ली। उस समय समरेन्द्र इस बात का तनिक भी अनुमान न कर पाए कि सेक्रेटरी के साथ उनका सूक्ष्म वार्तालाप अप्रत्याशित रूप से उनके पुत्र के जीवन पर कितना गहरा प्रभाव डालेगा।

स्वयं उनके भाग्य में आसमान फाड़कर बहुत-कुछ पाना अभी आगे लिखा था। युद्ध बढ़कर प्रशान्त महासागर तक फैल गया—पर्लहार्बर, हाँगकाँग, सिंगापुर, मलाया तक। लेकिन इस बार समरेन्द्र ने सिंगापुर का पतन होने से पहले ही अमल किया। एक दिन शाम को जब वह खबरें सुन रहे थे उन्होंने यह घोषणा सुनी कि दुश्मन ने दो बड़े जंगी जहाज़ डुबा दिए। समरेन्द्र घबरा गए। उन्होंने अपनी स्मृति के कोने में दबी पड़ी उस चेतावनी का ध्यानकर व्यथा से सिर हिलाया—

'रक्त, परिश्रम और आँसू।' उन्होंने मन में फैसला कर लिया और एक क्षण के बाद वह फोन पर अपने दलाल से बात कर रहे थे।

एक ही बार में उन्होंने अपने तमाम शेयर बेचकर साफ कर दिए। दुःख की बात थी कि वह करोड़पति न बन पाए, लेकिन अब वह दिवालिए भी तो न हो जायंगे।

जब रंगून पर बम गिरे तो कलकत्ते का सट्टा-बाज़ार जैसे काँप गया और जिस तरह एलेक्ज़ेण्डर के ख़ाकी वर्दी पहने सैनिक पीछे हटकर पथहीन जंगलों में भटक रहे थे, उसी तरह सट्टे का बाज़ार भी पीछे हटता गया और फिर गिरकर बन्द हो गया।

यह आश्चर्य की बात है कि कभी-कभी अत्यन्त साधारण घटनाओं से महान् प्रेरणाएं जग जाती हैं। एक दिन जब समरेन्द्र गराज़ से अपनी कार बाहर निकाल रहे थे कि उसी समय एक भिखारी ने आवाज़ दी—"चावल का एक दाना, बाबा। बस एक दाना!"

समरेन्द्र ने उसे एक पैसा दिया। लेकिन उस बूढ़े भिखारी ने सिर हिलाकर कहा—"इसका क्या होगा बाबा? पैसे के अन्दर की लक्ष्मी तो इसे छोड़ गई। यह तो बस खाली मन्दिर है। लक्ष्मी आजकल बस चावल के दानों में ही रहती है।"

'लक्ष्मी आजकल बस चावल के दानों में ही निवास करती है।' समरेन्द्र कार में बैठे क्लाइव स्ट्रीट में बोर्ड की बैठक के लिए जाते हुए सोचते रहे और तब यकायक जैसे चमककर एक महान् विचार उनकी आँखों के आगे घूम गया। *सस्ता चावल लिमिटेड*—उनकी योजनाओं को जैसे एक सहारा मिल गया।

यह एक बड़ा सपना था। अपनी रक्षा के लिए भारत को संगठित होना होगा। बंगाल एक विशाल फौजी छावनी के रूप में बदल जायगा। पूर्वी मोरचे के एक हज़ार मील लम्बे सीमान्त की रक्षा के लिए कम-से-कम दस लाख सैनिकों की ज़रूरत तो पड़ेगी ही। उन्हें भर-पेट भोजन देना होगा। युद्ध-सम्बन्धी वस्तुओं के उत्पादन में लाखों-करोड़ों

आदमी लगेंगे और उन्हें भी भरपेट भोजन देना होगा। बर्मा से अब नाज आना बन्द हो गया। अगर बंगाल के चावल का एक अंश भी जमा किया जा सके···ओह, काली मैया! कितना बड़ा काम है? जो भी हो अगली फसल के मौके पर खरीदकर गल्ले के गोदाम भरे जा सकते हैं। उन पर ताला डालकर तब तक छिपाकर रखा जा सकता है, जब तक कि माँग सप्लाई से ज्यादा न हो जाय और भाव न चढ़ जाय। (दाम कितने भी हों, आदमी पेट तो भरेगा ही और उस समय ढेर-का-ढेर मुनाफा बटोरकर यह गोदाम खाली किया जा सकता है।)

उन्होंने अपनी योजना पक्की कर ली। इसको चलाने के लिए एक बहुत बड़ी रक़म और बहुत बड़े संगठन की ज़रूरत थी। उन्होंने डायरेक्टरों की तलाश की, जिनके बीच पूँजी लगाने की जिम्मेदारी बाँट दी जाय। वह बड़ी सावधानी से एक-एक कदम आगे बढ़ रहे थे कि उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि अकेले उन्होंने ही यह बात नहीं सोची। उन्होंने देखा कि कारोबार की दुनिया में प्रमुख स्थान रखने वाले अनेक व्यापारी भी यही सोच रहे थे।

उस वर्ष वसन्त और ग्रीष्म के दिनों में समरेन्द्र के मन पर बस एक ही विचार हावी था—चावल। और किसी वस्तु में न उनकी रुचि रही और न उन्होंने दूसरे सपने ही देखे। वह और उनके सहयोगी इस व्यापार को चलाने के लिए जी-जान से काम में लगे रहे। उन्होंने अपने मार्ग में आने वाली किसी अड़चन को अड़चन नहीं समझा। इतने में अगस्त के प्रारम्भ में ज्वालामुखी के विस्फोट की तरह भारतवर्ष ने गरजकर ललकारा।

पाँच

"दादा, क्या तुमने कभी किसी के साथ भलाई की है ?" कुणाल ने अपने भाई से एक विचित्र प्रश्न किया।

"हूँ," राहुल स्तम्भित रह गया, "कैसी भलाई ?"

दोनों भाई अपने फ्लैट के तटवर्ती मकान के पास बस के अड्डे पर खड़े इन्तज़ार कर रहे थे। राहुल कालेज जा रहा था और कुणाल अपने बाल कटवाने के लिए।

"ऐसी भलाई, जिसका सचमुच कोई मूल्य हो; यानी किसी मनुष्य की दाल-भात की समस्या का हल करने में सहायक होना। मैंने ऐसा किया है। मैंने एक पद से इस्तीफ़ा दे दिया ताकि किसी दूसरे व्यक्ति को ख़ाली जगह भरने का अवसर मिल जाय।" उसके मुख पर गर्व की मुस्कान खेल गई।

राहुल को इस घटना का पूरा पता था। एक सरकारी पद के लिए विज्ञापन छपा था। हर प्रार्थी को नियम के अनुसार पाँच रुपये की फ़ीस दरख़्वास्त के साथ भेजनी पड़ती थी। कम-से-कम दो हज़ार व्यक्तियों ने तो दरख़्वास्त भेजी ही होंगी।

"और उस पद के लिए आदमी तो दरख़्वास्तें आने के पहले ही चुन लिया गया था," कुणाल कहते-कहते हँस पड़ा। यह देखकर आश्चर्य होता था कि हास्य फूट पड़ने से उसकी मुख-मुद्रा गम्भीर बन गई

थी। ऐसी गम्भीरता उसके चेहरे से साधारणतया नहीं टपकती थी। "'अपने लिए कह-सुनकर कोशिश करने वाले उम्मीदवार को चुनाव के योग्य नहीं समझा जायगा,' कहा तो यही जाता था। लेकिन पिताजी ने दूसरों से कह-सुनकर ही सब मामला तै कर लिया था। सरकार इस तरह मुनाफ़ाखोरी करती है।"

"हूँ," राहुल बड़बड़ाया।

और कुणाल कहता गया—"जो भी हो, फौजी कमीशन पा जाने से मैं तो इस जंजाल से छुटकारा पा गया। कोई ज़रूरतमन्द व्यक्ति, जिसकी आशाओं पर पानी फिर गया होगा, अब दुबारा अवसर पा जायगा।"

राहुल का मन कहीं और था।

"कुणाल," अपनी सिगरेट सुलगाने के लिए रुकते हुए उसने कहा, "अब तुम चूँकि फौज में भरती हो गए हो तो शायद तुमने अपने से यह प्रश्न कर देखा होगा कि तुम किसके विरुद्ध लड़ोगे और किस उद्देश्य के लिए लड़ोगे?"

कुणाल विचार-मग्न हो गया। उसकी भौंहों पर बल पड़ गए।

"मैं जानता हूँ कि तुम क्या सोच रहे हो। तुम्हें मुझ पर अफ़सोस हो रहा है; है न? साम्राजी शतरंज का प्यादा जो बन गया हूँ। एक भाड़े का सैनिक! सच तो यह है कि मैं तुम्हारी तरह का आदर्शवादी नहीं हूँ; मेरा कोई जीवन-दर्शन नहीं है, और फौज मेरे लिए केवल एक कैरियर है।" वह एक क्षण के लिए विचारों में डूब गया और फिर उसकी भौंहों के बल सीधे हो गए और उसने तेज़ी से बोलना शुरू किया। "फिर भी, केवल इतना ही नहीं है; मुझ पर विश्वास करें कि फौज मेरे लिए केवल इतना ही नहीं है। यह एक पुरानी पहेली है; है न? यह कि यह विदेशी साम्राज्यवाद हमारी भारतीय संस्कृति का तीव्र प्रशंसक है। मेरा मतलब, प्राचीन काल की संस्कृति से है। साम्राज्यवादी हमारे आध्यात्मिक उत्तराधिकार, हमारे परलोकवाद की

भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ताकि हम इहलोक को छोड़कर परलोक पर आँखें गड़ाये बैठे रहें और वह चैन से हमारे ऊपर शासन करते जायं। अगर हम जीवन के भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपना ले तो हमारे शासकों को इससे बड़ी चिन्ता पैदा हो जाय। हमें ऐसा करने से अब रोका भी कैसे जा सकेगा? विज्ञान हमारे नए जीवन को परिप्लुत कर देगा—विज्ञान। इसके लिए ही तुम्हारी ज़रूरत है। लेकिन यह तो कहानी का आधा पहलू ही हुआ।" वह एक लम्बी साँस लेने के लिए फिर रुका। भाई के मुख पर उसकी पैनी दृष्टि बराबर गड़ी रही। "देखो भाई, हमें पलायनवादी नहीं बनना चाहिए। इस युद्ध के झमेले को ही लो। इससे हमें युद्ध-विद्या में शिक्षित होने का अच्छा अवसर मिलेगा। हम यह दिखा देंगे कि युद्ध में हम भी उतने ही कुशल हैं जितने कुशल हमारे दम्भी शासक हैं। हम भी उनके खेल को उतनी ही अच्छी तरह से खेल सकते हैं। किसी भी संकट के समय हम अपने को उसके योग्य साबित कर सकेंगे। हम साधन जुटा सकते हैं और युद्ध में धैर्य दिखा सकते हैं। हमें इस बात का भय नहीं कि···" कुणाल कुछ हिचकिचाया और राहुल के मन में यकायक वह शब्द कौंधकर उसकी आँखों में चिन्ता का भाव भर गया। लेकिन कुणाल ने कहा—"जीवन! हम जीवन से नहीं डरते—खतरनाक ढंग के जीवन से।"

कुणाल ऐसा ही था। राहुल जानता था कि कुणाल अवसरवादी नहीं है। उसने एक अच्छी-भली सरकारी नौकरी को लात मार दी थी और युद्ध-क्षेत्र की आपत्तियों और अस्थायी कमीशन की अरक्षितता का सामना करने की ठान ली थी। और फिर यह युवक दम्भी भी तो न था कि अपने निश्चय को सामाजिक मूल्यों के रंग से रँगकर डींग मारता फिरे। पर उसने इस समस्या को बहुत सरल बनाकर सोचा था। राहुल को ऐसा लगा, मानो वह युद्ध के बारे में ऐसे ही सोचता था जैसे वह क्रिकेट का खेल हो। युद्ध तो एक विशाल नरमेध है। कोई व्यक्ति बिना किसी आन्तरिक द्वन्द्व और संकोच के नरमेध में तभी पड़ सकता है

जब वह यह समझता हो कि ऐसा करके वह विश्व को भयंकर बीमारी के कीटाणुओं से मुक्त कर रहा है। मानवता के नाम पर कुणाल और उसकी पीढ़ी के लोगों को यूरोप के कीड़ों को मारने के लिए युद्ध का आह्वान मिला था। लेकिन विदेशों में स्वतन्त्रता की हिमायत करने वाले इस देश की स्वतन्त्रता के भक्षक थे। कुणाल चित्र के इस पहलू के प्रति संवेदनशील नहीं था। वह युद्ध-कला सीखेगा और यह अनुभव उसके लिए, उसकी पीढ़ी के लिए, और उसकी जाति के लिए उपयोगी होगा, इतना ही काफ़ी था। कुणाल के हृदय में कोई द्वन्द्व न था।

किन्तु राहुल के मन में शान्ति न थी। उसके हृदय को जो आशंकाएं इतने दिनों से मथती आई थीं, इस समय, जब वह दो-मंज़िली बस में चढ़कर सीट पर बैठने लगा था, वह उस पर पुनः छा गईं। अगर वह इस युद्ध को सीधे-सीधे साम्राज्यवादी कुचक्र कहकर उसकी उपेक्षा कर सकता तो समस्या वहीं ख़त्म हो जाती। क्या ऐसा सम्भव नहीं कि युद्ध अभी भी अपनी सीमाओं को तोड़ डाले और ढोंगी राजनीतिज्ञों के बनावटी उद्देश्यों में वास्तविकता भर दे और एक बरबाद दुनिया में से ही एक सचेतन विश्व-समाज पैदा कर दे? उसके देशवासी ऐसे ऐतिहासिक प्रवाह को हाथ-पर-हाथ रखकर केवल दर्शक की भाँति तो नहीं देखते रह सकेंगे, क्योंकि वह आगे बढ़कर तमाम गुलाम देशों को अपनी भँवर में खींच लेगा।

राहुल के मन का द्वन्द्व यही था। राष्ट्रीय आन्दोलन के सामने भी यही द्वन्द्व था। दरअसल हर विचारशील भारतवासी के मन का यही द्वन्द्व था।

राष्ट्रीय आन्दोलन इंग्लिस्तान की युद्ध-स्थिति से पशोपेश में पड़ा हुआ था। उसका संघर्ष इंग्लिस्तान के साम्राज्यवादी शासकों के विरुद्ध था, वहाँ की जनता के विरुद्ध नहीं, जो अगर युद्ध में हार गई तो गुलाम बन जायगी, और इससे विश्व-मानवता के दुःख बढ़ेंगे ही घटेंगे नहीं। राष्ट्रीय आन्दोलन ने सहयोग देने की इच्छा प्रकट की, और

इसके बदले में कि भारतीय जनता की स्वतन्त्रता के हक को मान लिया जाय, उसने युद्ध की तैयारियों में पूरे जोश से सहायता देने का वचन दिया। लेकिन सत्ताधारियों ने इस विचार का उपहास किया, क्योंकि वह सत्ता की बागडोर अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे। और उन्होंने तुरन्त उस महापुरुष को जेल में बन्द करके, जिसने अपने देश की जनता को अनचाहे युद्ध की भट्टी में असहाय गुलामों की तरह झोंक देने के विरुद्ध स्वर उठाया था, इस माँग का उत्तर दिया था।

राहुल दुखी था। उस महान् नेता ने अक्सर राहुल के मन के भावों को ऐसे सुन्दर शब्दों और भाव-चित्रों में व्यक्त किया था, जैसे सुन्दर शब्दों में वह स्वयं कभी न व्यक्त कर पाता। राहुल महापुरुषों का भक्त नहीं था। उसके विचार बौद्धिक तर्क के साँचे में पड़कर ढले थे और इस प्रक्रिया में भावना का बहुत कम स्थान था। लेकिन उस एक महापुरुष में, जो भारत का भाग्य-विधाता था, कोई ऐसी शक्ति थी जो उसके अन्तरतम को छूकर जगा देती थी। कहीं ऐसा तो नहीं था (राहुल ने आश्चर्यचकित हो कई बार अपने से पूछा था) कि उसमें निर्मम तर्क-संगत रूप से लिखते, बोलते और काम करते समय भी इतनी हार्दिक मानवीयता दिखाई देती थी?

राहुल ने अपनी कल्पना में एक जेल का दृश्य साकार करना चाहा। अपनी कार से आते-जाते समय अलीपुर में सड़क से जेलख़ाने की लम्बी, उदास-सी ऊँची दीवारें और विशाल लोहे के जंगलों के फाटक उसने देखे थे। इनके अतिरिक्त अपने कल्पना-चित्र को और किसी ब्यौरे से भरने के लिए उसके पास कोई सामग्री न थी। कितने आश्चर्य की बात है कि ऐसे व्यक्ति को, जो सभ्यता और संस्कृति के शिखर पर बैठा है, आज चोरों, बदमाशों और हत्यारों के साथ रहकर कठोर जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है, क्योंकि उसने प्रजातन्त्रवाद में अपनी सच्ची भक्ति प्रकट की थी। और यह कैसी विडम्बना है कि जेल का वार्डर वह व्यक्ति था, जो प्रजातन्त्र को अपनी शृङ्खलाओं से मुक्त कराने वाले अपने

देशवासियों का ही जीवन-रक्त पानी की तरह बहा रहा था।

कुणाल ने पिछली सीट से अपने भाई की पीठ को कोंचकर पूछा, "उतरोगे नहीं ?"

बस कालेज के पास आकर रुकी थी। राहुल जल्दी से उठ खड़ा हुआ। "मेरा खयाल था कि तुम बाल कटवाना चाहते थे, कुणाल ! तुम्हें तो चौरंगी पर ही उतर जाना चाहिए था।"

"मुझे इससे ज्यादा जरूरी काम करने हैं," कुणाल ने अपने बालों में उँगलियाँ दौड़ाते हुए कहा, "ये कितनी जल्दी बढ़ जाते हैं। बाल कटाना भी एक बड़ा झंझट है; बड़े धैर्य की ज़रूरत पड़ती है। सफेद कपड़े की चादर में लिपटे कुरसी पर दम साधे बैठे रहना जब कि नाई आपके बालों की कतर-ब्योंत करता हो।" कुणाल ने इस मुसीबत को टाल देने का निश्चय कर लिया था।

प्रकाश, जो राहुल के नीचे एक रिसर्च-विद्यार्थी की तरह काम कर रहा था, पहले से ही प्रयोगशाला में आकर यन्त्रों को अपनी जगह लगा रहा था। अपनी मेज़ की ओर जाते हुए राहुल ने उसे उड़ती निगाह से देखा। वह स्वयं चाहे जितनी जल्दी आय, लेकिन उसे हमेशा प्रकाश पहले से आकर अपने काम में गम्भीरतापूर्वक दत्त-चित्त लगा मिलता, और चाहे जितनी देर से वह क्यों न जाय, प्रकाश सबसे बाद में ही वहाँ से छुट्टी करता। इस लड़के ने तो प्रयोगशाला को ही जैसे अपना घर बना लिया हो। जैसे और किसी चीज़ में उसकी दिलचस्पी थी ही नहीं।

उसकी मेज़ पर एक संगमरमर के पेपर-वेट के नीचे कुछ टाइप किये हुए कागज रखे हुए थे। क्या प्रकाश ने अपने नोट उसको दिखाने के लिए वहाँ रखे थे ? नहीं ! उसकी आँखें विस्फारित हो गईं। *अपने मुकदमे के समय गोरखपुर-जेल में नेहरू का वक्तव्य।* जरूर ! यह वक्तव्य पत्रों में प्रकाशित न हुआ था। लेकिन नेहरू के शब्दों को मानो पंख लग गए थे। वह सर्वत्र पहुँच चुके थे; एक नगर से दूसरे नगर में

फैलते जाते थे। राहुल इस वक्तव्य को पढ़ने के लिए उत्सुक रहा था। और अब यह साइक्लोस्टाइल किया हुआ उसके सामने मेज़ पर पड़ा था। राहुल ने अपना सिर घुमाया और उसकी आँखें प्रकाश पर जा टिकीं। वह निर्लिप्त भाव से अपने काम में ध्यान लगाये बैठा था। राहुल मुस्कराया। इस लड़के को और चीज़ों में भी दिलचस्पी है? इस कागज को उसके अलावा और कोई लाकर उसकी मेज पर नहीं रख सकता था। राहुल ने उसे उठा लिया और दुबारा धीरे-धीरे उसके शब्दों और भाव-चित्रों का मनन करने लगा :

"जनाब, मैं आपके सामने एक व्यक्ति की हैसियत से राज्य के विरुद्ध किये गए कुछ अभियोगों की सज़ा पाने के लिए खड़ा हुआ हूँ। लेकिन मैं एक व्यक्ति के अलावा भी कुछ हूँ; मैं इस समय एक प्रतीक, एक चिह्न भी हूँ—भारतीय राष्ट्रवाद का प्रतीक, जिसने ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध तोड़ने का और भारत की पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने का निश्चय किया है। आप मेरा फैसला करके मुझको ही सज़ा देने का काम नहीं कर रहे, बल्कि भारत की असंख्य जनता का फैसला करके उसे सज़ा दे रहे हैं, और यह काम एक दम्भी साम्राज्य की शक्ति के लिए भी आसान नहीं है। हो सकता है कि मैं आपके सामने अभियुक्त की हैसियत से खड़ा हुआ हूँ, लेकिन शायद दुनिया के जनमत के सामने स्वयं ब्रिटिश साम्राज्य आज अभियुक्त के रूप में खड़ा हुआ है। कचहरियों और न्यायालयों की अपेक्षा कहीं ज्यादा शक्तिशाली ताकतें आज काम कर रही हैं। आज़ादी, भोजन और सुरक्षा की माँग करने वाली मूल वृत्तियाँ हैं, जो इस समय विशाल जन-समुदाय को उद्वेलित कर रही हैं···"

दिमित्रोव के मुक़दमे के बाद और किसी वक्तव्य ने उसमें इतनी तीव्र उत्तेजना नहीं पैदा की थी। उसके हृदय की गति तेज़ हो गई थी और उसके कान लाल हो आए थे। उसके अन्दर कोई मूल वस्तु जो दबी पड़ी थी, मानो ऊपर से ढक्कन हटते ही मुक्त होकर सवेग बाहर

निकल पड़ी हो। और उस क्षण जैसे वह प्रयोगशाला में काम करने वाला वैज्ञानिक न रहा हो बल्कि स्वयं एक कैदी के रूप में न्यायाधीश के सामने कठघरे में खड़ा हो। और मानो एक कैदी के रूप में भी वह दुनिया के जनमत के सामने उसके ऊपर अभियोग लगाने वाले दम्भी साम्राज्य को ललकारकर बुला रहा हो। उसके मन में एक ऐसा ऊपर उठने वाला उल्लास भर गया कि उसके श्वास की गति तेज़ हो गई··· यह विचित्र भाव उसे कुछ देर तक मुग्ध किये रहा, फिर जैसे उसका ज्वार उतर गया और वह उद्विग्न हो उठा; अपने को अकेला महसूस करने लगा।

"महाशय···"

प्रकाश मेज़ के पास खड़ा था। अपने किसी प्रयोग के सम्बन्ध में वह सलाह चाहता था। राहुल ने उसे शून्य दृष्टि से देखा।

"प्रकाश," उसके मुख से यह अप्रासंगिक प्रश्न निकल गया, "क्या तुमने जेलखाना देखा है?"

"क्यों नहीं, जी हाँ, देखा है," प्रकाश ने उस पर एक उड़ती दृष्टि डालकर कहा, "अलीपुर जेल में अपने पिता से भेंट करने के लिए मैं कितनी ही बार गया हूँ; वह चार साल से वहाँ हैं।" उसके तरुण मुख पर विषाद की रेखा दौड़ गई; "वह इस यातना को अब नहीं झेल सकते। उनके फेफड़े खराब हैं। फिर भी अभी एक साल और काटना है।"

राहुल उसे देखता रह गया, "उन्होंने क्या किया था?"

प्रकाश ने मेज़ पर पड़े टाइप किये हुए काग़ज की ओर एक बार देखा और एक क्षण के लिए उसकी आँखें चमक उठीं—"वह अपने देश से प्रेम करते हैं।"

"और तुम? प्रकाश····" राहुल को शब्द नहीं सूझ रहे थे। प्रकाश चुप खड़ा रहा, ध्यान में निमग्न, मानो किसी चीज़ की प्रतीक्षा कर रहा हो। फिर बोला, "मैं?"

"तुमको जेल जाने से डर नहीं लगता, प्रकाश ?"

तुरन्त ही उत्तर मिला, "लगता भी है, नहीं भी। देखिए न, मेरी माँ है, एक विधवा बहन है और उसके बच्चे हैं। सबकी देख-भाल मुझको ही करनी पड़ती है। कुछ तो रिसर्च के लिए वज़ीफ़ा मिलता है और इसके अतिरिक्त मैंने कुछ ट्यूशन कर लिये हैं। यदि मैं चला जाऊँ तो वह सब लोग भूखों मर जायंगे। नहीं तो···"

इतनी कम उम्र में घर-भर की रोटी कमाने का भार ! सारा दिन तो वह प्रयोगशाला में ही रहता था। उसके बाद शाम को भी उसे काम करना पड़ता था। न जाने कैसे-कैसे बेवकूफ लड़कों को पढ़ाना पड़ता होगा ? राहुल के दिमाग़ में एक प्रश्न गूँज गया 'क्या तुमने कभी किसी के साथ भलाई की है ?' अनजाने में उसने कम-से-कम इस एक व्यक्ति के साथ तो भलाई की थी। उसी की सिफ़ारिश से प्रकाश को वजीफ़ा मिला था। ऐसा नहीं था कि वह उसके योग्य नहीं था। कोई दूसरा विद्यार्थी उसकी अपेक्षा इस वजीफ़े के पाने के योग्य न था। यदि उसे अवसर मिले तो प्रकाश अपने क्षेत्र में बहुत उपयोगी कार्य कर सकता है, ऐसा राहुल का विचार था। काश उसे अवसर मिल सकता ! राहुल ने कुछ सोचते-सोचते विषाद से अपने होंठ भींच लिये। पेता क्षय रोगी, इतने बड़े परिवार के भरण-पोषण का भार, प्रतिदिन ट्यूशनों की चक्की में पिसना; और वज़ीफ़ा तो केवल दो वर्ष तक ही मिलेगा। उसके बाद प्रकाश को किसी कालेज में काम ढूँढ़ना पड़ेगा। किन उसकी एम० एस-सी० की फर्स्ट क्लास डिग्री और रिसर्च का अनुभव कुछ भी काम न आयगा। पुलिस उसको कहीं भी काम न मिलने देगी। आपत्तिजनक राजनीतिक विचार रखने वाला मनुष्य बहुत ही ख़तरनाक शिक्षक होगा, और प्रकाश अपनी प्रतिभाशाली बुद्धि तथा अपने अधूरे स्वप्नों के लिए नौकरी के लिए मारा-मारा फिरेगा; कहीं भी किसी प्रकार की भी नौकरी। और आख़िर में यदि उसका सौभाग्य हुआ तो शायद कहीं छोटी-मोटी क्लर्की मिल जाय—किसी की

दूकान का हिसाब रखने या डाकखाने में टिकट बेचने का काम। वह इससे अधिक की आशा भी कैसे कर सकता था। पुलिस उसके पीछे पड़ी थी; वह बड़े बाप का बेटा नहीं था, कोई सगा-सम्बन्धी भी ऐसा नहीं था जिसकी बड़े लोगों तक पहुँच हो। निराशा और धनहीनता उसे शीघ्र ही कुचल देगी। भारत की दुर्दशा का बिलकुल जीता-जागता चित्र था प्रकाश !

"नहीं तो," प्रकाश कुछ देर चुप रहने के बाद फिर कह रहा था, "जब समय आयगा मैं भी उस रास्ते पर जाने से नहीं हिचकिचाऊँगा जिस पर दूसरे लोग गए हैं।" उसकी दृष्टि उस साइक्लोस्टाइल किये हुए वक्तव्य पर थी, मानो वह उसका आलिंगन कर रही हो। "आख़िरकार हम सब एक जेलख़ाने में ही तो हैं—हम चालीस करोड़ लोग। क्या फ़र्क़ पड़ता है यदि कुछ लाख लोगों को जेलखाने के अन्दर एक जेलखाने में बन्द होना पड़े ?"

प्रकाश अपनी मेज़ की ओर चल दिया, वह कुछ लँगड़ाकर चल रहा था। राहुल को अपने विद्यार्थी में एक वैयक्तिक दिलचस्पी हो चली थी। उसने प्रकाश से वह प्रश्न किया जिसे वह अब तक रोके हुए था।

"तुम्हारे टख़ने में क्या हुआ, प्रकाश ?" उसने पूछा। उसका हृदय कोमल भावनाओं से उमड़ा पड़ रहा था, क्योंकि उसे ऐसा लग रहा था कि राष्ट्रीय आन्दोलन का वीर सैनिक प्रकाश उसका मित्र, उसका साथी, उसका भाई है।

प्रकाश ने चौंककर पीछे देखा। "मेरे टख़ने को ?" उत्तर देते हुए उसे कुछ संकोच हो रहा था, "ओह, कुछ नहीं, मैं एक मीटिंग में गया था। पुलिस ने वहाँ लाठी-चार्ज कर दिया।"

और वह नम्र, शान्त आँखों वाला युवक अपने काम में जुट गया, मानो उसे इस बात की जल्दी थी कि जो समय नष्ट हुआ है उसे पूरा कर ले। वह अपने शिक्षक से उन अज्ञात रश्मियों के विषय में बात

करने के लिए उत्सुक था जो एक सितारे से दूसरे सितारे तक तीव्र गति से आती-जाती रहती हैं।

परन्तु राहुल विचारों में खोया हुआ था। वह कार्य, जिससे उसे सदैव रुचि थी, आज उसे अच्छा न लग रहा था। उसकी नज़रों के सामने गम्भीर ऊँची-ऊँची दीवारें घूम रही थीं—वह दीवारें जिनके अन्दर मनुष्य-रचित नरक था; वह दीवारें—जो सितारों से आने वाली रश्मियों को श्यामल बना देती थीं। उसकी दृष्टि सुदूर दृश्य से हटकर एक निकटवर्ती दृश्य पर आकर जम गई।

"यह बात मेरे लिए बहुत कम महत्त्व रखती है कि इस मुक़दमे में या इसके बाद मेरे साथ क्या होता है। व्यक्तियों का महत्त्व बहुत थोड़ा होता है। वे आते-जाते रहते हैं। जब मेरा समय आ जायगा मैं भी चला जाऊँगा। भारत के ब्रिटिश शासकों ने सात बार मुक़दमा चलाकर मुझको सज़ा दी है। मेरे जीवन के कई वर्ष जेलखानों की दीवारों के भीतर कटे हैं। आठवीं बार या नवीं बार और सही, कुछ वर्ष और सही, इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

"लेकिन यह बात महत्त्वहीन नहीं कि हिन्दुस्तान और उसके लाखों बेटों और बेटियों का क्या होता है···!"

यह दशा थी। लाखों निःशब्द लोग जानवरों की तरह अपने स्वामी की निर्दयतापूर्ण मनमानी के जुए में जुते हुए थे। यदि आप उनके लिए मनुष्य के साधारण अधिकारों की भी माँग करें तो आपसे आपका वह सब-कुछ छीन लिया जायगा जो आपको प्राणों से भी अधिक प्रिय है। आपको ज़बर्दस्ती उनसे अलग कर दिया जायगा जिनसे आपको प्रेम है, जिनको आपकी आवश्यकता है। आपको ज़बरदस्ती आपके काम से अलग कर दिया जायगा, और बग़ैर किसी मुक़दमे के आपको उस मनुष्य-रचित नरक में ठूँस दिया जायगा। वायु में एक तीव्र दुर्गन्ध फैल गई—जेल के पाख़ाने। उसने दुर्गन्ध के कारण अपनी नाक सिकोड़ ली और सिगरेट जलाकर गहरे-गहरे कश खींचने लगा।

उसने काम में लीन होकर अपने मन को शान्त करना चाहा। उसे याद आया कि रात को उसे मंजु को ग्रेट ईस्टर्न में नाच और भोजन के लिए ले जाना है। उसे पाश्चात्य नृत्य से बहुत पहले से प्रेम था और मंजु ने भी उसे प्रसन्न करने के लिए थोड़ा-बहुत नाच सीख लिया था। आज पहली बार वह एक सार्वजनिक स्थान में उसके साथ नाचने जा रही थी। वह उद्विग्न थी, सहमी हुई थी। उसने उसको वह साड़ी भी दिखाई थी जो वह रात को पहनने वाली थी—बैंगनी रंग की क्रेप की साड़ी, जिस पर एक चौड़ा ज़री का बार्डर लगा हुआ था और एक बग़ैर आस्तीनों का कमख़ाब का ब्लाउज़। और वह लंदन के दर्ज़ी की सिली हुई डिनर-जैकेट पहनकर जायगा। मंजु कहती थी कि वह उसके शरीर पर बहुत ही सुन्दर लगती है। अच्छा भोजन, अच्छा संगीत, अच्छी सोहबत—यह सब चीज़ें उसे अतिप्रिय थीं। वह वैरागी नहीं था। उसे जीवन की अच्छी चीज़ों से प्रेम था।

परन्तु इन तमाम विचारों की तह में "एक विचार था जो उसके मस्तिष्क पर लगातार हथौड़े की तरह चोटें लगा रहा था—यह किस प्रकार सम्भव होता है कि मनुष्य विपदाओं से किसी प्रकार डरे बिना अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ता रहता है; जैसे प्रकाश ?

× × ×

मंजु मोटर से उतरी। "एक मिनट," कहकर राहुल ने कूच को पैर से दबाया और मोटर को एक ओर लगाकर खड़ा करने के लिए चल दिया।

जब वह लौटा, मंजु हॉल में अकेली ही खड़ी थी। उसके गाल लाल हो रहे थे।

"मुझे यहाँ इस तरह अकेला खड़ा रहना पसन्द नहीं," उसने कहा, "अब हम टैक्सी पर आया करेंगे। जानते हो क्या हुआ ?" वह फटी हुई आँखों से देख रही थी।

"क्यों, क्या हुआ····क्या ?" वह चिन्तित होकर उसके और निकट आ गया।

"एक आदमी, एक गोरा सिपाही," मंजु का गला फँस रहा था, "उसने मुझे आँख मारी, ऐसे....." और मंजु ने अपनी आँख दबाकर बताया।

राहुल प्रतीक्षा करता रहा। "उसने तुमसे कुछ बात की?"

"नहीं, मैंने अपना मुँह फेर लिया और वह चला गया।"

"बस, इतनी-सी बात?" राहुल हँस पड़ा।

वह होटल की गैलरी से होकर चल दिए, जिसके फ़र्श पर क़ालीन बिछा हुआ था।

मंजु को गुस्सा आ रहा था, "हाँ, बस इतनी-सी बात थी। तुमको तो मज़ा आ रहा है। मेरे ख़याल से तो अगर वह मुझसे बात करता तो तुमको और खुशी होती।"

राहुल उसको छेड़ने लगा—"क्यों, इसमें हर्ज ही क्या है। जब मैं विलायत में था, मैंने बीसियों लड़कियों को आँखें मारी होंगी। मैंने उसकी बहन या प्रेमिका का जिस प्रकार अभिनन्दन किया यदि उसके बदले में कोई विलायती छोकरा मेरी सुन्दर बीवी के आँख मारे तो मुझे क्या शिकायत हो सकती है!"

"जब तुम वहाँ थे तब तुमने आँख मारने के अलावा और भी कुछ किया होगा, मैं अच्छी तरह जानती हूँ। परन्तु मैं एक हिन्दू स्त्री हूँ। अजनबी की बात तो छोड़ो; मैं किसी का भी आँख मारना पसन्द नहीं करती।"

जब वह अपनी मेज़ पर पहुँचे, गाना पूरे ज़ोर पर था। एक क्षण में मंजु अपनी शिकायत भूल गई। वह नाचने वालों के क़दम देखकर ताल समझने का प्रयत्न कर रही थी। राहुल भोजन का आर्डर दे रहा था।

वह आज की शाम के मनोरंजन में उस संघर्ष को भुला देगा जो सारे दिन उसके मस्तिष्क पर छाया रहा था। वह खूब मज़े उड़ायगा। परिचित संगीत उसे हर्षदायक मालूम हो रहा था। ब्राण्डी के घूँट उसके गले से उष्णता की लहरें बनकर उसके शरीर में प्रवेश कर रहे

थे। उसके पाँव नृत्य की संगीतमय गति के लिए व्याकुल हो रहे थे। "मंजु, नाचोगी ?" उसने एक क्षण बाद कहा, क्योंकि अब नाच तेज़ हो हो रहा था और मंजु वह नाच अच्छी तरह जानती थी।

लेकिन मंजु ने अपना सिर हिलाते हुए बड़बड़ाकर कहा, "अभी नहीं।" उसकी आँखें चमक रही थीं, उनमें उत्तेजना झलक रही थी।

"उस लड़की को नाचना नहीं आता," उसने एक लड़की की ओर इशारा करते हुए कहा, जो उसकी मेज़ के पास से नाचती हुई गुज़र रही थी।

और राहुल ने भी उसके चित्त को शान्ति पहुँचाने के लिए अपना सिर हिलाते हुए कहा, "हाँ, बिलकुल नहीं जानती।"

"उस नवयुवती को अपना साथी बनाओगे ?" उसके होंठों पर एक दबी हुई हँसी खेल रही थी जब उसने अपनी आँख से एक नाटी-सी, छोटी-छोटी टाँगों वाली औरत की ओर संकेत किया, जिसके भारी कूल्हे उसके तेज़ी से थिरकते हुए क़दमों की ताल पर बड़ी शिथिलता से मटक रहे थे।

"देखो," उसने एक मिनट बाद साँस लेकर कहा, "तुम इतना अच्छा नाच सकते हो ?" वह हँसने लगी। उसके गुलाबी होंठों से यह विदित हो रहा था कि उसे नाच में बहुत मज़ा आ रहा है।

राहुल ने इधर-उधर दृष्टि डाली।

"नहीं देखा तुमने ? वह नंगी पीठ वाली मेम साहब। अरे वह औरत, जिसकी पीठ बिलकुल खुली हुई है। हिन्दू स्त्री...इतनी निर्लज्ज !"

वह लम्बी, गठे बदन की औरत थी, काले-काले पट् टेदार कटे हुए बाल. सुर्ख होंठ। गहरे लाल रंग का रेशमी वस्त्र उसे गले से टखने तक ढके हुए था। वह अपनी साड़ी इस प्रकार पहने हुए थी कि उसके हाथ और कन्धे बिलकुल खुले हुए थे। उसके ब्लाउज़ में आगे एक तिकोना गला इस तरह कटा हुआ था कि उसकी छातियों का उभार और दोनों छातियों के बीच का गढ़ा साफ़ दिखाई देता था। पीछे की ओर ब्लाउज़

इससे भी अधिक कटा हुआ था जिसके कारण उसकी चिकनी सफेद खाल का एक बहुत बड़ा भाग बिलकुल नग्न दिखाई दे रहा था। हिरनी के बच्चे के-से कोमल क़दम रखकर नाचते समय उसके अंग-अंग से स्फूर्ति की धारा प्रवाहित हो उठती थी।

"ओह, आई सी ? मैं उसे जानता हूँ। उसकी कहानी भी अजीब हैं। उसका पति मेरे साथ ही काम करता है। मेरे विभाग में नहीं है, वह केमिस्ट्री विभाग में है। बहुत दब्बू, पुराने क़िस्म का आदमी है। अपनी पत्नी से कई बरस बड़ा है और कद में इसका आधा होगा। वह अपनी पत्नी के प्रेम में पागल है, कम-से-कम मैंने यही सुना है, और इस स्त्री से अलग उसके जीवन का कोई अस्तित्व ही नहीं है। वह इसको हर प्रकार की आज़ादी देता है। और देखो, यह अपनी आज़ादी का क्या उपयोग करती है ?"

"उसकी पीठ कितनी गोरी है—बिलकुल चूने की तरह सफ़ेद। उसके सामने तो मैं काली हूँ।"

"सिर से पाँव तक उसका सारा शरीर पाउडर से पुता हुआ है, कुछ नहीं तो शरीर का जितना भाग दिखाई देता है वह तो है ही।"

मंजु ने उसे कनखियों से देखा।

"ओ हो! तुम तो, ऐसा मालूम होता है, उसके बारे में बहुत काफ़ी जानते हो।"

"वह कभी-कभी अपने पति से मिलने कालेज आती है। उस समय वह इतना पाउडर लगाकर नहीं आती। मैं उससे मिल चुका हूँ, यद्यपि उसे यहाँ इस भीड़ में मुझे पहचानने की कोई इच्छा नहीं होगी।"

"क्यों, क्यों नहीं होगी ?"

"प्रतिष्ठा। सामाजिक पद। वह बड़े-बड़े अफ़सरों के साथ घूमती है। वह अपने सामाजिक दम्भ में डूबी हुई है।"

मंजु को आश्चर्य-सा हो रहा था। "तुम भी तो यूनिवर्सिटी में

उच्च-पद पर हो; प्रतिष्ठित वैज्ञानिक हो। तुम···"

"मैं केवल शिक्षक हूँ। मैं आई० सी० एस० तो नहीं हूँ। वह और उसके साथ वाले हर उस चीज़ से प्रेम करते हैं, जो आई० सी० एस० की श्रेणी की हो। बाक़ी सारी दुनिया उनकी नज़रों में तुच्छ है। बेचारी, उसका हृदय गुलाम है।"

मंजु विचारों में निमग्न मछली खा रही थी। "तभी तो वह अपनी पीठ खोले रहती है!" उसकी बात बिलकुल अर्थहीन थी।

"हमारा नया जीवन, जो अभी तक सदियों पुरानी गुलामी में जकड़ा हुआ है, आधी प्रगति है, आधा पतन," उसके पति ने उत्तर दिया।

"मेरी इच्छा होती है कि मुझे भी उसकी तरह अपने चेहरे को सफेद बनाना आता होता तो···।" मंजु अभी तक विचारों में डूबी हुई थी।

"मंजु, तुमको अपना चेहरा सफ़ेद करने की क्या ज़रूरत? मुझे तो तुम ऐसे ही अच्छी लगती हो। तुम्हारा चेहरा ऐसे ही बहुत सुन्दर है।"

"सचमुच तुम्हारा यह विचार है? अपने पिछले अनुभव के बाद भी?"

"कैसा अनुभव, मंजु?"

"वह सारी गोरी लड़कियाँ, जिनको तुमने आँख मारी है!"

"उनकी बात छोड़ो। उनमें की सुन्दर-सी-सुन्दर लड़की तुम्हारी सुन्दरता का मुक़ाबला नहीं कर सकती।"

"झूठे कहीं के," उसने उत्तर दिया; पर मन-ही-मन वह प्रसन्न हो रही थी।

बैण्ड पर फिर कोई तेज़ धुन बज रही थी। उसने अपना काँटा और छुरी प्लेट पर रख दिया और मेज़ पर झुककर उसके कान में कहा, "आओ नाचेंगे।"

और वह उसको लेकर नाचने के लिए उठ खड़ा हुआ। मंजु का

चेहरा पीला पड़ा जा रहा था; उसके पाँव घिसट रहे थे । लेकिन जब वह घूमकर अपनी मेज़ के पास वापस आई और उसने कुरसी पर रखे हुए अपने बैग को और मछली पर तिरछे रखे हुए काँटे को देखा तो उसमें शक्ति वापस आ गई; यह धारणा कि सब लोग उसे ही देख रहे हैं, दूर हो गई और उसके अंगों में स्फूर्ति आ गई ।

उसे बड़ा आनन्द आ रहा था ।

नाचते समय उसकी गति में एक स्वाभाविक प्रवाहमय सौन्दर्य दिखता था, उसकी काली बड़ी-बड़ी काजल-लगी आँखों में आँखें डालकर राहुल ने देखा तो वह हर्षातिरेक से चमक उठी । उसका स्वप्न साकार हो गया था । और उसकी आँखों का हर्ष राहुल के शरीर में विद्युत्प्रवाह की तरह दौड़ गया । आज उसने जो नया इत्र लगाया था, उसमें कोमलता और उत्तेजकता थी, शीतलता थी और उष्णता थी । आज उस सुगन्ध ने एक नया अर्थ धारण कर लिया था । वह उसके शरीर की सुगन्ध थी, जो उस समय के वातावरण के अनुकूल रूप में ढल गई थी । ऐसा मालूम होता था कि किसी निपुण गन्धी ने उस विशेष वातावरण में उसका अध्ययन किया था और फिर उसके लिए जो सुगन्ध तैयार की थी उसमें उसकी भावनाओं को समो दिया था ।

अपनी पत्नी के आनन्द के प्रकाशमय सागर में वह खो गया । यद्यपि उसके पाँव संगीत की लय पर थिरक रहे थे फिर भी एक क्षण के लिए उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह चमकदार फर्श पर एक सुन्दरी स्त्री के साथ नहीं नाच रहा बल्कि एक बन्दी के रूप में अदालत में खड़ा है । उसने अनुभव किया कि वह अभियुक्त वहाँ खड़ा अभियोग लगा रहा है : आज़ादी, भोजन और सुरक्षा की माँग करने वाली मूल वृत्तियाँ हैं जो इस समय विशाल जन-समुदाय को उद्वेलित कर रही हैं ।

परन्तु यह क्षण हवा की तरह आया और चला गया ।

थोड़ी देर बाद जब वह मेज़ पर बैठा भुनी हुई बत्तख़ खा रहा था, उसके मस्तिष्क में एक विचार आया—कैदियों को कैसा खाना मिलता

होगा; लेकिन उसने इस विचार को भगा दिया और बत्तख़ खाने में लीन हो गया।

उसके पाँव मेज़ के नीचे मंजु के घुटनों से छू गए और सहसा उस के शरीर में रोमांच की लहर दौड़ गई। इस क्षणिक आनन्द की इच्छा बढ़ने पर उसने अपने घुटनों को फिर उसके घुटनों से सटा दिया। मंजु ने बिना यह समझे कि वह क्या अनुभव कर रहा है अपना मुँह फेर लिया। फिर भी अपने स्त्री-सुलभ स्वभाव के कारण वह समझ गई कि वह परेशान है (कुणाल कुछ दिनों में लड़ाई पर चला जाने वाला था) और उसने उसकी भावनाओं को समझकर मेज़ के नीचे से हाथ बढ़ाकर उसे धीरे से छू लिया। राहुल ने कृतज्ञता के भाव से उसके हाथ को अपनी मुट्ठी में दबा लिया। ऐसा प्रतीत होता था कि किसी मौलिक इच्छा से बचने के लिए—ऐसी इच्छा से जिसके पीछे एक भयानक संकट छिपा हुआ था—उसने उसके नाज़ुक कोमल हाथों को कमल के फूल की तरह अपनी मुट्ठी में दबा लिया था।

मोटर से घर वापस जाते समय उसने मंजु को अपने बिलकुल निकट खींच लिया, फिर और निकट ; और वह भी उसकी पसलियों से सटकर अपना नींद से बोझल सिर उसके कन्धों पर रखकर बहुत सन्तुष्ट थी। और इसी दशा में वह धीरे-धीरे रात के सन्नाटे में मोटर चलाता रहा। मंजु के हृदय में केवल एक विचार था। वह उससे एक दिन के लिए भी अलग नहीं होगी, एक दिन के लिए भी नहीं, कभी नहीं।

बच्ची अपने पलंग पर सो रही थी। राहुल ने झुककर उसे गोद में उठा लिया।

"जाग जायगी," मंजु ने बहुत ही धीमे स्वर में उसे चेतावनी दी, परन्तु वह मंजु की बात की ओर ध्यान दिये बिना बच्ची को लाड़ करने लगा, उसके बालों पर और उसके गाल पर हाथ फेरा और बड़ी देर तक उसे अपने सीने से चिपटाए रहा। ऐसा लगता था कि अब कोई उसे

उससे अलग न कर सकेगा, मानो अपनी बच्चों में उसे सुरक्षा का दूसरा साधन मिल गया था।

कैम्ब्रिज से भी उसे बड़ी सहायता मिली। दूसरे दिन प्रातःकाल की डाक से उसे अपनी पुरानी यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर का एक पत्र मिला। यह प्रोफ़ेसर पदार्थ-विज्ञान में विश्व-व्यापी ख्याति प्राप्त कर चुके थे; उन्हें नोबुल पुरस्कार भी मिल चुका था। राहुल ने उनके पास कॉसमिक (ऐहिक) रश्मियों के वितरण की विधि के विषय पर एक लेख भेजा था। प्रोफ़ेसर उसके लेख से बहुत प्रभावित हुए थे और उन्होंने लिखा था कि यदि राहुल चाहे तो वह उस लेख को *'साइंस'* नामक पत्रिका में छपवा सकते हैं। शक्ति के इन नए स्रोतों पर अधिकार प्राप्त करने पर मानवता का भविष्य निर्भर था और कॉसमिक (ऐहिक) रश्मियाँ, जो सितारों से निरन्तर पृथ्वी पर पड़ती थीं, इसी प्रकार का एक स्रोत थीं। राहुल के अनुसन्धान का क्षेत्र बहुत विस्तृत था और प्रोफ़ेसर को अपने पुराने विद्यार्थी की क्षमता में बहुत विश्वास था। प्रोफ़ेसर ने लिखा था कि कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी उसे अनुसन्धान कार्य के लिए बज़ीफ़ा देने को भी तैयार हो जायगी, यद्यपि इसकी अनुमति मिलने में कुछ विशिष्ट कारणों से कुछ समय लगेगा।

राहुल को अपने महत्त्व का अनुमान होने लगा। वह अब अपनी प्रयोगशाला में अधिक परिश्रम करता। उसने निश्चय कर लिया था कि वह विज्ञान के क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण काम करके दिखायगा।

दिन बीतते गए, दिनों से सप्ताह, और इसी प्रकार कई माह व्यतीत हो गए। राष्ट्रीय आन्दोलन अभी तक निष्क्रिय था, वह यही निश्चय नहीं कर पाया था कि किधर मुड़े। *यह महान् दुःख की बात होगी यदि यह युद्ध भी साम्राज्यवादी भावना से इस ढाँचे को बचाए रखने के लिए लड़ा गया जो स्वयं युद्ध का और मानवता की पतनशीलता का कारण है।* राष्ट्रीय आन्दोलन का यह विचार था। फिर भी वह आशा लगाए बैठा था कि इस युद्ध में *किसी एक देश को दूसरे देश*

पर विजय प्राप्त नहीं होगी और न ही कोई देश दूसरे देश पर सन्धि की शर्तें लाद सकेगा बल्कि सारे देशों की समस्त जनता के लिए सच्चे जनवाद की विजय होगी। इसीलिए राष्ट्रीय आन्दोलन ने फौरन किसी संघर्ष के लिए देश की जनता का आह्वान नहीं किया। राष्ट्रीय आन्दोलन इस भीषण संकट के काल में इंग्लिस्तान को किसी प्रकार की हानि पहुँचाने के लिए तैयार न था। यदि वह ऐसा करेगा तो वह अहिंसा सच्ची अहिंसा नहीं होगी। राष्ट्रीय आन्दोलन को रणनीति की अपेक्षा नैतिकता का ध्यान अधिक था।

राहुल के दिमाग़ पर भी यही वातावरण छा गया। अब वह अपनी भावनाओं और विचारों पर कोई भार अनुभव न करता था। जीवन के कष्ट वह सहज ही स्वीकार कर सकता था जैसे कि कुछ लोग कर लेते हैं, क्योंकि उसकी मनोवृत्ति आत्म-त्याग के अनुकूल नहीं बन पाई थी। लेकिन इससे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उन दिनों जो उमंग थी वह इतनी तीव्र नहीं थी कि उसे आवश्यकतानुसार हार्दिक रूप से तैयार कर सके। प्रकाश, जो इस उमंग का प्रतीक था, केवल एक शिष्य बनकर रह गया; साथी या भाई न बन सका।

सोवियत यूनियन के इस युद्ध में सम्मिलित हो जाने के बाद राहुल ने अपने मन को किसी तरह समझा-बुझाकर इस बात पर राजी कर लिया कि उसका देश युद्ध में जो सहायता दे रहा है, अनुत्साहपूर्ण सहायता ही सही, वह ठीक है। उसका विचार था कि अब युद्ध की दिशा ही बिलकुल परिवर्तित हो जायगी। ह्वाइट-हॉल, जो परिस्थितियों के बन्धनों से अब क्रेमलिन के साथ सम्बद्ध था, प्रचार के लिए ऐसी बातें करने पर विवश होगा जो उसकी आवश्यकताओं को पूरा करें, यद्यपि हृदय से वह उन बातों से घृणा करता है। मन-ही-मन यह सोचकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि इतिहास में इस बात के अनेक उदाहरण मिलते हैं कि ऐसे लोगों को परस्पर मित्रता स्वीकार करनी पड़ी जिनके मित्र होने की किसी को आशा तक न हो सकती थी। परन्तु चर्चिल और

स्टालिन की मैत्री से विचित्र उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता।

अटलांटिक महासागर से विश्व-स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र का जन्म हुआ।

मानव-जाति के आधे भाग के शासकों ने यह निश्चय किया कि वह जनता के इस अधिकार का सम्मान करेंगे कि *वह स्वयं इस बात का निर्णय करे कि वह किस प्रकार के शासन में रहना चाहती है और वह यह भी चाहते हैं कि जिन लोगों से बलपूर्वक उनका आत्म-शासन का पूर्ण अधिकार छीन लिया गया, वह उनको वापस मिले।* बड़ी-बड़ी बातें! हिन्दुस्तान के सिर पर जो नंगी तलवार लटक रही थी, उसका क्या होगा? हमने तलवार के बल से भारतीय साम्राज्य को जीता है और तलवार के ही बल से हम उसे अपने कब्ज़े में रखेंगे—इस बात का उस घोषणा से क्या सम्बन्ध था।···*विजय के लिए प्रयत्न करते हुए और उसके लिए लड़ते हुए हमें उस लक्ष्य को नहीं भुला देना चाहिए जो विजय के भी आगे है···जिस उत्तम संसार की रचना को हमने अपना ध्येय बनाया है उसके लिए हमको अभी से तैयारी करनी चाहिए।*

मनुष्य के अधिकार! चार स्वतन्त्रताएं! विश्व की नई व्यवस्था अब भी ऐसा अस्त्र तैयार कर सकती थी जो केवल कोरी बातों तक सीमित न रहकर, पुरानी व्यवस्था की शृङ्खलाओं को तोड़ने के लिए हथौड़े का काम दे।

छः

ग्रीष्म-ऋतु के आकाश पर से प्रकाश ढल चुका था। खाड़ी से आने वाली ठंडी-ठंडी हवाएं गोधूलि-वेला को थपकियाँ दे रही थीं, परन्तु उन दोनों के सीनों पर पसीने की बूँदें थीं। उनका साँस तेज़ी से चल रहा था। भारी मछलियों वाली नाव टेढ़ी-मेढ़ी नदी के प्रवाह में केवल उसके दो पतवारों की सहायता से बड़ी तेज़ी से आई थी। दो पतवारों ने चार का काम किया था।

"अब हम खतरे से बहुत आगे निकल आए हैं," कनु ने अपनी धोती के छोर से अपना नंगा सीना पोंछते हुए कहा, "बस अब थोड़ी दूर और जाना है—यही कोई सौ पतवार और चलाने पड़ेंगे। वह देखो जहाँ पर पानी खत्म होता है वहाँ गाड़ियों का झुरमुट है न, बड़ी अच्छी जगह है। नाव अच्छी तरह छिप जायगी।"

"धीरज से काम लो कनु भाई," उसके साथ वाले नवयुवक मछुहरे ने उत्तर दिया। उसका हाँफना बन्द हो चुका था। "नाव को धारा के सहारे बहने दो।"

नाव धीरे-धीरे चट्टान के पास से बहती हुई तट के समीप आती गई। प्रतिक्षण वह संकट के जाल से दूर होते जा रहे थे।

जापान का जंगी बेड़ा खाड़ी में मनमानी कर रहा था और यही महान् संकट का कारण था। बंगाल के चौड़े उभरे हुए वक्षस्थल पर

समुद्र के रास्ते बेरोक-टोक आक्रमण हो सकता था, उसकी रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। शत्रु किसी दिन भी वहाँ अपनी फौजें उतार सकता था। उस समय क्या होगा? चुप्पी साधे हुए अधिकारियों का दृढ़ उत्तर था—शत्रु के आने से पहले सब चीजें विध्वस्त करके पीछे हट जाओ। इसलिए यह आवश्यक था कि बंगाल की नदियों के सुदूर दक्षिणी भाग में लगभग एक हज़ार मील लम्बी जमीन पर की सारी चीजों का विध्वंस कर दिया जाय। और इस कार्य का श्रीगणेश यातायात के साधनों से, नावों से, होने वाला था। नदियों के इस इलाके में बैलगाड़ियों, मोटर-ट्रकों, मालगाड़ियों, सबका काम नावों के द्वारा ही होता था। नावों के बिना शत्रु फँस जायगा, असहाय हो जायगा।

नावों पर कब्ज़ा करके उनको नष्ट कर दो। बड़ी नावों को अपने साथ ले आओ।

अतः बरूनी के गाँव में भी, अन्य पाँच सौ गाँवों की तरह नाव पकड़ने वाले आए थे। इन सरकारी कार्यकर्ताओं की सहायता के लिए फौज के सिपाही भी साथ थे। पचास नावें तो उन्होंने पकड़ ली थीं, परन्तु कुछ अभी तक उनके हाथ नहीं लग पाई थीं। भगोड़े! नाव पकड़ने वालों के पास हर गाँव के लिए एक छपी हुई सूची थी। बंगाल के शासक अपना काम बड़ी मुस्तैदी से कर रहे थे।

इसमें कोई अत्याचार नहीं था, कोई चीज जबरदस्ती नहीं जब्त की जा रही थी। नावों के मालिकों को मुआविजा दिया जा रहा था। सरकारी कर्मचारी, जो नाव पकड़ने आते थे, अपने साथ रुपयों की थैलियाँ भरकर लाते थे। परन्तु बेचारे जाहिल मछहरों को क्रोध आ रहा था। उनको अपने भले-बुरे का कुछ ज्ञान न था। यदि जापानी आ गए, तो क्या वह नावों का मूल्य देंगे? इसके अतिरिक्त इस संकट के समय में उनका भी तो सरकार के प्रति कुछ कर्तव्य था!

अज्ञान के अन्धकार में डूबे हुए मछहरे नाव पकड़ने वालों को जापानियों से भी बड़ा खतरा समझने लगे।

काम लगभग पूरा हो चुका था। पकड़ी हुई नावों का नदी के तट पर एक अम्बार लगा हुआ था। लेकिन पाँच नावों का कहीं पता न था, वे आख़िर गईं कहाँ ?

कनु अपने उस मित्र मछहरे की सहायता के लिए भागा हुआ आया था। ढलते हुए सूरज के प्रकाश में वह टेढ़ी-मेढ़ी नदी में नाव को एक जगह से दूसरी जगह छिपाते फिर रहे थे। वह अपने शत्रु से पीछा छुड़ा रहे थे, उनको डर था कि कहीं नाव पकड़ में न आ जाय। सूरज प्रायः डूब चुका था। प्रातःकाल सूरज निकलते ही नावें पकड़ने वाले चले जायंगे। इस निकल भागने वाली नाव की जान बच जायगी।

वह दुबला-पतला किसान बालक कनु पिछले कुछ वर्षों में बड़ी तेजी से बढ़ गया था। वह अपने पिता से इतना लम्बा हो गया था और उसके ऊपर वाले होंठ पर बाल भी काले पड़ने लगे थे।

"आख़िर यह हैं कौन—यह जापानी ?" मछहरे ने पूछा। उसके हृदय में बड़ा कौतूहल हो रहा था। कुछ सप्ताह पहले तक शायद किसी ने भी इस नाम को नहीं सुना था, जो आज उनके लिए एक हौआ बन गया था। अब तो रात-दिन उनके कान में यही नाम गूँजता रहता था।

"बिदेसी हैं," कनु ने मुँह बनाते हुए कहा, "सब बिदेसी हैं, चाहे वह अंग्रेज़ हों, चाहे जर्मन या जापानी हों या चीनी; सब-के-सब बिदेसी हैं।"

"और ईरानी, तूरानी और आर्मीनी भी तो," मछहरे ने वह नाम और जोड़ दिए जो वह जानता था, "सब बिदेसी हैं। यह लोग अपने घर में क्यों नहीं रहते ? उनको क्या पागलपन सूझता है कि वह सात समुन्दर फाँदकर इतनी दूर काले कोसों आकर निर्दोष लोगों के घरों को अन्धकारमय बना देते हैं ?"

"लालच," कनु ने चटकारी भरते हुए कहा, "इनके लालच की भूख बहुत तेज़ होती है। वह दौलत बटोरने के लिए आते हैं, जितनी दौलत बटोर पायं। और दूसरे लोगों को निर्धन बनाए बग़ैर, बिलकुल

कंगाल बनाए बगैर वह धनवान कैसे बन सकते हैं ? देखो, ऐसे समझ लो कि तुम मछहरों के पास नावें हैं, हर घर में एक नाव है; और नदी में असंख्य मछलियाँ भरी पड़ी हैं। एक आदमी गुण्डों की तरह हथियारों से लैस आता है और तुम्हारी नावें छीन लेता है, सारी-की-सारी नावें। अब केवल वही मछलियाँ पकड़ सकता है। उसके अतिरिक्त कोई नहीं पा सकता। क्योंकि तुम्हारा तो धन्धे का साधन छिन गया। फिर वह आदमी तुमसे कहता है, मानो उसका हृदय नेकी से भर गया हो, तुम लोग मेरे लिए मछलियाँ पकड़ो तो हर दस मछली पर एक मछली तुमको मिलेगी।" तुम लोग लाचार हो। तुम लोग उसके दया-दान के लिए हाथ फैला देते हो। नाव तुम्हारी होते हुए भी तुम्हारी नहीं है। नदी सबके लिए गंगा मैया है, पर तुम्हारे लिए वह सौतेली माता है। मछली की सम्पदा भगवान् ने सबके लिए मुफ़्त दी है, पर हर दस मछली में से नौ उस मोटे आदमी के हाथ लगती हैं और तुमको केवल एक मिलती है। इस तरह अगर बीस मछहरे हों और हर एक की टोकरी में एक-एक मछली हो तो उस मोटे आदमी के पास बीस की नौगुनी मछलियाँ होती हैं। अब समझ में आया यह तिकड़म ?"

पूरी तरह न सही, पर मछहरे की समझ में यह बात आ गई। संख्याओं के गोरख-धन्धे से चकराकर उसने दुहराया, "बीस की नौगुनी।"

मछहरा अपनी नाव को हाथ से सहलाने लगा मानो उससे दुलार कर रहा हो।

"कैसा संकट है !" वह बड़बड़ाया। "हमारे सिर पर लाखों परेशानियाँ हैं, भूख है, सैकड़ों और विपदाएं हैं। शीतल तारों से हमारे लिए तो आग की ज्वाला ही बरसती है। कनु भाई, तुम न होते तो मैं तो कहीं का न रहता; मैं कर ही क्या सकता था ?" वह एक क्षण के लिए रुका और फिर बोला, "नावें ! नावें तो हमारे अंग हैं। नावें हमारे पाँव हैं; उनके बगैर तो हम नदी पर एक जगह से दूसरी जगह,

एक गाँव से दूसरे गाँव या एक द्वीप से दूसरे द्वीप नहीं जा सकते। नावें हमारे हाथ हैं; उन्हीं की सहायता से हम मछलियों का शिकार करते हैं। कुछ मछलियाँ हम ख़ुद खाते हैं, कुछ बेचकर अपने लिए नमक और चावल और बाज़ार में मिलने वाली ज़रूरत की दूसरी चीजें लेते हैं। हम लोगों के लिए तो नावें हमारे अंगों से भी बढ़कर हैं। वह हमारी रगों में बहने वाला ख़ून हैं, वह हमारे शरीर की हड्डियाँ हैं, वह हमारा हृदय. हमारी जान हैं, हमारा सब-कुछ वही हैं।" और वह फिर नाव पर हाथ फेरने लगा, मानो उसे दुलार कर रहा हो।

"ऐसा लगता है कि मछलियाँ ही तुम्हारे शरीर का वस्त्र हैं, वही तुम्हारे नंगे शरीर को ढकती हैं," कनु ने सिर हिलाते हुए कहा। "अगर मछलियाँ न हों तो तुम्हारे पास तन ढकने को कपड़ा भी न हो; तुम नंगे ही फिरो।"

"जैसे मछलियों से ही हमारे झोंपड़ों में प्रकाश होता है," मछहरे ने कहा, "मछलियाँ न हों तो हमारे दियों में तेल न हो। घोर अन्धकार छा जाय, चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार।"

"अन्धकार!" कनु ने स्वीकृति के भाव से फिर सिर हिलाया, "किसानों के लिए भी अन्धकार हो जाय। नावों के बिना हम अपनी फ़सल नदी के रास्ते बाज़ार तक कैसे ले जायंगे? और फिर नदी के टापू, हाँ? वह तो बिलकुल पानी से घिरे हुए जेलखाने बन जाते हैं।" उसने अपनी ज़बान से चटकारी भरी, उदास होकर सिर हिलाया, और पतवार उठाकर नाव को झाड़ी की ओर मोड़ने लगा। झाड़ी अब बिलकुल निकट आती जा रही थी।

वह उथले पानी में कूद पड़े। अब उनके सामने सबसे मुश्किल काम था। उनको जितनी दूर सम्भव हो सके, नाव को खींचकर ले जाना था ताकि वह बाँसों और घनी झाड़ियों की आड़ में छिप जाय। धूप से गरम पानी में वह कमर तक डूबे खड़े थे और पानी उनकी धोतियों के अन्दर घुस रहा था।

"धक्का दो; ज़रा और खींचो ! ज़रा और धक्का दो; हाँ, खींचो ! हेइ-ओ-ओ।" उनके हाथ एक-साथ ज़ोर लगा रहे थे।

"रहने दो, क्यों बेकार मेहनत कर रहे हो ?" किसी की आवाज़ आई। एक आदमी झाड़ी के पीछे से निकला; फिर एक और आदमी निकला। बाद वाला आदमी ख़ाकी वर्दी पहने एक सिपाही था। उसके हाथ में बन्दूक थी।

"मैं तुम लोगों को देख रहा था, मैं तुम्हारा पीछा कर रहा था," नाव पकड़ने वाले ने कहा, "हमारी आँखें बहुत दूर तक देखती हैं।" यह कहकर उसने अपनी दूरबीन को थपथपाया।

इस दुर्घटना से मछुहरे की तो सिट्टी गुम हो गई। उसकी कनपटियाँ धमकने लगीं और उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गईं। जब उसे कुछ होश आया तो वह बड़े दयनीय ढंग से फूट-फूटकर रोने लगा, "मालिक, हमारी नाव न लो। तुमने सब तो ले लीं; बस यह एक छोड़ दो मालिक !"

"हमें हुक्म है। हमें तो जो हुक्म मिला है उसे पूरा करेंगे। इसमें हमारा क्या कसूर है ? हमें यही हुक्म मिला है।"

"मालिक, नाव के बिना तो हम मर जायंगे। किसान के लिए जैसे हल-बैल हैं वैसे ही हमारे लिए नाव है। इससे अच्छा तो यही है कि हम सबको मार डालो। मालिक···" उसकी छुटी हुई सिसकी सहसा उसकी आवाज़ के साथ जमकर रह गई। उसके मित्र ने उसका हाथ दबाकर गम्भीर भाव से धीरे से कहा—"बेकार है तुम्हारा कुछ कहना। क्या फायदा ? लकड़ी के और पत्थर के हृदय होते हैं, परन्तु मनुष्य के नहीं। बेकार कहने से क्या फ़ायदा ?"

नाव पकड़ने वाले को उतावली हो रही थी।

"वही बात, मेरे तो कान पक गए हैं सुनते-सुनते। अरे, इस बक-वास से फायदा ? हम तुम्हारी यह शाही दौलत मुफ़्त तो लिये नहीं ले रहे हैं। तुमको इसका दाम मिलेगा। बाजार में इसका जो सही मूल्य

होगा वह तुमको दिया जायगा। गवर्नमेण्ट इन्साफ से काम लेती है, वह बड़ी दयालु है। वह तुम्हारी माँ-बाप है, यह तो तुम जानते ही हो। तुमको जो पैसा मिलेगा उससे तुम्हारा काम बहुत दिन तक चल जायगा। इतनी-सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आती? ठाठ से घर बैठना और मजे से मुफ्त में चावल खाना, जी-भर के सोना, हरि का नाम जपना और मस्त रहना। तुम्हारा जायगा क्या, बस यही लकड़ी के कुछ सड़े हुए तख्ते न!"

"पैसा हाथ का मैल है। इधर आयगा उधर चला जायगा। फिर क्या होगा मालिक···?"

"और अगर जापानी आ गए तो क्या होगा? वह तो तुम्हारे पास जो-कुछ होगा छीन लेंगे, और बदले में एक कौड़ी भी नहीं देंगे। गवर्नमेण्ट तो तुम्हारी नाव लेकर तुमको पैसे देती है और तुम्हारी उस राक्षस से रक्षा करती है जो समुन्दर में बढ़ता चला आ रहा है—वह भयानक जापानी!"

"मालिक, यह नाव तो हमारे पास है। यही हमारा सब-कुछ है। जापानी हमसे इससे बढ़कर हमारे प्राणों के अतिरिक्त और क्या लेंगे? मालिक···"

नाव पकड़ने वाले ने इस हठी आदमी को चुप करा दिया।

"बस, बस, बहुत हो गया। हमारे पास तुम्हारी खिटिर-मिटिर सुनने के लिए फालतू वक्त नहीं है।" और बहुत सावधानी से पाँव बढ़ाते हुए, अपनी धोती को कमर तक चढ़ाकर वह नाव में चढ़ गया। उसके साथ वाले आदमियों ने नाव को ढकेलकर धारा में कर दिया और फिर स्वयं नाव में चढ़कर उन्होंने पतवार सँभाल लिये।

"आओ," नाव पकड़ने वाले ने चिल्लाकर कहा, "लो यह अपने खून की कमाई।" और उसने बहुत अकड़कर रुपयों की थैली उसको दिखाई।

नाव जिस रास्ते होकर आई थी उधर ही वापस जा रही थी। उसी समय नाव पकड़ने वाले ने मछुहरे को रुपये दिये। "देखो, कागज के

नोट नहीं हैं जो गन्दे हो जायं या फट जायं। सब चमकते हुए चांदी के रुपये हैं। इनकी चमक से अपनी आँखें सेंक लो। बड़े भाग्यवान हो तुम कि तुम्हारे-जैसे कृतघ्नों के साथ गवर्नमेण्ट इतनी उदारता से पेश आती है। दो रुपये मैंने अपने कमीशन के काट लिए हैं—यह दस्तूर है। अच्छा अब इस रसीद पर अँगूठा लगा दो।"

मछहरे ने अपना अँगूठा बढ़ा दिया और कागज पर बिना किसी आपत्ति के निशान लगा दिया, लेकिन वह बिलकुल भौंचक्का था। एक क्षण के लिए उसने अपना हाथ नाव की चिकनी लकड़ी पर फेरा, मानो उसका आलिंगन कर रहा हो और फिर उसके सूखे होठों से दर्द-भरे स्वर में निकला, "मेरी नाव! हाय मेरी नाव!"

कनु को अपने मित्र के लिए बड़ा दुःख हो रहा था। अभी उस नौजवान मछहरे के विवाह को एक मास भी नहीं हुआ था। उस अवसर पर वह मारे खुशी के फूला न समाता था। उसने गाँव-भर के हर किसान-परिवार को एक-एक सेर मछली भेंट दी थी। इससे पहले पिछले सौ बरसों में भी किसी ने इतनी उदारता का नाम तक न सुना था। लेकिन मछहरे को तो वह लड़की मिल गई थी जिस पर वह जान देता था। और चूँकि उसकी साध पूरी हो गई थी, वह रोज नाव लेकर जाता और घण्टों नदी में मछली पकड़ता रहता। उसने बहुत मछलियाँ पकड़ीं, और चूँकि वह स्वयं गरीब था इसलिए उसने यह सारी मछलियाँ अपने किसान भाइयों को बाँट दी थीं। चाहे कुछ लोग उसकी इस बात पर मन-ही-मन हँसे हों, पर कनु अपने मित्र की कोमल भावनाओं को भली भाँति समझता था।

कनु ने अपना सिर झुका लिया और चूँकि उसका मन उदास था, वह लोकप्रिय गीत गुनगुनाने लगा :

गाना गाओ, गीत सुनाओ!
सूरज चाँद सितारे जैसे ज्योति का संगीत सुनाते,
फूल सुनाते रंग-बिरंगे गीत,

मीठे स्वर में पक्षी गाते,
तुम भी गाओ मेरे अन्तर, गीत सुनाओ !

पकड़ी जाने वाली नावों का एक ढेर सामने लगा था। गोधूलि-वेला के बढ़ते हुए अन्धकार में नावों के श्यामल आकार दिखाई पड़ रहे थे। मछहरे ने अन्तिम बार प्रतिरोध के भाव से कहा, "अंग्रेज कम्पनी बहादुर के राज में ऐसा घोर जुलुम हो और कोई इन्साफ करने वाला न हो, कोई नहीं ?" उसका स्वर मारे दुःख के भर्रा गया था।

एक खाकी वर्दी वाला सिपाही वहाँ चुपचाप बैठा अपनी मूँछ के सिरों को दाँतों से चबा रहा था। वह किसी दूर देहात का किसान था। बीस साल से फौज में नौकर था और उसे पुरस्कार-स्वरूप एक पट्टी भी मिल चुकी थी। उसे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि हिन्दुस्तान के इस सुदूर भाग में ऐसे लोग भी हैं जो यह समझते हैं कि उन पर अभी तक पुरानी ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज है, जिसने हिन्दू और मुसलमान शासकों से देश को छीन लिया था। इस बात पर हँसता हुआ वह बोला—

"अरे ! तुम क्या निरे मूर्ख ही हो ? कम्पनी का राज तो न जाने कब का खत्म भी हो गया। अब तो महारानी विक्टोरिया का राज है। तुम लोगों को आज की कुछ खबर नहीं। तुम लोग अभी तक पिछले जमाने के अंधेरे में रहते हो !"

कनु ने उसे बड़े तिरस्कार से घूरा। जो क्रोध उसके अन्दर-ही-अन्दर खौल रहा था, वह बहुत कटु शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुआ।

"विक्टोरिया महारानी तो न जाने कब की मर गईं; आजकल तो उनके परपोते का राज है।"

अपनी असह्य वेदना में भी मछहरे का हृदय इस बात पर गर्व से फूल उठा कि कनु को कितना ज्ञान है और इस बात ने कि उस सिपाही का अपमान हुआ जिसके हाथ में बन्दूक थी और जिसके शरीर पर अच्छे कपड़े की वर्दी थी, उसके घाव पर मरहम का काम किया।

"आजकल के छोकरे ऐसी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं," इतना कहकर बात को उड़ाने के भाव से वह ठहाका मारकर हँस पड़ा।

"बीते हुए युग के ज्ञान और कारतूस-गोले में बड़ा फ़र्क़ है," कनु ने जलकर उत्तर दिया और उसे इस बात से बड़ा सन्तोष हुआ कि उसकी बात सिपाही की मोटी अक्ल को बेधकर अन्दर तक पहुँचकर असर कर गई है। उसका साहस बढ़ा और उसने बिलकुल निडर होकर कहा, "भैया, ज्ञान लैफ्ट-राइट, लैफ्ट-राइट नहीं है।" उसने सिपाही को चिढ़ाने के लिए नाव पर अपने पाँव जोर से पटके और फिर सहसा मुड़कर अपने मित्र से बोला, "तुमने अभी अपनी टेंट में रुपये लगाए हैं। एक रुपया निकालकर देख लो। उस पर किसकी शक्ल बनी है, देखो···देखो!" और जब मछहरे ने अपनी कमर से रुपये निकालने के लिए धोती की परत को खोलकर रुपयों को देखना शुरू किया तो उसने फिर भी कहा, "पुराने रुपयों पर महारानी विक्टोरिया की; लेकिन नये वालों पर—नये चमकदार रुपयों पर?"

"मलका विक्टोरिया राज न करती हो, पर राज है उसी का," सिपाही ने चिल्लाकर कहा। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा गया था और उसकी घनी मूँछ के बाल खड़े हो गए थे। "उसी के बनाए हुए पुराने कानून के दम से राज चलता है। राज चाहे जो करे, पर वह कानून नहीं बदलेगा—सूरज और तारों की तरह उसका कानून अटल है और वह सदा चलता रहेगा।

कनु चुप हो गया, पर मछहरे ने अपनी शक्ति-भर अपने मित्र की सहायता करने का प्रयत्न किया—"नहीं, मैं तो कहता हूँ अभी तक कम्पनी बहादुर का राज है; कौन इस बात को गलत कह सकता है?" उसके विचार उलझे हुए थे, उसकी आवाज भारी और निर्जीव हो गई थी। कितनी घृणा थी उसे उस आदमी से जो अच्छे कपड़े की वर्दी पहने ऐसे बैठा था जैसे जिले का मजिस्ट्रेट वही था···नहीं, मानो वह सूबे-भर का लाट-गवर्नर ही तो था।

नावों के ढेर लगे थे—टूटी हुई नावों के ढेर। हर ढेर के चारों ओर मर्द और औरतें खड़ी थीं। उनके सिर असह्य वेदना से झुके हुए थे, उनकी आँखों में तीव्रता थी। सारे मछुहरे उस स्थान पर आकर जमा हो गए थे। नाव पकड़ने वाले नावों को तोड़कर उनके पटरों को ईंधन के लिए बेच रहे थे। दाम बहुत कम थे, केवल नाम-मात्र के; परन्तु एक भी मछुहरे ने बोली नहीं लगाई और न किसी किसान ने ही यह लकड़ी के पटरे मानो मछुहरों के जीवन का भग्नावशेष थे; किसान उन्हें अपने चूल्हों में जलाने के लिए किस प्रकार प्रयुक्त कर सकते थे। लकड़ी के एक टुकड़े तक का कोई खरीदार नहीं मिला। नाव पकड़ने वाले अपनी मोटर-बोट में से पेट्रौल के टिन ले आए और उसे लकड़ी के ढेरों पर छिड़क दिया। उस पवित्र गोधूलि-वेला में, जब जंगल से चरकर लौटती हुई गायों-भैंसों के खुरों से उड़-उड़कर धूलि-कण वायु-मंडल में तैर रहे थे, जब सन्ध्या देवी का स्वागत करने के लिए ऊँ-ऊँ की शंख-ध्वनि से सारा आकाश गूँज रहा था, मछुहरों की नावों की उत्तम लकड़ी धू-धूकर जल उठी।

"मेरी नाव! हाय, मेरी नाव!" लोगों के मुख से एक दबे स्वर में ये शब्द निकल गए। उनके सिर झुके हुए थे, परन्तु औरतें बड़ी देर तक इन जलती हुई चिताओं को देखती रहीं। उनकी काली-काली आँखें लपकती हुई प्रतिक्षण ऊपर उठती हुई ज्वालाओं के प्रकाश में चमकने लगीं और उन्होंने दबे स्वर में कहा, "तुम्हारा नास हो; तुम्हारे सगे-सम्बन्धियों का नास हो; तुम्हारे अत्याचारी मालकों का नास हो। तुम भी इसी तरह जलो जैसे यह चिताएं जल रही हैं। नहीं, तुम और तुम्हारे मालिक अपने सगे-सम्बन्धियों को इसी तरह जलते हुए देखें। तुम्हारा सबका नास हो।"

जब आग बुझने लगी तो नाव पकड़ने वाले अपनी मोटर-बोट में बैठकर चल दिए। आगे बढ़कर सब मछुहरों ने उस राख के ढेर में से एक-एक मुट्ठी गरम-गरम राख लेकर अपनी-अपनी धोती के छोर में

बाँध ली। और फिर उस आधी रात के समय वह चुपचाप अपने सिर लटकाए अपने शरीर और अपनी आत्मा की चिता जलाकर अपने घरों को वापस चले।

परन्तु जहाँ एक कहानी समाप्त हुई वहीं से दूसरी का आरम्भ हुआ, क्योंकि नावों का उस महा अग्नि में जलना, घृणा की एक अमिट स्मृति के रूप में उस एक मुट्ठी राख में सदैव के लिए सुरक्षित कर लिया गया था।

× × ×

यह उन घटनामय दिनों की बात थी जब बंगाल की खाड़ी से शत्रु के आक्रमण का भय दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। कि गिरीश के लिए धन-प्राप्ति का एक नया मार्ग खुल गया। बरूनी गाँव में उसकी एक पंसारी की दुकान थी।

इस प्रकार की दूसरी दुकानों की ही तरह यह भी एक छोटी-सी दुकान थी—एक झोंपड़ी को, जिसमें दो रहने की कोठरियाँ थीं, सामने वाली कोठरी में कुछ अलमारियाँ आदि रखकर उसे दुकान का रूप दे दिया गया था। अलमारियों में अनाज के कुछ बोरे, थोड़ा-सा नमक, देसी तम्बाकू, कड़वे और मीठे तेल के कुछ पीपे तथा कुछ शहर से लाया हुआ सामान भरा हुआ था—अनाज रखने की बोरियाँ, टीन के लैम्प, मिट्टी का तेल, पीतल के बरतन और सस्ते प्रकार के चीनी के बरतन। सनीचर की हाट जिस गाँव में लगती थी वह कई मील दूर नदी के किनारे था। पाँच गाँवों का माल आकर वहाँ बिकता था। दूर होने के कारण किसान हमेशा वहाँ जाकर क्रय-विक्रय नहीं कर सकते थे। कई सौ बरसों से किसानों का हाट से सम्पर्क इसी पंसारी की दूकान के द्वारा था।

लेकिन गिरीश उस कच्ची मिट्टी का बना हुआ नहीं था जिसके कि उसके बाप-दादा थे, जो दुकान से अपनी जीविका-भर के लिए पैसे कमाकर ही सन्तोष कर लेते थे। दुनिया को दृष्टि में ऊँचा होने की साध बहुत दिनों से उसे कुरेद रही थी। उसको बड़ी-बड़ी अभिलाषाएं थीं।

आने वाले भविष्य का उसे ज्ञान हो चला था। उसने कुछ पैसा जमा करके रख छोड़ा था। यह पैसा वह ज़रूरत पड़ने पर किसानों को उधार दे देता था। इसके अतिरिक्त वह दुकान में से चावल और अन्य चीजें भी उधार देता था। सूद-पर-सूद चढ़ता जाता था और हर साल उसकी पूँजी में वृद्धि होती जाती थी।

गिरीश ने कई बार खुले शब्दों में अपनी पत्नी से कहा था—"चावल का यदि एक दाना भी बचा लो तो वह तीन दानों के बराबर है। यदि हम अभी कम खायं तो भविष्य में हमारे पास केवल पेट भरने को ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक अन्न होगा। और यह अधिक अन्न, तुम्हारे नाक की सोने की नथुनी, तुम्हारे हाथों के कंगन में बदल जायगा; गाय आ जायगी, घर में एक कमरा और हो जायगा, एक खेत और हो जायगा," और फिर वह अपने स्वर को बिलकुल धीमा करके कहता, "और फिर मैं शहर में एक दुकान भी ले सकता हूँ।" शहर में दूकान—कितनी बड़ी सफलता होगी यह! इस कल्पना से उसकी आँखें चमक उठतीं। और गिरीश स्वयं कम खाता और अपने परिवार वालों को कम खाने को देता। वह उनका पेट काटता और अन्न के बदले उनको कल्पना के सुखद स्वप्न दिखाता।

परन्तु अभी तो यह बहुत दूर का स्वप्न था। शायद यह स्वप्न उसके बुढ़ापे में भी पूरा न हो सकता, चाहे वह जीवन-भर इसी प्रकार अपना पेट क्यों न काटता रहता। हाँ, यदि कोई चमत्कार हो जाय तो बात ही और थी। सहसा उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि बस अब चमत्कार होने ही वाला है।

नावें तो सब नष्ट हो चुकी थीं। गाँव-का-गाँव अंगहीन हो गया था। गिरीश उस समय एक नाव के स्वप्न देखने लगा। केवल उसी के पास नाव होगी और किसी के पास नहीं। वह बरूनी का सारा चावल अपनी नाव पर ले जाया करेगा। वह मनमाना किराया वसूल किया करेगा। जब नावें ही न होंगी तो किसान अपना बचा हुआ

अनाज बाज़ार कैसे भेजेंगे ? मनुष्य के लिए केवल पेट भर लेना तो काफ़ी नहीं; उसे अपना तन भी ढकना पड़ता है; उसे अपनी ज़रूरत की दूसरी चीजें भी खरीदनी पड़ती हैं; उसे अनेक प्रकार के रीति-रस्म निभाने पड़ते है; जात-बिरादरी वालों के साथ कुछ सलूक करना पड़ता है; कुछ पूजा-पाठ में भी ख़र्च हो ही जाता है; और इस सबसे बढ़कर ज़मींदार को नक़द लगान देना पड़ता है। गिरीश कल्पना करने लगा कि वह चावल अपनी नाव पर लादकर नदी के रास्ते बाज़ार ले जायगा और हर बार वह अनाज बेचकर बीच में अपना मुनाफ़ा कमा लेगा, और यह क्रिया निरन्तर चलती रहेगी। वह बड़ा धन्धा होगा, सही माने में उच्च श्रेणी का व्यापार; यह नहीं कि पंसारी की दुकान पर बैठे आधा सेर चना इसके हाथ बेच दिया और एक पैसे का तेल उसके हाथ।

गिरीश ने बहुत आश्चर्य से एक गहरी साँस ली। वह अपने पैसों से एक नाव बनवा तोसकता है, लेकिन हाकिम लोगों को पलक मारते इस बात का पता चल जायगा और उसकी नाव का भी वही अन्त होगा जो दूसरी नावों का हुआ था—जला दी जायगी या डुबो दी जायगी या सरकारी कर्मचारी उसको लेकर चले जायंगे। नहीं, यह सम्भव नहीं था। गिरीश, गाँव का तुच्छ पंसारी गाँव-भर के अन्न के यातायात का एक-मात्र व्यापारी कैसे बन सकता था ?

एक दिन सहसा उस पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। सरकार के कुछ अन्य कर्मचारियों ने उसकी दुकान में आकर अनाज के बोरों को तोला और अपने रजिस्टर में दर्ज कर लिया। उन्होंने उससे कहा कि सरकार उसका आधा अनाज खरीद लेगी। तमाम गाँव वालों के लिए यही आदेश था कि वह अगली फ़सल तक के लिए अन्न रखकर बाकी सब बेच दें। यह सरकारी आज्ञा थी। एक बार ही गाँव का हज़ारों मन अन्न चला जायगा और फिर बाद में कीमतें निश्चय ही बढ़ जायंगी। गिरीश को व्यापार का अनुभव था वह इस बात को भली भाँति समझ सकता था। पर उसका तो भाग्य ही फूट गया था। जब

कीमतें बढ़ेंगी, उस समय उसके पास बेचने के लिए बचेगा ही क्या ?

उस दिन सारे गाँव में एक महत्त्वपूर्ण बात की चर्चा थी। उस पुराने बरगद के पेड़ के नीचे एक अत्यन्त अनोखी चीज खड़ी थी। सारा गाँव वहाँ जमा था। पेड़ की छाया में एक जीप-मोटर खड़ी थी और उसके चारों तरफ चित्रमय पोस्टरों की एक कतार लगी हुई थी। जब भीड़ जमा हो गई तो जीप पर लगे हुए लाउडस्पीकर में से किसी की गूँजती हुई आवाज़ आई। आवाज़ गाँव वालों को भाई कहकर सम्बोधित कर रही थी और कह रही थी कि संकट बहुत निकट आता जा रहा है, दिन-प्रतिदिन निकटतर होता जा रहा है। वे बर्बर पशु खून के प्यासे हैं; वे आदमियों की आँख को लक्ष्य बनाकर गोली चलाने का अभ्यास करते हैं। वे छोटे-छोटे बच्चों को संगीनों से बेध देते हैं और हथकड़ियों-बेड़ियों में जकड़े हुए उनके माता-पिता निस्स-हाय खड़े देखते रहते हैं। वे हमारी बहू-बेटियों को अपमानित करते हैं और उनका यह जीवन और आने वाला जीवन दोनों नष्ट कर देते हैं। इन भयानक बातों को सुनकर बेचैनी होती थी। बर्मा उनके कब्ज़े में जा चुका था। अंग्रेज जनरल एलेक्ज़ेण्डर बीहड़ जंगलों में होकर इतनी चतुराई से भाग रहा था कि लोग आश्चर्य-चकित थे। यदि शत्रु ने हमारे सुरक्षा के साधनों पर पीछे से आक्रमण करने का निश्चय किया और समुद्र के रास्ते से लाकर अपनी फ़ौजें उतार दीं तो बंगाल रण-भूमि बन जायगा। यह भी सम्भव था कि वह खाड़ी के अन्दर आकर फौजें उतारें। उस स्थान से तो गाँव के बरगद के पेड़ तक बैलगाड़ी से भी तीन दिन के अन्दर पहुँचा जा सकता था। ऐसी परिस्थिति में तो यह आवश्यक हो जायगा कि शत्रु को जितना सम्भव हो परेशान किया जाय। इसीलिए तो सारी नावें जलाकर खाक कर दी गई थीं। लेकिन इतना काफ़ी नहीं था। अन्न को भी जला देना होगा। जो अन्न सरकार लेगी उसके लिए किसानों को उचित मूल्य दिया जायगा। यदि जापानी आ गए तो वह तो अन्न का कुछ भी मूल्य न देंगे। उनको जितनी जरू-

रत होगी वे लूट लेंगे। प्यारे किसान भाइयो, तुम यह तो नहीं चाहोगे कि धरती माता की कृपा से अपना खून-पसीना एक करके तुमने जो सुनहरा अनाज उगाया है उसे वह राक्षस खा जायं।

पोस्टरों में इन्हीं भावनाओं को चित्रों के द्वारा व्यक्त किया गया था। उनमें जापानियों को अत्याचार करते हुए दिखाया गया था। एक पोस्टर में इस शीर्षक के द्वारा बात को समझाया गया था—*तुमको अपनी सम्पत्ति प्यारी है; है न? भारतवर्ष की भूमि उपजाऊ है; है न? तुम्हारी पत्नी सुन्दर है।* शहर का एक आदमी पोस्टर के पास खड़ा था और पोस्टर पर लिखे हुए शीर्षक पढ़कर अनपढ़ लोगों को सुना रहा था। वह जब यह शीर्षक बार-बार दोहराता था तो उसके स्वर में चुनौती होती थी।

इसमें सन्देह नहीं कि सरकार अपना सारा काम पूरी तरह कर रही थी।

यह बात नहीं थी कि गाँव वालों के पास कोई इतनी सम्पत्ति थी जिसके खो जाने का उनको भय हो; ऐसा भी नहीं था कि सबकी पत्नियाँ सुन्दर थीं और न ही यह बात थी कि शत्रु भूमि से उसकी उर्वरता छीन लेता! लेकिन फिर भी सरकार जानती थी कि इस प्रकार की बातों से सीधे-सादे किसानों के दिलों में डर बैठ जायगा। खत्तियों के द्वार खुल जायंगे, नदी में खड़ी हुई बड़ी-बड़ी नावें चावलों से लद जायंगी।

गिरीश यह सब जानता था और इसी कारण उसके हृदय की पीड़ा बढ़ती जाती थी। वह शहर में दुकान न ले सकेगा। उसकी पत्नी के नंगे हाथों पर कभी सोने के कंगन न होंगे। उसको कच्ची झोंपड़ी में एक कमरा और न बन पायगा। वह भी उसी कच्ची मिट्टी का बना हुआ था, जिसके उसके बाप-दादा बने थे। उसका जीवन उनके जीवन का केवल एक गन्दा प्रतिरूप था। उसकी पराजय उसे मुँह दिखायगी। वह इस प्रकार कैसे जिन्दा रह सकेगा?

गिरीश अपने द्वार पर खड़ा उदास आँखों से नदी की तरफ देख

रहा था कि इतने में एक शहर का आदमी गाँव की सड़क पर लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ आता दिखाई दिया।

"तुम्हारे पास चावल हैं ?" आगन्तुक ने रुककर प्रश्न किया और अपना सिर इस भाव से हिलाया मानो वह उसका मित्र हो।

"एक-एक दाना तो तुमने तोल लिया है और उसका हिसाब भी तुम्हारे रजिस्टर में लिखा है," गिरीश ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया, "फिर अब क्या पूछने आए हो ?" गिरीश के लिए यह आदमी वही सरकारी कर्मचारी था जो पहले आया था, यद्यपि उसकी सूरत भिन्न थी, और उसका नाम भी भिन्न था।

"कौनसा रजिस्टर ?" आगन्तुक दुकान के अन्दर चला आया। उसकी आँखें अनाज के बोरों में कुछ खोज रही थीं। वह बाहर निकला, सिगरेट जलाई और सिगरेट का पैकेट गिरीश की तरफ बढ़ा दिया।

गिरीश को आश्चर्य तो हुआ, पर वह उसे छिपा गया। उसे अपने सम्मान का बड़ा ध्यान था। 'गोल फिलिक,' उसने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाते हुए कहा। वह दिखाना चाहता था कि वह जाहिल किसान नहीं था, बल्कि अच्छी सिगरेटों से भी परिचित था। हर तीसरे महीने वह शहर जाता था और बाज़ार से ढूँढ़कर अपनी दुकान के लिए सामान लाता था; वह तो एक तरह से शहर का ही आदमी हो गया था। फिर उसे शहर के आदमी के साथ सिगरेट पीने से कौन रोक सकता था ?

"वे लोग, जो तुम्हारा सामान तोलकर ले गए, सरकार के आदमी थे," उस आदमी ने उत्तर दिया। सिगरेट उसके मुँह में जल रही थी। "उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो एक कम्पनी का नौकर हूँ। हमारा चावल का रोजगार है और तुम्हारी पंसारी की दुकान है। तुम हमारी सहायता कर सकते हो।"

गिरीश ने बड़े कौतूहल से उसका निरीक्षण किया और अपना सिर हिलाया—"यह कैसे हो सकता है ? कम्पनी के आदमी और गवर्नमेण्ट

के आदमी क्या अलग-अलग होते हैं ? वह लोग तो सब अन्न खरीदकर अपनी नावों में भरकर ले जायंगे।"

"जिस रास्ते से होकर हाथी नहीं जा सकता, चूहा वहाँ से आसानी से निकल जाता है। नदी में हमारी भी नाव है। कानून में यह तो कहीं नहीं लिखा है कि केवल अमुक व्यक्ति को ही अनाज खरीदने का अधिकार है।" वह एजेण्ट कुछ देर के लिए रुककर सुनने लगा। दूर से लाउडस्पीकर की भारी आवाज़ आ रही थी—"सुना तुमने ? हाथी चूहे के लिए रास्ता बनाता है। हम लोगों में आपस में समझौता हो गया है।" यह कहकर उसने बहुत अर्थपूर्ण ढंग से आँख मारी—"वे लोग हमको चावल ले जाने का अवसर देंगे। देखो, तुम्हारी पंसारी की दुकान है। तुम जानते हो किसके पास कितना खेत है, तुम यह भी जानते हो कि कौन कितना अनाज बेच सकता है। जितना चावल मिले खरीद लो। तुमको तुम्हारा कमीशन दिया जायगा। जितना ज्यादा खरीदोगे उतना ज़्यादा कमाओगे। पेशगी पैसा देकर आने वाली फसल खरीद लो; जाड़े वाली फसल। जितने रुपये की ज़रूरत हो ले लो···।"

"आज आपके चरणों की धूल से हमारी कुटिया पवित्र हो गई। कुछ देर बैठिए न, थोड़ा-सा नारियल का पानी पीजिए न !" गिरीश चटाई लेने के लिए लपका। उसकी मूँछें फड़क रही थीं। वह सोच रहा था उसे किस हिसाब से कमीशन मिलेगा।

गिरीश बैठा नारियल छील रहा था और वह शहर से आया हुआ आदमी बातें कर रहा था। कम्पनी गाँवों में अपने एजेण्ट रखेगी—हर पाँच या दस गाँव पर एक एजेण्ट। गाँव के एजेण्टों पर एक जिले का एजेण्ट होगा। वह स्वयं भी जिले-भर का एजेण्ट था। और इन सब जिलों के एजेण्टों के ऊपर कलकत्ते में मुख्य एजेण्ट होगा और यह मुख्य एजेण्ट कम्पनी के डायरेक्टरों से हुक्म लिया करेगा। इस संगठन के विस्तार में बड़े-बड़े ज़मींदार भी आयंगे। इससे पहले बंगाल में इस प्रकार का संगठन कभी नहीं बना—कभी नहीं।

"अगर तुम इस शक्तिशाली संगठन में आ जाओगे तो तुम्हारी सात पुश्तों के भाग्य चमक जायंगे," एजेण्ट ने कहा।

गिरीश जल्दी-जल्दी हिसाब लगा रहा था—एक मन पर इतना कमीशन, तो सौ मन पर इतना और हज़ार मन पर इतना। और अगली फसल में इतना अनाज होगा···उसके हृदय में इतनी खलबली मची हुई थी कि वह बौखलाहट में अपनी मूँछें खुजाने लगा।

जिस समय वह अपने दिमाग़ में हिसाब लगा रहा था उसने देखा कि उसकी बीवी के हाथों पर कंगन चमक रहे हैं, उसकी झोपड़ी बड़ी हो गई है, शहर में उसकी दुकान में सामान भरा हुआ है। जीप से आने वाली आवाज़ निकट आती जा रही थी और उससे उसका ध्यान एक क्षण के लिए भंग हो गया। जीप गाँव का चक्कर लगा रही थी। सारे गाँव में उसकी आवाज़ गूँज रही थी। गिरीश की आँखों में हर्ष के आँसू थे। उसका भाग्य सहसा चमक उठा था। और उसने मन-ही-मन बड़बड़ाकर बड़ी गम्भीरता से कहा, वह देखो! भय और घबराहट रबर के पहियों पर जा रहा है! सच है कि भरकम हाथी नन्हे-से चूहे के लिए रास्ता बनाता है।'

× × ×

न उस दुकानदार को और न उस शहर के व्यापारी को ही यह ज्ञात था कि उनको किसी के शब्दों की शक्ति का मुकाबला करना पड़ेगा।

और वे शब्द जल्दी ही सामने आए। यद्यपि वे शब्द बहुत धीमे स्वर में कहे गए थे, उनकी केवल एक भनक ही सुनाई दी थी; पर उनकी गूँज जीप के [illegible] के शब्दों से अधिक तेज़ थी। कनु अपनी भूरी गाय मंगला की पीठ पर बैठकर भागता हुआ सारे गाँव में घूम आया और उसने एक-एक खेत में जाकर तमाम किसानों से, जो गर्मी की धूप में हल जोत रहे थे, चिल्लाकर यह कह दिया—

"देवता ने कहा है *जल्दी में अपना अनाज न बेचना। सोच-समझ लेना।* देवता ने यही कहा है।"

उनका शब्द आज्ञा थी।

इस महत्त्वपूर्ण निश्चय पर पहुँचने से पहले देवता ने खूब सोच-विचार कर लिया था। यह सच था कि किसानों को उनके अनाज का उचित मूल्य चुकाने का वायदा किया गया था और उनके लिए अपना सारा बचा हुआ अनाज बेच डालने के लिए यह बहुत बड़ा प्रलोभन था। पर उन किसानों का क्या होगा जिनके पास अपनी जरूरत-भर से ज्यादा अनाज था ही नहीं ? उनको चावल कहाँ से मिलेगा ? और उन मछुहरों का क्या होगा जिनकी नावें छीन ली गई थीं ? और वह दस्तकार क्या करेंगे—वह जुलाहा जो सारे बरूनी के लिए कपड़ा बुनता था, वह लोहार जो हलों के फाल और हँसिये बनाता था, वह बढ़ई जो हल और गाड़ियों के पहिये बनाता था ? देवता को चिन्ता थी। अन्न पैदा करने वालों की तात्कालिक आवश्यकता से अधिक चावल यदि उनके हाथ से निकल गया तो गाँव की सारी आर्थिक व्यवस्था तहस-नहस हो जायगी।

चारों तरफ से गाँवों के तबाह होने के समाचार आ रहे थे। कई गाँवों को तो अड्डे बनाने के लिए या सिपाहियों के ठहरने के लिए या हवाई अड्डों के लिए फ़ौज ने अपने कब्ज़े में ले लिया था। खाते-पीते लोगों के मकान तो किराये पर लिये गए थे, पर जो ग़रीब किसान थे उनकी झोंपड़ियाँ बिलकुल खरीद ली गई थीं। लोगों को उनके घरों से निकाल दिया गया था। यद्यपि उनकी गाँठ में पैसा था, पर उनको नए मकान कहाँ ढूँढ़े मिल सकते थे—पैसा जो उनको अपने बाप-दादों का घर बेचकर मिला था। और उनको जोतने के लिए जमीन कहाँ से मिलती ? उनकी जमीन भी तो छिन गई थी। इतनी भूमि बेकार हो जाने से खेती-बाड़ी कम हो जायगी। समुद्र-तट पर के बहुत-से इलाके इसलिए खाली कराए जा रहे थे कि जापानी आकर वहाँ के बसने वालों

को अपने काम के लिए न प्रयुक्त कर सकें। निराश्रितों के गिरोह बरूनी से होकर गुज़र रहे थे। हज़ारों मर्द, औरतें और बच्चे अपनी गाय-भैंसें और बची-खुची सम्पत्ति लिये, बेघर-बार, लक्ष्य-हीन, अपने सहसा दुर्भाग्य के कारण बौग्वलाए हुए इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे थे। उनकी जमीन के बदले में उनको जो पैसा मिला था वह आखिर कितने दिन चलेगा? अनाज तो उनको खरीदना ही पड़ेगा। यदि चावल उगाने वालों के पास बेचने के लिए अनाज न हुआ तो क्या होगा? जो व्यापारी आज उचित मूल्य पर अनाज खरीद रहे थे, कल अनाज की कमी हो जाने पर न जाने किस भाव से उसे बेचेंगे। बंगाल में अभी तक कीमतों पर कोई नियन्त्रण नहीं था और शत्रु दरवाज़े पर खड़ा खटखटा रहा था—न राशनिंग था और न वस्तुओं को ईमानदारी से वितरण करने का कोई प्रबन्ध। शासकों के दिमाग़ पर युद्ध का भूत सवार था, वह इन छोटी-मोटी बातों की ओर ध्यान कैसे दे सकते थे? और युद्ध का तीसरा वर्ष अपनी निराश गति से गुज़रता जा रहा था।

देवता अपने खेत की मेड़ पर खड़ा था। सारे खेत-भर पर धूप छाई हुई थी। वह जुते हुए खेतों के पार आकाश के सुदूरतम छोर को देख रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह यह देख रहा है कि कहीं मुसीबत का कोई और बादल तो आकर उन पर नहीं टूटने वाला है।

नावें जला दी गई थीं। अन्न नष्ट कर दिया गया था। देवता को अपने गाँव वालों की चिन्ता थी; वही उसके जीवन का आधार थे, वही उसके प्राण थे।

सात

दस दिन तक सारे शहर में विद्रोह मचा रहा।

ऐसा प्रतीत होता था कि समय के भयानक अन्धकारमय गर्त में अचानक तूफ़ान आ गया हो, क्योंकि उन्हीं दिनों जापानी बंगाल के द्वार पर आक्रमण के लिए डटे हुए थे और सुरक्षा करने वाली सेनाएं बराबर पीछे हटती चली आ रही थीं। क्या वे आसाम से भी हट आयंगी; क्या वे बंगाल को भी छोड़ देंगी? राष्ट्रीय आन्दोलन इस बढ़ते हुए संकट को देखकर अब मौन नहीं रह सकता था। राष्ट्रीय-आन्दोलन की ललकार हुई—'स्वतन्त्र भारत फासिज़्म के विरुद्ध युद्ध में अपनी सम्पूर्ण महान् शक्ति लगा देगा····स्वतन्त्र भारत संयुक्त राष्ट्रों का सहयोगी बनकर उनके कन्धे-से-कन्धा मिलाकर उनके संघर्ष और संकट में उनका साथ देगा····स्वतन्त्रता भारत को आक्रमण का सामना करने की शक्ति प्रदान करेगी, क्योंकि स्वतन्त्र हो जाने पर सारी जनता की सम्पूर्ण शक्ति और सारा बल उसके साथ होगा।'

भारत छोड़ो प्रस्ताव के शब्द कितना डर पैदा करने वाले थे!

'भविष्य के लिए कोई वायदा अथवा आश्वासन जनता में आवश्यक मानसिक दृढ़ता नहीं पैदा कर सकता। केवल स्वतन्त्रता की ज्योति ही उनके उस उत्साह तथा बल को जागृत कर सकती है जिससे युद्ध का रूप बदला जा सकता है।'

विदेशी शासक तो राष्ट्रीय आन्दोलन से उतना ही दूर रहना चाहते थे जितना जापानियों से; क्योंकि दोनों ही के हृदय में एक लक्ष्य था—गोरों के साम्राज्य का अन्त करना, यद्यपि उनमें से एक के उद्देश्य में एक और उद्देश्य भी छिपा हुआ था। विदेशी आवश्यकता होने पर भी हिन्दुस्तान को रक्षा के लिए और छापेमार युद्ध के लिए हथियार देने के लिए तैयार नहीं थे, जैसा कि रूस और चीन में किया जा रहा था। एक पराधीन राष्ट्र एक बार हथियार पा जाने के बाद क्या फिर पुरानी दासता को कभी भी स्वीकार करने को तैयार होगा? और न विदेशी हिन्दुस्तान के उद्योगों का पूरी तरह उपयोग करने को तैयार थे। उन्हें इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी कि हथियारों और जहाज़ों से लेकर मशीनों के छोटे-छोटे पुर्ज़ों तक की बहुत कमी थी, क्योंकि वह जानते थे कि उद्योग एक बार बढ़ जाने के बाद फिर कभी पुरानी आर्थिक प्रणाली के अनुसार कम नहीं किये जा सकते। विदेशियों के नेता, जो एक मृत शताब्दी के खण्डहरों पर गर्व से बैठे हुए थे, इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि वह अपना साम्राज्य खोकर युद्ध में विजय प्राप्त करें।

राष्ट्रीय आन्दोलन 'इस बात के लिए बहुत उत्सुक है कि चीन और रूस की रक्षा में किसी प्रकार की अड़चन न पड़ने पाय, क्योंकि उनकी स्वतन्त्रता बहुमूल्य है और उसकी रक्षा की जानी चाहिए। वह संयुक्त राष्ट्रों की सुरक्षा-शक्ति को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाना चाहता। परन्तु हिन्दुस्तान के लिए और इन राष्ट्रों के लिए ख़तरा बढ़ता जा रहा है। निष्क्रियता के कारण हिन्दुस्तान दूसरों की दृष्टि में अपने को गिरा ही नहीं रहा है, वह शत्रु का सामना करने की अपनी शक्ति को केवल कम ही नहीं कर रहा है, बल्कि वह संयुक्त राष्ट्र की जनता की भी कोई सहायता नहीं कर पा रहा है।'

बिल्ली की-सी तीव्र दृष्टि वाले विदेशी शासकों ने राष्ट्रीय आन्दोलन की हर कमज़ोरी को देख लिया था। उसका पिछले बीसियों बरसों का जमा किया हुआ अनुभव, उनकी आतताइयों की-सी निपुणता, इस एक

उद्देश्य के लिए और भी तेज़ हो गई। उसमें नई मान्यताएं बनाने की क्षमता तो थी नहीं, परन्तु वह उनको शीघ्र ही नष्ट अवश्य कर सकते थे। पुरानी बीती हुई शताब्दी में रहते हुए भी वह हर नई चीज़ को नष्ट करने के लिए नए-नए अस्त्रों का उपयोग करते थे। वह साइंस के द्वारा साइंस को नष्ट कर रहे थे। वह विचारों से विचारों का हनन कर रहे थे। सहसा ही झपटकर उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को हथ-कड़ियों और बेड़ियों में जकड़ दिया।

पुराने घाघ सरकारी अफ़सर इसी अवसर के लिए प्रार्थना कर रहे थे। इन दंगा फैलाने वालों पर ऐसी करारी चोट लगाई जाय कि ये जीवन-भर न भूलें। वह यह क़दम जितना अचानक उठाना चाहते थे उसमें वह सफल हुए। नेहरू अमरीका की जनता के लिए भाषण करने वाले थे, जिसे अमरीकी रेडियो से ब्राडकास्ट करने का प्रबन्ध किया गया था। वह अपने कमरे में बैठे प्रबन्धकों की प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु प्रबन्धकों के बजाय आई पुलिस। गांधीजी वायसराय के नाम दिल्ली को पत्र लिखने वाले थे। उन्होंने पत्र लिखा, परन्तु वह नहीं जो वह लिखने वाले थे। उन्होंने जेल से पत्र लिखा। एक निश्चित समय पर सारे हिन्दुस्तान में पुलिस की काली लारियां बन्दियों से भर गईं।

फिर जनता का विद्रोह शुरू हुआ, अनियोजित, परन्तु उसे राष्ट्रीय आन्दोलन की अनुमति प्राप्त नहीं थी। उस असह्य अत्याचार के विरुद्ध, जिसने जनता के नेताओं को जेल में डाल दिया था, सहसा क्रोध की ज्वाला भड़क उठी। और राहुल ने दूसरों की तरह इस ज्वाला को अपने रक्त में अनुभव किया। घटनाएं उसे अपने साथ बहाकर ले गईं, इच्छा न रहते हुए भी वह उनके तीव्र प्रवाह में बहता चला गया।

उस ज़ोरदार तूफ़ान के तीसरे दिन जब वह अपनी मेज़ पर बैठा बरूनी में अपने दादा को इन घटनाओं के विषय में अपने विचार लिख रहा था तो उसके मस्तिष्क में कालेज-स्ट्रीट पर जाते हुए उस हज़ारों के जुलूस का चित्र घूम गया। *'भारत छोड़ो!'* किसी ने नारा लगाया

और फिर 'वन्देमातरम् !' शोषितों की युद्ध-ललकार ! अपनी प्रयोग-शाला की खिड़की से राहुल ने उस मोटे-तगड़े यूरोपियन सार्जेण्ट को पिस्तौल लिये जुलूस के आगे वाले तिरंगे-झंडे पर झपटते और उसे पाँव से रौंदते हुए देखा था। उसने यह भी देखा था कि वह नवयुवक, जो उस झंडे को ले जा रहा था, उसे फिर उठाने के लिए झुका तो सार्जेण्ट ने उस पर हमला किया, उसे ठोकरों से मारा और पैरों से कुचल डाला। फिर दूसरे नवयुवक आगे आए और उनके पीछे अनेकों और भी, जिनके पास केवल एक अस्त्र था—अहिंसा।

पुलिस ने अन्धाधुन्ध लाठियाँ चलाईं, सिर तोड़े; और फिर उसने गोली चलाना आरम्भ किया।

उस क्षण राहुल अपने-आपको भूल गया। उसके हृदय में जोश उबल रहा था और वह कमरे से तेज़ी से निकलकर सीढ़ियों पर होता हुआ भीड़ को चीरता हुआ घुस गया। उस समय उसको बस एक ही धुन थी—किसी प्रकार झंडा लहराता रहे। उसके लिए इसके अतिरिक्त किसी और बात का महत्त्व ही नहीं था। अब से पाँच मिनट पहले तक वह एक शान्त वैज्ञानिक था और इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वह ऐसा भी कर सकता है। बड़ी अजीब-सी बात थी।

उसके पाँव पर एक ज़ोर की लाठी पड़ी और जब वह गिर पड़ा तो दो पुलिस वालों ने उसके हाथ पकड़ लिए और उसे घसीटते हुए लारी में ले गए। उसके पाँव में आग की तरह जलन हो रही थी, परन्तु उसके हृदय में इस जलन से भी तेज़ ज्वाला धधक रही थी।

हवालात की कोठरी में उसके साथ कुछ विद्यार्थी थे और कुछ नव-युवक बुद्धिजीवी। उनमें से कुछ ने राहुल को पहले देखा था, बाक़ी ने उसका नाम सुन रखा था। सबके हृदय में उसके प्रति आदर था। उन्होंने उससे पूछा, "क्या वह घड़ी आ पहुँची," और बेचैनी से उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

यह प्रश्न उसे स्वयं कई दिनों से चिन्तित किये हुए था। यही

प्रश्न सारे फ़ासिस्ट-विरोधी भारत को चिन्ता में डाले हुए था और विद्रोह को रोके हुए था। सारा महायुद्ध अखण्ड था, उसे बाँटा नहीं जा सकता था; और भारत यह नहीं होने दे सकता था कि चीन की लड़ाई की पराजय गंगा की भूमि पर हो। परन्तु स्वतन्त्रता भी तो अखण्ड थी; उसके भी तो टुकड़े नहीं किये जा सकते थे। पराधीन, शक्तिहीन भारत संसार-भर की स्वतन्त्रता के लिए एक बहुत दुःखद रुकावट था।

उसने उत्तर दिया—"नहीं, अभी वह घड़ी आई तो नहीं, पर बहुत निकट आ पहुँची है। हमको अपने नेता की आज्ञा का पालन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। करो या मरो। हमको अपनी शक्ति व्यर्थ नहीं गँवानी है।"

वह सारे दिन पुलिस की हिरासत में रहा था। सूर्यास्त से थोड़ी देर पहले उसे एक काली लारी में बिठाकर कालेज के फाटक तक लाकर सड़क पर ही छोड़ दिया गया था।

उसने चारों ओर देखा; पूरा शहर नष्ट-भ्रष्ट पड़ा था, जैसे लड़ाई के बाद। वर्दी पहने हुए सिपाहियों के अतिरिक्त सड़कों पर कोई दिखाई न पड़ता था। फ़ौजी लारियाँ इधर-से-उधर दौड़ रही थीं। फ़ौजी सिपाही सड़क के छोर पर मशीनगन लिये खड़े थे। जली हुई मोटर-लारियाँ इधर-उधर पड़ी थीं। एक जली हुई ट्राम का कूड़ा-करकट हटाकर पटरी साफ़ की जा रही थी।

एक दिन हिरासत में रहने के बाद वह अब फिर आज़ाद था। क्या उन्होंने सब बन्दियों को छोड़ दिया था? यदि ऐसा किया था तो सद्भावना का अनोखा सबूत दिया था; पर विश्वास नहीं होता था।

बाद में उसे पता लगा कि सरकार आन्दोलन का नाम-निशान तक मिटा देने पर तुली बैठी थी। उसने आन्दोलन को ग़ैर-कानूनी तो घोषित कर ही दिया था। सरकार चाहती थी कि आन्दोलन को उकसाकर लोगों को भड़काय, ताकि जनता का संयम टूट जाय और वह सहज ही

गोला-बारी का लक्ष्य बन जाय। यह कटु सत्य अब स्पष्ट हो चुका था कि सरकार जनता से घृणा करती थी—उसी जनता से जिसकी हड्डियों पर साम्राज्य की नींव स्थिर थी, जिसकी बदौलत इंग्लैंड आज इतना धनी बन गया था।

उसे यह भी मालूम हो गया था कि वह छोड़ क्यों दिया गया। मृत्यु-किरण! उसके पिता ने बड़े-बड़े लोगों में उसकी चर्चा की थी कि उनका बेटा, कुशल वैज्ञानिक, कासमिक शक्ति को प्रयोग में लाने का प्रयास कर रहा है। उस शक्ति से रेल भी चलाई जा सकती थी और शत्रु-सेना के लाखों सिपाहियों को मौत के घाट भी उतारा जा सकता था। पिताजी ने उसकी वैज्ञानिक खोज का यही चित्रण किया था और उनके प्रश्न करने पर राहुल ने न 'हाँ' कहा था और न 'नहीं', बस केवल हँस-भर दिया था। इसके बाद एक दिन प्रकाश ने उसे बताया—"आपके पीछे एक जासूस लगा है, जो आपके सारे कागज़ पढ़ता है और नकल कर लेता है।"

राहुल को आश्चर्य हुआ। वह सीटी बजाने लगा।

"जासूस? तुम्हें विश्वास है?"

प्रकाश को पूरा विश्वास था।

"वह आदमी कौन है?" उसकी आवाज़ क्रोध के मारे मुश्किल से निकल रही थी।

"आप ही का एक विद्यार्थी है। मेरे लिए यह उचित नहीं होगा कि मैं उसका नाम बतलाऊँ। आप कृपया सावधान रहिए।"

और शीघ्र ही राहुल को पता चल गया कि वह जासूस कौन था।

पर उसके कागज़ों से किसी को लेना क्या था, यह बात राहुल की समझ में नहीं आई। उसके कागज़ों में तो उसके और कैम्ब्रिज के उस प्रोफ़ेसर का पारस्परिक निजी पत्र-व्यवहार था। क्या जासूस को उसमें भी दिलचस्पी पैदा हो गई थी? तब प्रकाश ने बताया कि वह आदमी पुलिस के विशेष विभाग से वेतन पाता है।

पुलिस का जासूस ! और एक क्षण में सारी बात उसके मस्तिष्क में साफ़ हो गई। वही मृत्यु-किरण !

जब प्रकाश ने सब बातें सुनीं तो उसे सन्तोष हुआ। "मैं तो बहुत चिन्तित हो गया था। अब सब-कुछ ठीक मालूम होता है। वह लोग समझते हैं कि आप मृत्यु-किरण की खोज में लगे हुए हैं…"

"कितने गर्व की बात है," राहुल बीच ही में बोल उठा। राहुल यह सोचकर मन-ही-मन मुस्करा रहा था कि उसे उसकी आशा से भी अधिक महत्त्व दिया जा रहा था।

लेकिन प्रकाश की मुद्रा बहुत गम्भीर थी।

"परन्तु आपको इस भ्रम को बनाए रखना है। हम कुछ नक़ली कागज़ इस विषय में तैयार कर लेंगे। और आपको अब मृत्यु-किरण के अनुसंधान में सफलता मिलने ही वाली है, थोड़ा-सा काम और बाक़ी है।"

राहुल ने उसे डाटते हुए कहा—"क्यों प्रकाश, हम ढोंग क्यों करें ?" और दोनों ने एक-दूसरे की आँखों में आँखें डालकर देर तक देखा। प्रकाश ने आँखें झुका लीं और स्वर को धीमा करते हुए बोला—"परिस्थिति दिन-प्रतिदिन गम्भीर होती जा रही है। हिन्दुस्तान में कोई भी सुरक्षित नहीं, पर यह मृत्यु-किरण आपको बचाए रखेगी। यों ही बेकार जेल जाने से कोई लाभ नहीं।"

हाँ, कोई लाभ नहीं था। तभी तो कुछ महीने बाद विद्रोह आरम्भ होने पर प्रकाश ग़ायब हो गया था—जिस दिन राहुल ने स्वयं विद्रोही बनने की ओर संकेत किया था, उससे ठीक दो दिन पहले।

"मैं जेल में सड़कर अपना अन्त करना नहीं चाहता। बहुत-सा काम होना है," प्रकाश ने अन्तर्धान होने से पहले यह कहा था।

राहुल घर पर बैठा दादा को पत्र लिख रहा था, पर उसे यह नहीं मालूम था कि वह पत्र उसके दादा को नहीं मिलेगा। गाँव में और शहर में आतंक छाया हुआ था।

नन्ही खुक्खू अपने पिता से लाड़ करती हुई, उसके विचारों को भंग करती हुई अन्दर आ गई।

"पुलिस वाला, बुला आदमी, जंगली आदमी, मुँह-जला लंगूल है," कहकर उसने अपने शत्रु पर अपना गुस्सा उतारा। उसी दिन कुछ देर पहले एक पुराने जिलेट ब्लेड से सशस्त्र होकर वह रण की ललकार दे चुकी थी, पर मंजु ने ब्लेड उसके हाथ से छीन लिया था और वह फूट-फूटकर रो पड़ी थी।

राहुल उसे देखकर मुस्कराया और बोला—"पुलिस वाला यदि मुझे फिर ले जाय तो खुक्खू रोयगी ?"

खुक्खू ने आँख झपकाते हुए बहुत दुखी होकर धीमे स्वर में कहा, "खुक्खू लोयगी।" उसके आँसू निकलने ही वाले थे। राहुल ने उसे अपने घुटनों पर बिठा लिया और खुक्खू ने अपने छोटे-छोटे हाथ अपने बाबा के गले में डाल दिए और सन्तुष्ट बैठी रही।

राहुल ने लिखा—"किसी जाति की आत्मा किसी व्यक्ति की आत्मा की तरह समय और स्थान की सीमाओं में नहीं बढ़ा करती। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अनुभव की कसौटी पर उतरकर वह एक क्षण में इतनी बढ़ जाती है जितनी वह साधारण रूप से बरसों में नहीं बढ़ती। हमारे जीवन का यह क्षण वैसा ही एक क्षण है। यह द्रुत वेग से बढ़ने का क्षण है और अगस्त के बाद का भारत वैसा कभी नहीं रह सकता जैसा कि पहले था····!"

सहसा गोली की आवाज़ आई, और उसके साथ ही मिली हुई किसी की कराह; और बालकनी पर से मंजु चीख पड़ी।

राहुल भय से सहमी हुई खुक्खू को लिये उठकर भागा, "मंजु, क्या हुआ ?"

"खून," वह गहरी साँसें लेते हुए बोली; उसका स्वर बहुत पतला हो गया था।

मंजु बालकनी की दीवार पर झुकी हुई बाहर सुनसान सड़क को

देख रही थी। उसी समय वह परिचित लैम्प जलाने वाला अपनी बाँस की सीढ़ी लिये हुए आता दिखाई दिया। शहर के बाहर की इस सड़क पर अब भी वही पुराने गैस के हंडे लगे हुए थे और प्रतिदिन शाम को लैम्प जलाने वाला आता, बालकनी से सटे हुए खम्भे के सहारे अपनी सीढ़ी टिकाता और उस पर चढ़कर गैस को जलाता। आज के कोहराम में भी वह अपना कर्त्तव्य नहीं भूला था।···उसी समय एक मोटर-साइकिल फट-फट करती हुई सड़क पर आई। एक सफ़ेद वर्दी-धारी पुलिस का सार्जेण्ट लोहे का टोप लगाए उस पर सवार था। उसने लैम्प के खम्भे पर एक आदमी को चढ़ते हुए देखा। अच्छा कांग्रेस वाला सरकारी माल को हानि पहुँचा रहा है? और फ़ौरन अपना रिवाल्वर निकालकर उसने गोली चला दी, और मोटर-साइकिल भगाता हुआ आगे को निकल गया।

बालकनी के फ़र्श पर मंजु निश्चल पड़ी थी। खून होते देखकर वह सहम गई थी। गोली का धमाका, उसकी चीख़ और फिर वही निस्तब्धता!

खुक्खू माँ को गोद में जाने को व्याकुल हो रही थी; वह रोने लगी और हठ करने लगी—"माँ!"

मंजु बिलकुल भौंचक्की होकर देख रही थी; गोली की आवाज़ उसके कानों में अब तक गूँज रही थी और वह भयानक दृश्य उसकी आँखों के सामने अब तक नाच रहा था।

'बत्ती वाले, जरा अपनी बत्ती इधर घुमाओ, ओ बत्ती वाले···'

खुक्खू बालकनी की जाली से मुँह सटाकर बाहर झाँकती और लैम्प के लिए मचल जाती।

'रानी-माँ, तुम्हारी ज्योति से बालकनी जगमगा रही है। बत्ती की रोशनी की क्या जरूरत? तुम्हारे मुख की ज्योति के समान ज्योति किसी बत्ती में नहीं है, रानी-माँ!'

बस सब समाप्त हो गया—केवल कुछ क्षण में।

यह आश्चर्य की बात थी कि मौत के इस खूनी क्षण में उन मृत्यु-समान क्षणों की पृष्ठभूमि में मंजु को उस बत्ती वाले को देखना बदा था।

और विकास की इच्छा ने उस पर कब्ज़ा कर लिया—वह इच्छा जो किसी भी व्यक्ति या जाति के जीवन में मौलिक परिवर्तन कर देती है। मंजु अब कभी पहले की-सी मंजु न बन सकती थी।

× × ×

केले के झुरमुट से छिपा हुआ, गहरी परछाइयों से आच्छादित एक चश्मा गाँव की कच्ची धूल से अटी बैलगाड़ियों की लीक के पास से होकर बहता था। उसके जल पर कमल की पत्तियों के हरे-हरे चन्द्रमा तैरते रहते थे। बल खाती हुई सड़क खेतों की ओर से होती हुई उनको पार करके फिर सीधी हो जाती थी और रेल की पटरी के किनारे-किनारे चली जाती थी। कजली पानी के किनारे पत्थर के जीने पर बैठी हुई थी जिस पर काई जमी हुई थी। साड़ी ऊपर को सरकाकर उसने अपने पाँव घुटनों तक पानी में डाल रखे थे। आँसुओं से भीगे हुए चेहरे को अपनी दोनों हथेलियों पर टिकाए वह कभी तालाब के पानी को निहारती और कभी दृष्टि पानी पर से हटा लेती। चिन्ता से व्याकुल वह झाड़ियों के पार सड़क के नुक्कड़ की ओर देख रही थी।

कुछ घंटे पहले सारा गाँव उधर ही गया था—तीन सौ आदमी एक झंडा लिये हुए।

झंडा कनु के हाथ में था। वह उसका झंडा था। उसमें छः छेद थे—एक छोटी-सी बन्दूक से चलाई गई गोलियों के छेद।

वह तने हुए चेहरे! जोरदार आवाज़ में वह नारे! युद्ध के लि तत्पर सैनिकों की तरह वह सड़क पर तेज़-तेज़ चलना! कजली मन-ह मन प्रफुल्लित हो रही थी। उसे तनिक भी घबराहट नहीं थी। वह त उस समय भी न घबराई थी जब उसी दिन कुछ समय पहले लम्बी-लम्बी नालियों वाली बन्दूकों से गोलियों की बौछारें आ रही थीं और

गाँव वाले क्रुद्ध होकर उनका सामना करने के लिए झपट पड़े थे। केवल उसका हृदय इतनी तेज़ी से धड़कने लगा था कि उसे चक्कर-सा आने लगा था।

एक दिन पहले, एक घंटे पहले, इस प्रकार की घटनाओं की कल्पना करना भी असम्भव था। गाँव का जीवन बिलकुल शान्त था—उतना ही शान्त, जितना उस कमल के फूलों वाले तालाब का जल था। कौन सोच सकता था कि इस तालाब में इतनी ऊँची-ऊँची लहरें भी उठ सकती हैं?

वह तिरंगा झंडा, नारंगी-सफेद-हरे रंग के कपड़े पर एक चर्खा, वह झंडा उसका था, पर उसके बनाने में कजली का भी हाथ था; क्योंकि दोनों ने उस कपड़े को बुनने के लिए सूत काता था। फिर कनु एक आने का रंग लेने उस गाँव में गया था जहाँ बाज़ार लगता था और जब वह लौटा उसका चेहरा जोश के मारे खिला हुआ था। "आज तो हाट में हरे और नारंगी रंग के अलावा कुछ है ही नहीं। न चावल है, न दाल है, बस सिर्फ रंग है; मानो सारा संसार आज रंग खरीदने के लिए उमड़ पड़ा है। गाँव-गाँव में दर्जनों झंडे लहराए जायंगे। लेकिन मेरा झंडा," उसने बड़े अभिमान के साथ छाती ठोकी, "तुम बस देखना!"

और सचमुच वह बहुत ही शानदार झंडा था।

कजली इस अवसर के लिए विशेष रूप से सज धजकर तैयार हुई थी। हरे किनारे की सफ़ेद खादी की साड़ी पर उसने एक नारंगी रंग की चोली पहनी थी। वह साकार तिरंगा बनी हुई थी। परन्तु चूँकि वह बड़ी हो गई थी, इसलिए उसके शरीर पर बहुत कसी थी। उसने अपनी साड़ी के आँचल से अपने शरीर को कसकर लपेट लिया कि कहीं वह सरक न जाय। उसे लगातार यह ध्यान था कि कहीं उसका सीना खुला तो नहीं है और इसीलिए उसकी आँखें बार-बार घबराकर झुक जाती थीं।

पुराने बरगद के नीचे ध्वजाभिवादन हुआ। देवता ने राष्ट्रीय

आन्दोलन की नई विचार-धारा, नए मोड़ के विषय में भाषण दिया। सारे गाँव ने उन शब्दों को दोहराया। कजली भी अपने भाई के पास खड़ी थी। वह उससे बहुत लम्बा था; वह केवल उसकी ठोड़ी तक आती थी। कजली ने भी देवता के शब्द दोहराए, क्योंकि देवता ने कहा था कि इस काम में औरतों को भी उतना ही हिस्सा लेना चाहिए जितना मर्दों को। बाकी सब औरतें अलग एक समूह में खड़ी झंडे को प्रणाम कर रही थीं, पर कजली अपने बड़े भाई के पास खड़ी थी। उसकी आँखें पास ही खड़े हुए देवता पर जमी हुई थीं। देवता अपने माथे पर हाथ फेरते जाते थे; मानो वह थक गए हों, बहुत थक गए हों। क्या वह ठीक से सोए नहीं थे? यद्यपि कजली झंडे को प्रणाम कर रही थी, पर उसका ध्यान पूरी तरह राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर नहीं था जिसका वह झंडा प्रतीक था, जिस प्रकार पत्थर या लकड़ी की मूर्ति किसी देवी या देवता की प्रतीक होती है। कजली के हृदय में देवता के लिए चिन्ता थी, दर्द था। और इसमें असंगत बात क्या थी, क्योंकि आन्दोलन, झंडा और देवता उसके लिए सब एक ही थे। उसने गम्भीर स्वर से, किन्तु ज़ोर से कहा कि वह मरते दम तक उस झंडे के साथ विश्वासघात नहीं करेगी। उसका हृदय चुपके से पुकार उठा कि वह देवता को अपने-आपको इतना थकाने न देगी। दूसरों के लिए वह देवता थे, पर उसका तो वह दादू था। उसकी आँखें बार-बार जाकर उन पर जम जातीं और उसके होठों पर गर्व की एक कोमल मन्द-सी मुस्कान की रेखा दौड़ जाती।

बहुत प्रातःकाल ही लाल पगड़ी वाले आ पहुँचे—पूरी एक लारी भरके। उन्होंने देवता को सोते से जगाया, उनके हाथों में हथकड़ी पहना दी, सारे घर की अच्छी तरह तलाशी ली, किताबों और काग़ज़ों

उसकी आँखें पास ही खड़े हुए देवता पर जमी हुई थीं। देवता अपने

बहुत शान्तिपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा, "कजली, तूने झंडे को प्रणाम करके शपथ ली थी, तू सैनिक है।" और कजली अपनी पलकों में आँसू पी गई। उसने अपने निचले होठों को इतना कसकर दाँतों से दबाया कि उसकी कोमल खाल में खून छलक आया; क्योंकि वह एक सैनिक थी।

कोई नहीं रोया—न माँ, न कनु और न अनु। सबने झंडे को प्रणाम करके शपथ ली थी; सब सैनिक थे।

गाँव-भर में यह समाचार आग की तरह फैल गया और सारा गाँव आकर उस सड़क पर जमा हो गया जिधर से होकर पुलिस की लारी गुजरने वाली थी। सैकड़ों लोग, बूढ़े और जवान, वहाँ जमा थे। वे क्रोध में नारे लगा रहे थे। वे देवता को छुड़ाने के लिए तुले हुए थे। वे समुद्र की लहरों की तरह आगे बढ़ते चले आ रहे थे।

लाल पगड़ी वालों ने चेतावनी के लिए हवा में गोली चलाई और उन्होंने धमकी दी कि अब की बार वह गोली से भून डालेंगे।

गोलियों की सहसा बौछार से लोग भौंचक्के रह गए, पर केवल एक क्षण-भर के लिए। फिर सहसा ऐसा मालूम हुआ कि अन्दर कोई चीज़ टूट गई, कोई बन्धन जो उनको रोके हुए था। "मारो, इन दुष्टों को मारो," एक भारी आवाज़ गरज उठी, "वह हमारे देवता का बाल भी बाँका न कर सकें, मारो इन दुष्टों को।" हजारों कण्ठों से यही ललकार निकलने लगी, क्रोध की पताका फहराने लगी। पलक मारते ही वह लोग भी, जो अब तक बकरियों की तरह विनीत थे, शेरों की तरह दहाड़ने लगे। उन्होंने डटकर गोलियों का सामना किया। वे इस बात पर दृढ़ थे कि वे उस कलंकित शक्ति को पीछे ढकेल देंगे, चाहे उनको अपनी जान ही क्यों न देनी पड़े। उनका नारा था—'करो या मरो।'

कजली की कुछ समझ में न आया कि किस प्रकार देवता लारी में से उतरे और उनके सामने आकर खड़े हो गए, जिन्होंने उनको गिरफ़्तार किया था। वह जनता के सम्मुख खड़े थे। जब उन्होंने हथकड़ियों में

जकड़े हुए अपने हाथ ऊपर उठाए तो उनके कुरते की आस्तीनें नीचे को सरक गईं। उमड़ती हुई भीड़ आश्चर्य से ठिठक गई। चारों ओर सन्नाटा छा गया।

देवता यहाँ खड़ा था—सफेद वस्त्रों में आभूषित वह दिव्य मूर्ति, दोनों हाथ ऊपर को उठाये हुए। उसके चाँदी की तरह चमकते हुए बाल और लम्बी श्वेत दाढ़ी एक विचित्र ज्योति से चमक रहे थे, जो केवल सूर्य की ही ज्योति नहीं थी।

"दोस्तो और साथियो, इस झंडे को धोखा मत देना। अपने-आप-को धोखा न देना। हमारा एक-मात्र आधार हमारा अन्तर्विश्वास है—अहिंसा। तुम्हारे विचारों में हिंसा है। यह बात स्वतः बहुत बुरी है। अब इन विचारों पर चलकर और बुराई न करो।"

लोगों के सिर झुक गए। किसी के मुँह से एक शब्द भी न निकला। इधर-उधर कुछ कानाफूसी सुनाई दी, पर वह भी शीघ्र ही शान्त हो गई।

"हमारा काम और भी कठिन है। यदि हम अपने शत्रु के हथियारों का प्रयोग करें तो हम उसकी चाल में फँस जायंगे। हमारी अन्तिम परीक्षा का समय है। दृढ़ रहो और सत्य को न छोड़ो। मौत से न डरो। बन्देमातरम्!"

वह मुड़कर लारी में वापस जाकर बैठ गए।

कजली ने यह सब देखा। उसे दुःख हुआ, पर साथ ही अत्यन्त हर्ष भी। उसकी आँखों में आँसू थे और एक चमक थी। वह यह अनुभव कर रही थी कि उसने एक शक्ति प्राप्त कर ली है। और जब उसने दूसरों के मुख से बाकी किस्सा सुना तो क्रोध के मारे उसकी मुट्ठियाँ बार-बार कस जातीं और फिर खुल जाती थीं।

पुलिस की लारी पुराने बरगद के पास से गुज़र रही थी, पर सहसा रुक गई। ड्राइवर के पास जो अफसर बैठा था उसने तिरंगा झण्डा देख लिया था। बूढ़े बरगद की एक लटकी हुई जटा से झण्डा बँधा हुआ

था—स्वतन्त्रता का प्रतीक, आशा और गौरव का चिह्न। उसने अपनी छोटी-सी बन्दूक निकाली और छः गोलियाँ चला दीं। लारी आगे चल दी।

सहसा ऐसा लगा कि लोगों के दिमाग़ों में फिर कोई चीज टूट गई और अब तो उनको रोकने के लिए देवता भी नहीं थे। वे उद्विग्न हो उठे, एक आग-सी लग गई। क्रोध और घृणा के भाव से नारे लगाते हुए वे उधर लपके जिधर लारी गई थी। कजली उनकी भावनाओं को समझ गई, क्योंकि उसके हृदय में भी वही भावना थी। अपनी माँ के चित्र पर गोलियाँ चलाते हुए देखकर या अपने इष्टदेव की मूर्ति को भंग होते हुए देखकर कौन शान्त रह सकता है? अहिंसा की भी एक सीमा होती है। यदि स्वयं उस पर आक्रमण हो तो मनुष्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति बटोरकर सहन कर सकता है, बदले के विचार के बिना वह पीड़ा को सहता रह सकता है; पर यदि उसकी माता पर आक्रमण हो तो कभी नहीं सह सकता। कजली जानती थी कि लोग यही सोच रहे हैं और वह यह भी जानती थी कि देवता इसका उत्तर क्या देते। अहिंसा का अर्थ निष्क्रियता तो नहीं होता। अहिंसा युद्ध का एक अस्त्र है, जो गोलों और बमों से भी शक्तिशाली होता है। यह सत्य बात है, इसीलिए तो····

कजली तालाब की काईदार सीढ़ी पर अकेली बैठी हुई थी। वह उत्तेजना या विजय की भावनाओं से इस समय सर्वथा मुक्त थी। उसकी आँखों से आँसुओं की धार बह रही थी—आँसू जो उसने अब तक अपने दिल में दबाकर रखे थे। दादू चले गए थे। पिताजी चले गए थे। जेल में उन पर क्या बीतेगी? न जाने कब वह लौटकर आयेंगे—महीनों बाद, बरसों बाद? दादू सत्तर बरस से अधिक उम्र के हो चुके हैं। उनके चेहरे की एक-एक झुर्री से थकान टपकती है। पिताजी की हड्डियों में मलेरिया का रोग समा गया है। उन्होंने किसी का क्या बिगाड़ा था जो···

उसका दिल इस समय जितनी तेज़ी से धड़क रहा था वैसे पहले कभी नहीं धड़का था। उसकी आँखें सूज गई थीं। वह चंचल किसान-बालिका, जो अब बढ़कर स्त्री बन चुकी थी, कोमल भावनाओं के अथाह सागर के तीर पर आ पहुँची थी। और यही भावनाएं इस समय उसके दुःख का कारण बनी हुई थीं। कजली को अपने-आप से डर लगता था। उसका मुखड़ा, जो क्षण-भर में अल्हड़ हँसी से खिल उठता था, उतनी ही जल्दी उदासी की घनघोर बदली में भी छिप जाता था।

वह उन्हें देवता कहते थे, क्योंकि गाँव में उनकी उपस्थिति हमेशा सबके लिए एक वरदान के समान थी। और दूसरे को वह साधु कहते थे, क्योंकि वह किसी एक स्थान पर ज्यादा देर तक न ठहर सकता था। वह मस्त घूमता रहता था। वह हमेशा बंगाल के एक कोने से दूसरे कोने तक का चक्कर लगाता रहता। परन्तु अब यह निरन्तर चलते रहने वाले पाँव जेल में बेड़ियों से जकड़े हुए थे।

उसने अपनी आँखें पोंछकर ऊपर देखा और अपने कानों पर ज़ोर दिया। एक हवाई जहाज़ की भन-भन सुनाई दे रही थी। ऊँचाई पर उड़ते हुए हवाई जहाज़ बहुधा आकाश पर से होकर गुजरते थे, पर वह कभी इतना नीचे नहीं जाते थे कि साफ़ दिखाई पड़ सकें। आश्चर्य और कौतूहल के कारण उसकी उदासी एक क्षण को दूर हो गई। आकाश की नीलिमा को हाथ बढ़ाकर छू सकने का विचार कितना आकर्षक था। उसकी जाँघों पर एक गन्ना रखा हुआ था। उसने उसे उठा लिया और अपने स्वच्छ जवान दाँतों से उसका सख़्त हरा छिलका उतारने के प्रयत्न में उसका मुँह पूरा खुल गया। भारतवर्ष में प्राचीन काल में भी वायुयान थे, और रामायण के विस्तृत उल्लेखों के द्वारा वह उनके विषय में सब-कुछ जानती थी। भनभनाहट बढ़ती जा रही थी। कजली ने सिर उठाया, उसकी आँखें आकाश में कुछ खोज रही थीं। वह दूर पर गिद्ध के समान उड़ती हुई वस्तु क्रमशः बड़ी होती गई। वह जितनी ही नीचे आती जाती थी उतनी ही बड़ी होती जाती थी। इससे पहले

कजली ने कभी हवाई जहाज़ इतना निकट उड़ते हुए नहीं देखा था—इतना नीचे कि ऐसा मालूम पड़ता था कि वह दूर पर लगे हुए ताड़ के वृक्षों को छू लेगा। एक क्षण बाद वह उसी की ओर आता हुआ दिखाई दिया। कानों को बहरा कर देने वाली घड़घड़ाहट के साथ वह विशाल उड़ने वाली वस्तु उसके ऊपर चली आ रही थी। कजली चीख़ मारकर पानी में कूद पड़ी। अपनी नंगी भुजाओं से कमल के पत्तों को थपकती हुई वह तालाब के अन्दर जाल की तरह फैली हुई कमल-नाल में गोता लगाकर छिप गई। थोड़ी देर बाद जब उसने सिर बाहर निकाला उसका मुँह साँस लेने के लिए भाड़ की तरह खुला हुआ था। हवाई जहाज़ जा चुका था।

तालाब की सीढ़ियों पर वह लड़खड़ा गई। वह पीली पड़ गई थी और बुरी तरह सहमी हुई थी। अपनी आँखों पर हाथ रखकर वह उस दूर जाते हुए गिद्ध को देखने लगी। वह कितना नीचे और कितने पास आ गया था, मानो वह झपट्टा मारकर उसे उठा ही ले जाता! वह उसके पंखों की तेज हवा के झोंके को अब तक अनुभव कर रही थी और उसका हृदय धक-धक कर रहा था। आख़िर वह हवाई जहाज चाहता क्या था? गाँव में इतना नीचे उड़ने का तात्पर्य क्या हो सकता था?

कजली को क्या मालूम था कि आर० ए० एफ० का जो पाइलट उस जहाज को आस-पास के क्षेत्र का निरीक्षण करने के लिए उड़ा रहा था, स्वयं भी चिन्तित था। जो काम उसे सौंपा गया था उसके कारण वह बहुत दुःखी था। फ्लाइट लेफ्टिनेण्ट ब्रुक्स युद्ध से पहले एक फौलाद के कारख़ाने में इंजीनियर था। वह लेबर-पार्टी का सक्रिय सदस्य था। उसके विचार कुछ वामपन्थी थे। उसने जर्मन-बमबारी के विरुद्ध ब्रिटेन की रक्षा की लड़ाई में भाग लिया था। वह लीबिया में मेसर श्मिट्स नामक जर्मन हवाई-जहाजों से टक्कर ले चुका था। पर आज यहाँ वह अन्नहीन, वस्त्रहीन, निःशस्त्र लोगों के हृदय में डर पैदा करने के लिए तैनात किया गया था; मानो यह लोग किसी शत्रु-

देश के रहने वाले थे। वह जानता था कि इन लोगों में देश-भक्ति की एक शक्तिशाली लहर दौड़ रही थी और ब्रुक्स को इस बात से हर्ष भी था। वह सारे विश्व की स्वतन्त्रता में विश्वास रखता था। यदि उसे गाँव पर मशीनगन चलाने की आज्ञा दी गई तो वह क्या करेगा? ब्रुक्स जानता था कि दूसरे पाइलटों को इस प्रकार की आज्ञाएं मिली थीं और उन्होंने पास के गाँवों पर इस आज्ञा के अनुसार गोली भी चलाई थी। घृणित, पाशविक कुकर्म! उसने सड़क पर एकत्रित भीड़ को तथा छोटे-से मकान को जलते हुए देखा था। ब्रुक्स को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसका सारा चेहरा सहसा पसीने से तर हो गया है।

कजली को शर्म-सी आने लगी कि वह इतना डर गई थी—वह, देवता की पौत्री, जिसने गोली का सामना किया था। उसने गन्ना उठा लिया और मानो अपने-आपको आश्वासन देने के अभिप्राय से उसने उसे दाँतों से दबा लिया। घर जाकर वह साड़ी बदलना चाहती थी, जो भीगकर उसके शरीर पर इधर-उधर चिपक गई थी। और उसकी कसी हुई चोली तो उसकी छातियों पर बिलकुल चिपकी हुई थी। कजली पत्थर की सीढ़ियों को पार करके कच्ची सड़क पर आ गई। वह अपना गोला चेहरा पोंछती जा रही थी। उसकी नाक बह रही थी। सहसा उसने आगे रेल की पटरी के समीप कुछ आदमियों का एक समूह आता हुआ देखा। वे वापस लौट आए थे, उसके गाँव वाले। उसका दिल धड़कने लगा। क्या हुआ होगा? कनु सुरक्षित है कि नहीं? वह पापी उसे पकड़कर तो नहीं ले गए?

अब घर वापस जाने का समय नहीं था। उसके खुले हुए बाल उसकी कमर तक लटक रहे थे, उनसे पानी टपक रहा था। उसने उनको समेटकर निचोड़ा और जूड़ा बाँध लिया। उसने अपनी चोली के गले में हाथ डालकर उसे अपने शरीर से अलग किया। उसने खेतों को पार किया, जिनमें धूप में पका हुआ सुनहरा धान लहलहा रहा था। वह

बहुत तेज चल रही थी और एक पगडंडी पर पहुँचकर वह दौड़ने लगी।

लोग चुपचाप चले आ रहे थे। उनका जोश ठंडा पड़ चुका था और वह थके हुए और उदास मालूम पड़ रहे थे। कजली व्याकुल होकर अपने भाई को ढूँढ रही थी। वह भी उन लोगों के साथ ही था। हाथ में झण्डा उठाए, उसके चेहरे का पसीना सूरज की धूप में चमक रहा था। उसके क़दम थकावट के कारण लड़खड़ा रहे थे। कजली ने झण्डा उसके हाथों से लेकर ऊपर उठा लिया और हाँफते हुए पूछा—"भैया, क्या हुआ?"

कुछ क्षण चुप रहने के बाद उसने संक्षेप में बहुत ही निरीह ढंग से उत्तर दिया। पाँच मील दूर डाकख़ाने तक गए थे। वहाँ उन्होंने सारा सामान तोड़ डाला था और कच्चे मकान को, जिसमें डाकख़ाना था, आग लगा दी थी। छोटा-सा तो डाकख़ाना था ही। पोस्ट-मास्टर को कोई विशेष आपत्ति नहीं हुई। उसने केवल पैसों वाले बक्स की रक्षा करने का प्रयत्न किया था, पर उन्होंने उसे वह बक्स भी नहीं ले जाने दिया। उसने बक्स को आग में फेंकते हुए, केवल इतना कहा था, "तो जाने दो, तेईस पोस्ट-कार्ड और छः लिफ़ाफ़े। सारे दिन-भर में इतनी ही तो बिक्री हुई थी। मनीआर्डर तो कोई था ही नहीं।" उसे बहुत थोड़ा वेतन मिलता था और उसे अपने मालिकों से कोई सहानुभूति नहीं थी।

डाकख़ाना धू-धू करके जल रहा था और लोगों को यह संतोष हो रहा था कि उन्होंने सरकारी सम्पत्ति को नष्ट करके अपने झण्डे पर होने वाले आक्रमण का बदला लिया है। परन्तु जब वह घर लौटने लगे तो उनको देवता का ध्यान आया। वह सोचने लगे कि यदि कहीं देवता को मालूम हो गया कि उन्होंने उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया है तो उनको कितना दुःख होगा। इस विचार से उनकी आत्मा दुखी हो उठी।

"लो गन्ना चूसो," कजली ने अपने भाई की ओर गन्ना बढ़ाते हुए कहा। उसने दिन-भर कुछ नहीं खाया था। गाँव में किसी के भी मुँह में कौर नहीं गया था।

उसने गन्ना अपने मुँह में रख लिया, पर फ़ौरन ही वापस निकाल लिया। पीड़ा से उसका मुख विकृत हो गया। उसके कान में भयानक पीड़ा हो रही थी। पिछले आधे घंटे से जब से जोश ख़त्म हुआ था, पीड़ा असह्य हो गई थी—इतनी असह्य कि मुँह फैलाने में भी दुःसह कष्ट होता था। यह पीड़ा उसे बहुत दिनों से होती थी और हर कुछ दिनों के बाद आरम्भ हो जाती थी। उसके बाएं कान के परदे में कोई खराबी हो गई थी। वह अक्सर इस वेदना से पीड़ित होकर तड़पता रहता था।

"तो फिर जल्दी चलो," कजली ने कहा। उसके स्वर में एक कोमल भावना स्पष्ट थी—"घर पर माँ कपड़े में नमक बाँधकर कान सेंक देगी और कान का दर्द जाता रहेगा।"

लेकिन कुछ घंटों के बाद जब लारियों में भरकर लाल पगड़ी वाले गाँव में फिर आए, उस समय भी उसके कान में दर्द हो रहा था। इतने लाल पगड़ी वाले सिपाही इससे पहले गाँव में कभी नहीं आए थे। इस बार उनके साथ एक मुख़बिर भी था जो बरूनी के उन तमाम 'बुरे लोगों' के नाम जानता था जो देवता के निकटतम सहयोगी थे। एक लारी बन्दियों से भर गई। उनके हाथ हथकड़ियों में जकड़े हुए थे और उनकी कमर में रस्सी बँधी हुई थी। लाल पगड़ी वाले उस बड़े झण्डे को ढूँढ़ रहे थे—उस झण्डे को—जो इस हलचल की, इस राज-द्रोह की जड़ था। वह उस झण्डे को भी अपने पाँव से रौंदना चाहते थे। उनके इस दुष्ट विचार का पता पाकर कजली ने झण्डे को भूसे के ढेर में छिपा दिया था।

इस बार भी कोई नहीं रोया—न हथकड़ियों में जकड़ा हुआ कनु, न अनु, न माँ। वे सब सैनिक थे, यद्यपि माँ का हृदय अब भी मसोस रहा था, "बस, जाने से पहले यदि वह केवल एक बार ही मुझे अपने बेटे का दुखता हुआ कान सेंक लेने देते तो···।"

आठ

शासन की क्रूर शक्ति के खिलाफ़ किसानों ने कई टक्करें लीं; कई लोग गोलियों का शिकार हुए। जो गोलियों से घायल हुए थे उनको उनके साथी घर उठा लाए। गाँव-गाँव से पुलिस सैकड़ों लोगों को हथकड़ियों में जकड़कर ले गई। जो लोग अब तक दमन के सामने सिर झुका देते थे, जिनके हृदय कुचले हुए थे, वे इस आतंक से हताश नहीं हुए, बल्कि अपनी पूरी शक्ति से उसका मुकाबला करने को डट गए। आतंक की ज्वाला ने उनमें दमन का सामना करने की भावना जागृत कर दी। परन्तु उनके सामने एक बहुत महत्त्वपूर्ण काम था, जिसे तत्काल पूरा करना था। दूर तक धान के सुनहले पौधे लहलहा रहे थे और वृष्टि होने पर इस अन्न के नष्ट हो जाने का भय था। कई दिन यों ही व्यर्थ जा चुके थे। यह आवश्यक था कि फसल फौरन काट ली जाय।

सूरज की तपती हुई धूप खेतों पर पड़ रही थी। धान काटते समय हँसिए धूप में चमक उठे और धान के पौधे कटकर जमीन पर गिरने लगे। धान से लदे हुए पौधों के ढेर ज़मीन पर लगते गए। कजली को इस सारी क्रिया में एक संगीत-सा सुनाई दे रहा था। वह फ़सल काटने की विभिन्न क्रियाओं से भली-भाँति परिचित थी, पर एक संगीत का लय के रूप में। उसे स्वयं फसल काटने का कभी ज्ञान न था, वह इस

काम से बिलकुल अनभिज्ञ थी। और यह काम औरतों का था भी नहीं। औरतों को घर के ही इतने काम होते हैं कि उनको फ़ुरसत नहीं मिलती। फसल को माड़ना, अनाज को सुखाना, उपले पाथना, तालाब से पानी भरकर लाना और गृहस्थी के सैकड़ों और छोटे-मोटे काम, सारा वक्त इसी में निकल जाता था। परन्तु पिताजी चले गए थे; कनु चला गया था। कजली बेचारी करती भी क्या ? उसे मर्दों का यह कठिन काम संभालना पड़ा। देर तक झुके रहने के कारण उसे ऐसा अनुभव होता कि उसकी रीढ़ की हड्डी अकड़ गई है। उसका सारा शरीर पसीने से तर हो जाता और उसके चेहरे पर से पसीना बहकर उसकी गर्दन से होता हुआ उसके सफेद सलूके के गले में चला जाता। वह थोड़ी-थोड़ी देर के बाद अपनी कमर सीधी करने के लिए रुक जाती और अपनी हथेलियों से तपते हुए चेहरे पर से पसीना पोंछती। अनाज की एक बाल प्राप्त करने के लिए कितना पसीना बहाना पड़ता है, कजली सोच रही थी। वह अपनी पसीने से तर हथेलियों को देख रही थी। हँसिए को मज़बूती से पकड़ने के लिए उसने अपनी साड़ी से हाथ पोंछे।

यह बात नहीं थी कि वह निराश हो गई थी, या वह हिम्मत हार गई थी। वह अपने दादू की पोती थी। जब लाल पगड़ी वाले उनको पकड़कर ले गए थे उससे पहले दादू ने कहा था—"अपने-आपको धोखा न देना। हमारी अन्तिम परीक्षा का समय है। दृढ़ रहो और सत्य को न छोड़ो। मौत से न डरो।" और इन शब्दों को सुनकर उसने अपने अन्दर एक शक्ति का अनुभव किया था।

कजली ने अपने हाथ से अपना चेहरा पोंछा, जो धूप से तमतमा रहा था; और फिर अपने ठोढ़ी को इस ढंग से झटका दिया जैसे उसने कोई दृढ़ निश्चय किया हो। दृढ़ रहो और सत्य को न छोड़ो। मौत से न डरो।

और अनु ? वह तो और भी नौसिखिया था। वह बिलकुल बच्चा था और उसका शरीर भी बहुत दुर्बल था। इस काम से वह थककर

चूर-चूर हो गया था। थकान उसकी आँखों से टपक रही थी। कजली का हृदय अपने भाई के लिए रो उठा।

"अनु, थोड़ी देर सुस्ता ले, भैया! तू थक गया होगा। अभी बुखार से उठे तुझे तीन दिन भी तो नहीं हुए। मुझे तो तेरी बड़ी चिन्ता लगी है," कहकर कजली ने दीर्घ निश्वास लिया।

"न", अनु ने पूर्ववत् हँसिया चलाते हुए कहा। वह धान के पौधों को काटकर गिरते हुए देखकर उत्साहित हो रहा था। वह रुका। कजली की तरह उसकी साँस भी थकावट के कारण बहुत तेज़ चल रही थी।

"थक गया?"

"नहीं तो दीदी, तुमने तीन गट्ठे और काट लिये? यह देखो, मैंने इतना काटा है। तीन गट्ठे होगा न?" उसके भाव में उत्सुकता थी, उत्साह था। वह मुड़कर अपने काटे हुए अनाज को देख रहा था।

"नहीं, तीन से ज्यादा होगा," कजली ने अन्दाज़ा लगाते हुए कहा। जब अनु की पीठ उसकी तरफ थी, कजली ने उसकी आँख बचाकर अपनी काटी हुई फसल में से कुछ उसके ढेर में डाल दी थी। "आओ, बटोर लें तब बतायंगे अभी एक मिनट में।"

अनु देखता रहा। पूरे तीन गट्ठे थे और कुछ बच रहा था। उसका बालकों का-सा चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा।

"दीदी, मैं और तेज़ काटूँगा, तुम देखना अभी। मैं कनु भैया जितना काम कर लेता हूँ; है न?" वह कुछ झिझका, "बाबा जितना?"

"अनु," कजली ने अपना हँसिया जमीन पर फेंकते हुए कहा, "सूर्य-देवता सिर पर आ गए। देखा तूने? चल, खाने का समय हो गया।"

"इतनी जल्दी?" बालक ने आकाश की ओर देखा, "आज सूर्य-देवता ने बड़ी जल्दी की। खाना खाने के बाद मुझसे काम न होगा, दीदी! खाना खाने के बाद तबियत भारी हो जाती है, आलस आता है, मालूम नहीं क्यों।"

कजली ने उससे प्यार से कहा—"देख तो, तेरा पेट कितना पिचक गया है। गाँव के और लोग भी तो भूखे होंगे। वह खाली पेट तो अपना पसीना नहीं बहाते रहेंगे। मैं तुझे कैसे समझाऊँ?" उसकी शान्त आँखों में चिन्ता थी।

तीन किसान दूर खेत के दूसरे सिरे पर धान काट रहे थे। बरसों से वह इसी खेत पर काम करते आए थे और वह कजली के पिता के बराबर रहे होंगे। कजली ने आवाज़ दी—"काका!" उनमें से एक, जिसके बाल सफेद हो गए थे, अजीब ढंग से लंगड़ाकर चल रहा था। उसकी एक टाँग गोली लगने के कारण बेकार हो गई थी। खेत पर काम करने वाले किसानों को फसल कटने के समय में उनके मालिक के यहाँ से ही खाना मिलता था। यही दस्तूर था। कजली रोज़ दोपहर को उनके लिए भात पकाकर लाती और वह एक पेड़ के साये में बैठकर खाते।

वे घर की ओर जा रहे थे—कजली और उसका भाई। तीन खेतों के पार उसने गाँव के बनिए को एक किसान से बातें करते देखा। वह बातें करते समय अपने दोनों हाथों को हिला-हिलाकर कुछ समझा रहा था। बनिए ने कजली को देखा और पुकार कहा, "माँ से कह देना मैं सूरज डूबे उससे मिलने आऊँगा।" उसके गोल चेहरे-भर पर मुस्कराहट बिखरी हुई थी। यह बात कहते समय उसकी बत्तीसी कानों तक फैल गई। "और कजली, जब मैं आऊँगा तो तेरे बालों के लिए नीला रेशमी फीता भी लेता आऊँगा; आजकल शहर में इसका बहुत फैशन है।"

कजली ने धीरे से अपना सिर हिलाया, पर कुछ कहा नहीं। वह बनिया उसकी माँ से आकर मिल चुका था और धान की फसल के बारे में कुछ बातें भी कर गया था। माँ ने उससे कह दिया था कि वह फसल न बेचेगी, क्योंकि जो थोड़ा-बहुत खेत में होगा वह घर की जरूरत को भी मुश्किल से पूरा पड़ेगा। पर वह उससे फिर बातें करने के लिए आने वाला था। कितना सब्र और हठ था उसमें!

बनिये के पास आजकल अपने पुराने रोज़गार के लिए समय ही न

बचता था। उसने अपने साले को पैसे-धेले की बिक्री के लिए दुकान पर बैठा दिया था और ख़ुद अपने गाँव से दूसरे गाँव में, इस खेत से उस खेत, इस घर से उस घर चक्कर लगाता रहता था। कई गाँव उसके जिम्मे थे। दिन-भर उसकी ज़बान कैंची की तरह चलती रहती और वह लोगों को अपनी फसल बेच डालने के लिए समझाता रहता—

"भाइयो, यही तो मौक़ा है तुम्हारे लिए, जितना बेच सकते हो बेच डालो। एक मन चावल के आठ रुपये मिलेंगे। तुम्हीं बताओ, इतनी क़ीमत पहले कभी मिली थी तुमको? तुमने कभी सुना भी है कि पिछले सौ बरस में चावल का भाव इतना हुआ हो? तुम्हारी चौदह पुश्तों में भी चावल कभी इन दामों बिका है? आज तुम्हारा चावल सोने के मोल बिक जायगा। चावल के दानों पर सोने का पानी चढ़ा है, पर यह पानी धुल जायगा। बाद में इतने दाम न मिलेंगे। आज जापानी हमारी सीमा पर खड़े हैं; हमारे सिपाहियों के लिए भोजन चाहिए, मिलों में काम करने वाले हमारे मज़दूरों को भोजन चाहिए, क्योंकि वह दिन-रात मेहनत कर रहे हैं। न सोने की फ़ुरसत मिलती है उनको, न बात करने की। दम मारने तक की भी फ़ुरसत नहीं मिलती; पर यह हालत ज्यादा दिनों तक नहीं रहेगी। हमारे साथ अंग्रेज़ हैं, अमरीकी हैं। जापानी राक्षस को चींटी की तरह रौंद दिया जायगा। फिर क्या होगा? फिर तुम्हारा चावल कौन ख़रीदेगा? सिपाही अपने-अपने घर लौट जायंगे और अपने-अपने काम में लग जायंगे। मज़दूर घर बैठे मक्खियाँ मारेंगे—मक्खियाँ। फिर तुम्हारा अनाज तुम्हारी बखारों में सड़ जायगा, मैं बताए देता हूँ। गौरमिण्ट के पास जो अनाज बचेगा वह सब बाज़ार में बेचेगी। अगर तुम्हारे पास पैसा होगा, काफ़ी पैसा होगा; तो तुम अपना चावल फिर ख़रीद सकते हो। आज आठ रुपये के भाव बेचोगे कल पाँच के भाव खरीद लेना। सौदा अच्छा है। मैं तो तुमसे सीधी बात कहता हूँ—आज अपनी फसल बेच दो और बाद में फिर जितनी ज़रूरत हो कम दाम पर ख़रीद

लेना। इसमें क्या हर्ज है? इसमें तुम्हारा कोई नुकसान तो नहीं होगा। जो ज़्यादा पैसे मिलेंगे उससे गाय खरीदना, नया हल बनवाना, पुरानी झोंपड़ी पर नया छप्पर डालना। सोच-समझ लो।

"देवता ने क्या यह कहा था कि फ़सल न बेचना? देवता बुद्धिमान हैं; वह सब-कुछ देखते हैं; वह सब-कुछ जानते हैं; मैं तो उनके चरणों में शीश नवाता हूँ। जिधर होकर वह गुज़र जाते हैं, वहाँ की धूल मैं माथे पर लगाता हूँ। आज देवता अगर यहाँ होते तो वह यही कहते—'साथियो और दोस्तो, बेच डालो। जितना बेच सकते हो बेच डालो।' भाइयो, जिन्दगी एक जूआ है। हर बाज़ी में नया पत्ता तुम्हारे हाथ में आता है। आज तुम कल वाली बाज़ी के हिसाब से तो नहीं खेल सकते। काश, देवता अपनी बात तुम्हारे पास तक पहुँचा सकते!"

और वह बनिया निरन्तर इसी तरह बातें करता रहा। वह बनिया ऐसे बातें कर रहा था, मानो उसके मुँह में दस ज़बानें हों। बातें करते समय वह अपने हाथ जोर-जोर से हिलाता जाता था। इधर वह बातें कर रहा था और उधर रेल की पटरी के पार उजड़े हुए गाँवों के लोग सड़क पर अज्ञात लक्ष्य की ओर चले जा रहे थे—असंख्य लोग, असंख्य पशु, सब बेघरबार, सब अपनी ज़मीन पर से निकाले हुए। हवाई अड्डों की संख्या बढ़ती जा रही थी—अंग्रेज़ों के हवाई अड्डे, अमरीकियों के हवाई अड्डे। और साथ ही दिन-बदिन अधिक गाँव उजड़ते जा रहे थे। कभी-कभी निराश्रितों का कोई झुण्ड बड़ी सड़क पर से मुड़कर बरूनी में आ जाता था। 'भाई, हमें थोड़ा-सा चावल बेचोगे? हम न कंगाल हैं, न चोर-उचक्के हैं। हमारी जमीन फ़ौज ने हमसे ले ली है। क्या हम अपनी गायें यहाँ चरा सकते हैं? अब की तो वर्षा अच्छी हुई है और घास भी काफ़ी है।'

बालों के लिए नीला फ़ीता! शहर में आजकल इसका बड़ा फ़ैशन है, कजली सोच रही थी। उसकी बड़ी इच्छा होने लगी कि

वह अपनी चोटी में नीला फ़ीता डाले, पर वह बनिये से मुफ़्त में फ़ीता नहीं लेगी। वह उसके हाथ अपना चावल भी न बेचेगी। वह चावल केवल उन बेघरबार लोगों के हाथ बेचेगी और किसी के हाथ नहीं···।

और बेचने के लिए अधिक चावल था भी कहाँ ? अबकी बार उसकी फ़सल अच्छी भी नहीं हुई थी। और आउस की फ़सल कोई मुख्य फ़सल तो होती नहीं, वह तो अमान की फ़सलों के बीच में यों ही बो दी जाती है। बोते समय तो बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, पर काटते समय बहुत थोड़ा-सा अनाज ही हाथ आता है। भला कौन यह थोड़ा-सा अनाज बेचने को तैयार होगा ? अमान की फ़सल से तो आधा साल कट जाता था, पर आउस की फ़सल का अनाज तो बस जाड़े के बीच ही में खत्म हो जाता था।

"उसने मुझे रबर का एक सफ़ेद गेंद देने को कहा है," अनु बोला, "वह समझता है कि वह मुझे इस तरह फुसला लेगा।" अनु गेंद के लालच में नहीं फँसा था। घर में केवल वही तो अकेला मर्द था, क्या उस पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं थी ? "चावल नहीं बेचा जायगा, बाबा ने भी यही कहा है। सफेद रबर की गेंद···हुँह !"

"अच्छा मुझे पकड़ो तो जानें," अनु चिल्लाया और यकायक दौड़ने लगा। कजली ने भी साँस भरकर उसके पीछे दौड़ना शुरू किया। उसके दोनों हाथ उसके सीने पर थे और उसका जूड़ा खुल जाने के कारण बालों की लटें उसकी पीठ पर झूल रही थीं।

वह रोज़ इसी तरह करते थे। दिन-भर काम करने के बाद वापिस लौटते समय जब घर दिखाई पड़ने लगता तो वह घर तक दौड़ लगाते। शायद इसका कारण उनका बचपन था, शायद माँ से मिलने की उतावली।

"माँ ! ओ माँ !" दोनों ने उत्साहपूर्ण स्वर में एक-साथ पुकारा। दोनों भागते हुए रसोई के आँगन में गए, लेकिन सहसा आश्चर्य से ठिठक गए।

बरामदे में फर्श पर एक अजनबी आदमी पाल्थी मारे बैठा था और उसके सामने चावल और कद्दू की तरकारी से भरी हुई एक थाली रखी थी। जिस समय उसने आवाज़ सुनी उसके मुँह में कौर था। उसने सिर उठाकर ऊपर को देखा।

माँ रसोई की कोठरी में से बाहर निकल आई।

"यह है मेरी चाँद-सी बच्ची," उसने एक दृष्टि अतिथि पर डाली और फिर गर्वपूर्ण दृष्टि से अपनी बेटी को देखा और उसकी दृष्टि फिर अतिथि पर लौट गई। और क्षण-भर में उसके मुख पर चिन्ता के बादल छा गए। आगन्तुक ने एक शब्द भी न कहा था। उसने केवल अपना सिर उठाकर देख-भर लिया था और फिर सिर झुकाकर चावल का कौर बनाकर तरकारी के शोरवे में डुबोकर खाने में लीन हो गया था। ऐसा मालूम पड़ता था कि भोजन के अतिरिक्त न उसके पास किसी चीज को देखने का समय है और न किसी चीज के बारे में सोचने का ही।

कजली उसे खाते हुए देख रही थी। वह कद्दू उनके घर में लगभग पिछले एक माह से था। उनके खेत का वह आखिरी कद्दू था। कजली की कई बार इच्छा हुई थी कि उसकी तरकारी बनाए, पर माँ ने उसे बचाकर रख छोड़ा था कि ज़रूरत पड़ने पर कभी काम आयगा। कितना बड़ा था वह पीला-पीला हरा-हरा कद्दू! आज कौनसी ऐसी अनोखी बात थी कि एक बिलकुल अजनबी के लिए उसने उसे काटकर पका दिया था?

माँ कजली की तरफ मुड़ी और बोली, "अभी इसको यहाँ आए कोई दो घंटे हुए होंगे। यह आया और कहने लगा, 'माँ, पहले कुछ खाने को दो फिर सब-कुछ बताऊँगा।' तेरे बाबा ने इसे यहाँ भेजा है।"

"बाबा ने?" कजली के मुँह से चीख़ निकल पड़ी। उत्सुकता के कारण उसको अपने ऊपर वश नहीं रह गया। "तो बाबा जेलखाने में

नहीं हैं ?" वह मारे खुशी के काँप रही थी, पर उसे भय भी था कि कहीं उसकी इस सुखद आशा पर पानी न फिर जाय।

"नहीं, उन पापियों ने उनको अभी तक बन्द कर रखा है। यह लड़का भी उसी जेल में उनके साथ था। दोनों एक माह तक साथ रहे। तेरे बाबा मज़े में हैं। जेल में बहुत बड़ा हत्याकांड हो गया है।"

"हत्याकांड ?" कजली की साँस रुकने लगी। उसने चकित नेत्रों से अतिथि की ओर देखा।

नवयुवक ने ऊपर देखा और बोलने लगा, ऐसा मालूम पड़ता था कि उसके होंठों पर लगी हुई मुहर टूट गई है।

उसने कहा—"उन लोगों ने कैदियों पर गोली चलाई। हम लोग गाना गा रहे थे। उन्होंने हमको गाने से मना किया। पर हमने भी गाना बन्द नहीं किया। वार्डर ने हमारे एक साथी के थप्पड़ मार दिया और उसने भी जवाब में ज़ोर का थप्पड़ रसीद कर दिया। बात बढ़ गई। सीटियाँ बजीं, जेल का घंटा बजा और सारी जेल रणक्षेत्र-सा मालूम होने लगी। वार्डरों ने और पहरेदारों ने हम निहत्थे कैदियों पर गोलियाँ चलाईं। हमारे पास लड़ने के लिए अपने हाथों के सिवा और कुछ नहीं था।" उसका सिर सहसा नीचे झुक गया और वह धीमे स्वर में कहता रहा—"पन्द्रह मारे गए; लगभग इसके दूने घायल हुए होंगे। यह सब तो अखबारों में भी छपा था।"

"तेरे बाबा को चोट नहीं आई," माँ ने जल्दी से बात जोड़ दी। अपने दोनों हाथ जोड़कर उसने भगवान् को धन्यवाद दिया।

"कौनसा गाना था वह ?" कजली ने धीरे से पूछा, "एक गाने के कारण इतना बड़ा हत्याकांड !"

"क्रान्ति का गीत था," नवयुवक ने कजली को कनखियों से देखते हुए कहा। उसके मुँह में किनारों पर तरकारी का शोरवा लगा हुआ था।

"वह तुझे गीत बता देगा," माँ ने कहा, "बड़ा उत्साह है इसमें,

बिलकुल हमारे गाँव वालों जैसा। किशोर तुझे क्रान्ति का वह गीत सिखा देगा। अभी जरा-सी देर में !" उसका उदास मुख किसी विचार से सहसा चमक उठा और वह कल्पनाओं में डूब गई—"अरे ! इसके माता-पिता मर गए हैं। बेचारा पाँच महीने जेल में रहकर आया है। भाग्य की बात है, नहीं तो क्यों वह सारे देश की जेलें छोड़कर उसी जेल में तेरे बाबा के साथ एक ही वार्ड में रखा गया ? और अगर जेल में गड़बड़ ही न हुई होती तो दो माह पहले ही छूटकर आ जाता और फिर तेरे बाबा की इससे मुलाकात न होती।" वह रुक गई और उसका चेहरा फिर उदास हो गया। "न जाने मेरा कनु किस जेल में बन्द किया गया होगा ?"

अनु अतिथि को देख रहा था। उसके हृदय में अतिथि के प्रति आदर की भावना जागृत हो उठी थी। जब सब लोग चुप हो गए तो उसे बोलने का अवसर मिला।

"हमारे बड़े भैया कनु तो जेलखाने में ही पैदा हुए थे," अनु ने गर्वपूर्वक कहा।

किशोर ने ऊपर देखा; उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था। कजली ने समझाते हुए कहा—"हमारी माँ आज से बीस बरस पहले जेल गई थीं। गांधीजी का सत्याग्रह-आन्दोलन चल रहा था उस ज़माने में···"

अनु ने जल्दी से बात काटते हुए कहा, "और हमारे भैया वहीं पैदा हुए थे, वहीं जेल में।" अनु के हृदय में इस बात की कसक छिपी हुई थी कि वह भी क्यों जेलखाने में पैदा नहीं हुआ।

"बेटा, थोड़ा-सा चावल और लोगे ?" माँ ने किशोर की प्रायः खाली थाली पर नज़र डालते हुए पूछा।

"नहीं, नहीं माँ," नवयुवक ने आग्रह किया। "मेरा पेट बिलकुल भर गया है। अब मैं एक दाना भी और नहीं खा सकता, माँ !" कजली आँखें झुकाए खड़ी थी। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि वह उत्सुकता से उसे बड़े ध्यान से देख रहा है। उसकी नज़र में कोई ऐसी बात थी

जिसके कारण कजली शरमा गई और लजाकर उसने अपना मुँह फेर लिया।

"एक कौर और, मेरा बेटा! तरकारी अच्छी नहीं बनी, मालूम होता है।"

"नहीं तो, माँ! मेरी थाली देखो, मैंने एक दाना भी चावल का नहीं छोड़ा है और तरकारी भी सब खा ली है।"

माँ मुस्करा दी और रसोई में जाते हुए बोली, "नहीं थोड़ा-सा तो और खा लो!" कजली भी उसके पीछे-पीछे चली गई और अनु को अतिथि से बातें करने के लिए वहाँ छोड़ गई।

"बिलकुल कनु-जैसा ही है," माँ ने धीमे से कहा। उसकी आँखों में एक नए उल्लास की चमक थी।

"कौन, माँ?" कजली ने पूछा। यद्यपि वह अच्छी तरह जानती थी कि माँ किसके बारे में बात कर रही है।

"मेरा नया बेटा। तूने नहीं देखा कि वह कनु से कितना मिलता है यह?"

मेरा नया बेटा! बालिका आश्चर्य से माँ को तक रही थी। इतनी जल्दी माँ की रुचि उसके प्रति क्यों बढ़ गई? और कनु भैया की कौन सी बात इस अजनबी से मिलती थी? दोनों की उम्र तो समान होगी, परन्तु यह गोरा था और कनु भैया का रंग काला था। कनु बाबा को पड़ा था और उसका रंग उन्हीं की तरह काला था, माँ की तरह गोरा नहीं। इसके चेहरे पर प्रसन्नता थी, मुस्कराहट थी; कनु भैया की तरह उदास और चिन्ताग्रस्त नहीं। चाहे उनकी आत्माएं एक-समान ही हों फिर भी वह एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न लगते थे। कितने अजीब ढंग से वह उसे घूर रहा था! ऐसा लगता था कि उसे इसमें बड़ा आनन्द आ रहा था। कजली का चेहरा लज्जा से लाल हो गया और उसने मुँह फेर लिया। लेकिन कुछ भी हो वह उससे क्रान्ति का वह गीत तो ज़रूर सीखेगी जिसने जेलखाने के पहरेदारों को पागल बना दिया था।

"कजली, तूने नहीं देखा कि वह कनु से कितना मिलता है?"

उसने माँ का दिल रखने के विचार से कह दिया, "देखा क्यों नहीं, माँ! वह भला कहीं छिप सकता है? बिलकुल दादा का ऐसा है, बिलकुल वही सूरत-शक्ल, वही रंग-ढंग।" कजली का हृदय उस अपरिचित के प्रति कृतज्ञता से भर गया, क्योंकि उसके आने से माँ को कुछ शान्ति मिली थी, नहीं तो वह अपने पति और पुत्र के जाने के बाद से कोई अज्ञात पीड़ा, कोई गुप्त चिन्ता उसे दिन-रात खाए जाती थी। कजली सोचने लगी—बाबा जेलखाने में बहुत तकलीफ़ में तो नहीं रहते हैं। अतिथि जानता होगा। कजली ने उससे पूछने का निश्चय कर लिया था। वह बाबा के साथ जेलखाने में रहा था, कजली की आँखों में उसके प्रति एक कोमल भावना जागृत हो उठी।

"बाबा जब जेल पहुँचे उस समय यह तीन माह की सज़ा काट चुका था। किसी मिल में हड़ताल हुई थी। यह कपड़े की मिल में काम करता था; जानती है? यह हड़ताल का नेता था। मैनेजर ने उसे गिरफ़्तार करवा दिया। उन लोगों को कहीं से एक पैंसिल का टुकड़ा और थोड़ा-सा कागज़ मिल गया और···"

"बाबा ने कोई सन्देश भेजा है?" कजली उत्सुक होकर चिल्ला पड़ी, "क्या पत्र भेजा है?"

माँ ने मुस्कराकर सिर हिलाया और कजली पर कौतूहलपूर्ण गहरी दृष्टि डाली।

"कजली, मैंने तुझे अभी तक बताया नहीं, पर वह तेरे बाबा का एक पत्र लाया है।"

"तो दिखाओ न मुझे। तुमने अब तक क्यों नहीं बताया? बाबा की चिट्ठी?"

हाथ में चावल का कटोरा लिये वह अपने नए बेटे को चावल देने चल दी। जब वह लौटकर आई तो कजली अधीर होकर उससे फिर आग्रह करने लगी, "माँ, चिट्ठी दिखाओ न!"

माँ ने कलसे में से पानी निकालकर हाथ धोए और ताक में रखी हुई एक मोटी-सी पुरानी किताब उतारने का प्रयत्न करने लगी। ताक काफ़ी ऊँचे पर था जिससे माँ को अपने पंजों के बल उचककर किताब उतारनी पड़ी। वह बहुत लम्बी नहीं थी। बस बिलकुल कजली-जैसी ही रही होगी। रामायण के पृष्ठों के बीच में वह पत्र रखा था। कजली पढ़ने लगी।

जैसे-जैसे वह पढ़ती जाती थी उसकी मुद्रा गम्भीर होती जाती थी और उसकी काली-काली आँखें फैलती जाती थीं। माँ उसे बेचैनी और हर्ष से निहार रही थी और कुछ सोचकर अपना सिर हिलाती जाती थी। कितनी अच्छी बात थी कि उसके पति ने उसे लिखना-पढ़ना सिखा दिया था। किसानों की औरतों में से शायद ही किसी को यह सौभाग्य प्राप्त था। माँ अटक-अटककर पढ़ती थी, एक-एक अक्षर पर रुककर। परन्तु पत्र में जो शब्द लिखे थे वह बहुत स्पष्ट थे। "किशोर हमारा नया बेटा है। हमारी कजली का अभी ब्याह नहीं हुआ है। देवता कहते थे लड़की सोलह बरस की होने आई और अभी तक तुमने उसका ब्याह नहीं किया। अब हमारी कजली बड़ी हो गई है। मैं तो भगवान् से यही प्रार्थना करता हूँ कि लड़के को कजली पसन्द आ जाय और वह उससे विवाह करना स्वीकार कर ले।"

यदि वह हमारी कजली को पसन्द कर ले!'''माँ सोचने लगी। वह कजली को बड़े ध्यान से देख रही थी और ताड़ की पंखी उठाकर कजली के मुख पर झलने लगी ताकि उसके चेहरे का पसीना सूख जाय और जब वह लड़के के सामने जाय तो साफ़-सुथरी और सुन्दर दिखाई दे।

"माँ, क्या हो गया है तुम्हें?" कजली ने पंखा उसके हाथों से छीन लिया और तेज चलती हुई साँस के बीच में वह अपनी हँसी दबाकर रह गई। पत्र को दो बार पढ़ चुकने के बाद उसने उसे फिर तह करके

रामायण के बीच में रख दिया और पंजों के बल खड़ी होकर पुस्तक को फिर ताक पर रख दिया।

"जेल के कपड़े उतारने से पहले उसने इस अमूल्य कागज़ के टुकड़े को तह करके अपने मुँह में रख लिया था। कितना चालाक है मेरा बेटा! नहीं तो पहरेदार उससे यह कागज़ छीन लेते।" माँ को इस बात की धुन थी कि उस लड़के की जितनी हो सके, प्रशंसा करे।

निःशब्द सिर झुकाए, कजली ने माँ की आँख बचाकर अपने पाँव रगड़-रगड़कर साफ़ किए। उसका शरीर धूल से अटा हुआ था—धान के खेतों की धूल से। उसके बालों में, उसकी गरदन पर उसके मुख पर हर जगह धूल जमी हुई थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि उसका शरीर बंगाल की मिट्टी का बना हुआ है।

इससे पहले कौन दुलहन अपने होने वाले वर के सामने इस दशा में आई होगी—थकी हुई, धूप से मुरझाई हुई? पर इसमें उसका क्या दोष था कि उसे खेत में मर्दों की तरह काम करना पड़ता था, फ़सल काटनी पड़ती थी? क्या यह भी उसका दोष था कि शहर की कपड़ा-मिल में काम करने वाला वह अतिथि उसे इस प्रकार धूल से अटा हुआ देखे और बिलकुल जंगली समझ बैठे? वह शरम से गड़ गई और उसकी आँखों में आँसू छलछला आए।

उसने अपने को खूब रगड़-रगड़कर साफ़ किया—इतना कि उसकी खाल रगड़ने के कारण लाल हो गई। उसने अपने बाल खोले और अपनी लम्बी-लम्बी काली लटों में कंघी करके धूल साफ़ की और सहसा उसे उस रेशमी फ़ीते का ध्यान आया जो शाम को वह गाँव का बनिया लाने वाला था। शहर में तो बाल में फ़ीता डालने का फ़ैशन था। यदि उसे किसी प्रकार इस समय वह नीला रेशमी फ़ीता बालों में डालने के लिए मिल जाता! कजली ने एक लम्बी आह भरी।

× × ×

किसान-परिवार में जन्म लेकर किसी वधू के लिए यह किस प्रकार

सम्भव था कि वह अपने चेहरे को साफ़ और आकर्षक बनाए रखे और फिर ऐसे समय, कि जब खेतों में फसल पकी खड़ी हो और इस बात की प्रतीक्षा कर रही हो कि उसे फौरन काट लिया जाय, नहीं तो वर्षा से कहीं नष्ट न हो जाय।

केवल एक मिनट के लिए उसने उसे देखा था। उसका चेहरा स्वच्छ और धुला हुआ था। उसके बालों में कंघी की हुई थी। केवल एक मिनट, क्योंकि होने वाली वधू को लज्जाशील होना पड़ता है इसलिए वह अपने होने वाले वर के सामने नहीं आ सकती। यही रीति है और इसका पालन करना पड़ता है। अभी दोपहर का ही समय था कि कजली फिर खेत पर काम करने वालों के लिए खाना लेकर वापस काम पर चली गई। उसने अपनी हँसिया उठा ली। सूरज की तेज़ धूप से उसका सिर चिटका जा रहा था और उसकी तपती हुई किरणें उसकी गरदन पर, उसके कूल्हों पर पड़ रही थीं। थोड़ी ही देर में उसका सारा शरीर माथे से लेकर एड़ी तक पसीने में नहा गया। वह (कजली अपने मन में भी अपने होने वाले वर का नाम नहीं ले सकती थी; वह उसे केवल वह कह सकती थी) घर पर माँ से बातें कर रहा होगा; माँ बैठी चरखा कात रही होगी। या कौन जाने वह गोबर से लिपे हुए स्वच्छ फर्श पर शीतलपाटी बिछाकर सो रहा हो। स्टेशन से छः मील चलकर आने में वह थककर चूर हो गया होगा। कजली ने यह बात अच्छी तरह देखी थी कि वह निश्चित रूप से थका हुआ मालूम होता था। इतने दिन वह जेल में काटकर आया था—कठिन परिश्रम, कोल्हू में बैल की तरह जुता रहना; पहरेदारों से लड़ाई—यह सब-कुछ उसकी कल्पना में घूम गया। और जेल से छूटकर उसने एक क्षण भी इन्तज़ार नहीं किया था। वह सीधा उसके गाँव आया था, मानो उसका कर्तव्य उसे पुकार रहा हो, मानो कोई अत्यन्त आवश्यक काम उसकी प्रतीक्षा कर रहा हो। बाबा के बारे में बात करते समय वह कितने आदर और सम्मान से उनका नाम लेता था। शहर का आदमी है फिर भी दिल का कितना सादा

है। ज़रा भी तो घमण्ड नहीं है उसमें। यद्यपि वह संगीनधारी सिपाहियों का सामना करके आया था फिर भी वह उसके बारे में डींग नहीं मारता था। चावल और कद्दू की तरकारी उसने कितने चाव से खाई थी, मानो बहुत ही स्वादिष्ट भोजन कर रहा हो। एक दाना भी तो नहीं छोड़ा था उसने अपनी थाली में। अगर उसे सचमुच कद्दू अच्छा लगता है तो कजली अपने खेत में कुछ बेलें और बो देगी और फिर उनको छप्पर पर चढ़ा देगी। कुछ दिनों उन बेलों में कद्दू फलेंगे और वह स्वयं उसके लिए तरकारी बनायगी। वह माँ से बुरा खाना थोड़े ही पकाती थी। कद्दू की तरकारी को स्वादिष्ट बनाने का एक भेद है; उससे भूनने की एक विशेष तरकीब है। उसको उबालते समय उसमें उचित मात्रा में मिर्च-मसाले डाले जाते हैं, जिससे कि वह चटपटा तो हो जाय पर कड़वा न होने पाय। वह अपने घर के पीछे लगे हुए केले के पेड़ को काटकर उसके नर्म गूदे की स्वादिष्ट तरकारी बनायगी।

उसके हाथ से हँसिया अब उतना तेज नहीं चल रहा था। उसका हाथ एक समान नहीं चल रहा था। जब वह मुँह धोकर बाल सँवारकर आई थी तो उसने किस प्रकार देखा था उसे; उसकी आँखों में कितनी खुशी थी और वह अपनी आँखें उस पर जमाए बैठा रहा था और फिर वह शरमा गई थी। बड़ी सुन्दर होगी तुम्हारी वधू, तुम इसकी चिन्ता न करो···

और इस विचार के आते ही वह मुस्करा दी। सूरज की धूप में धान के पौधे दर्पण की तरह चमक रहे थे, जिनमें उसका गर्वपूर्ण, मुस्कराता हुआ चेहरा प्रतिबिम्बित हो रहा था।

"दीदी, देखो!" अनु की आवाज़ में विजयोल्लास था। उसने जब अपने काटे हुए अनाज का गट्ठा बाँधा तो वह दीदी के गट्ठे से बहुत ज्यादा था, बहुत ज्यादा।

वह देखने लगी। सहसा भावों के आवेश में उसने अपनी बाँहें फैलाकर अपने भाई को छाती से लगा लिया। अपनी साड़ी से उसका

मुँह पोंछा और उसके माथे पर पड़े हुए बालों को सँभालकर पीछे कर दिया।

"अनु भैया, तू इतनी मेहनत करता है; इतनी फसल काट ली तूने, तेरे हाथ नहीं दुखते ?"

और वह स्वयं बहुत लापरवाही से और अनमनी होकर खेत काट रही थी, क्योंकि उसके हृदय में एक अज्ञात कोमल भावना हिलोरें ले रही थी।

"दीदी रे, देख तो !"

फिर देखे ? अब की किधर देखे ? बड़े आलस्य के साथ उसने मुड़कर देखा और सहसा घबरा गई। उससे कोई बीस कदम दूर वह चला आ रहा था। कटे हुए खेतों को पार करता हुआ वह उसी की ओर आ रहा था।

एक-साथ कई भावनाएं उसके हृदय में उठकर एक-दूसरे में उलझ गईं। कितनी मिठास थी इस निर्लज्जता में कि विवाह से पहले ही अपने वर के साथ कोई वधू देखी जाय। पर साथ ही एक खट्टापन भी था कि उसका चेहरा पसीने से तर था और धूल से अटा हुआ था। उसे देखकर उसे प्रसन्नता हुई। और इससे अधिक प्रसन्नता इस बात की कि उसे उसका इतना ध्यान था कि वह आया; कितना ध्यान रखता है!

उसने अपनी उँगलियों से अपनी आँखों के पास का पसीना पोंछा और फिर जल्दी से अपने काम में लीन हो गई। अनु ने अतिथि का बड़े उत्साह से स्वागत किया। "यह सारी ज़मीन हमारी है," अनु ने अपने हाथ के संकेत से विस्तार का परिचय दिया, "वह लोग जो वहाँ काम कर रहे हैं वह हमारे आदमी हैं, किसान हैं। जानते हो, यह चावल सबसे बढ़िया किस्म का चावल है ? स्वर्णमुखी चावल। बाबा इसका बीज ब्रुश—मुर्श···" वह उस अपरिचित नाम का उच्चारण करने का असफल प्रयत्न कर रहा था।

उन दोनों अल्पवयस्क कृषकों के बीच खड़े होकर किशोर ने एक

अनुभवी के ढंग से कहा, "अच्छा चावल है। ऊपर से ही मालूम पड़ता है कि इसके अन्दर कैसा अन्न होगा। इसकी शक्ल···इसका रंग···"

अनु को बहुत आश्चर्य हुआ—"तो सब धान एक ही रंग का नहीं होता क्या ? महीन, मामूली, मोटा···?"

"परखने वाले की नजर की बात है," किशोर ने गम्भीर होकर उत्तर दिया।

कजली मुस्करा दी। वह अपनी ज़बान न रोक सकी—

"कपड़ा-मिल में चावल बहुत पैदा होता है, महीन स्वर्णमुखी चावल। तू नहीं जानता, अनु ?"

"मेरे दादा किसान थे," किशोर की भूरी आँखें गर्व से चमक उठीं।

"तब तो इनको चावल के बारे में सब-कुछ मालूम होगा अनु," कजली ने फिर मज़ाक करते हुए कहा। "अपने दादा के होनहार पोते हैं न !" उसका मुँह व्यंग्य के कारण कुछ टेढ़ा हो गया था।

उत्तर में किशोर केवल मुस्करा दिया। उसे अपनी सफलता पर सन्तोष था कि उसने अपनी होने वाली वधू को लाज छोड़कर खूब बातें करने पर विवश कर दिया था। उसने हँसिया की तरफ हाथ बढ़ाया—"भाई, ज़रा देना मैं भी तो देखूँ दो-तीन हाथ—शुश ! शुश !"

"दीदी, वह तुम्हारा हँसिया माँग रहे हैं···" अनु ने चिन्तित होकर चिल्लाकर कहा। वह अपना हँसिया मज़बूती से पकड़े था और फसल काट रहा था। वह शहर के जेलखाने से आये हुए इस आदमी को अपनी कुशलता दिखाने का यह अवसर कैसे छोड़ देता ?

कजली ने अपना हँसिया दे दिया और किशोर के हाथों में उसे तेज़ी से चलते हुए देखती रही। वह घबराकर चिल्ला उठी, "देखो, बचाकर। तुम तो अपना पाँव ही काट लोगे।"

अनु खिलखिलाकर हँस पड़ा—"इनको फसल काटना भी नहीं

आता। हँसिया भी तो ठीक से नहीं पकड़ रखा है। देखो न दीदी !" अनु बहुत खुश होकर चिल्ला रहा था।

"अनु ! उल्लू !" कजली ने उसे डाटा, पर स्वयं उसकी आँखों में शरारत खेल रही थी।

किशोर रुक गया और अपना सिर खुजाने लगा। फिर सहसा हँसने लगा। "हाँ, ठीक ही तो कहता है," उसने सहर्ष स्वीकार किया। "मैं चावल के बारे में और फसल काटने के बारे में क्या जानूँ ? मैं मशीनों के बारे में जानता हूँ। मैं उन तकलियों को जानता हूँ जिन पर सूत काता जाता है; उन करघों के बारे में जानता हूँ जिन पर कपड़ा बुना जाता है। शीघ्र ही मैं धरती के बारे में भी जान जाऊँगा, किस धरती में कितना पैदा होता है। तुम दोनों मुझे सिखाने के लिए हो न दो अनुभवी शिक्षक—एक इस तरफ और एक उस तरफ।" वह एक उँगली से अनु की ओर संकेत कर रहा था और दूसरी से कजली की ओर।

"देखो, ऐसे काटा जाता है," अनु को शिक्षक का नया काम पसन्द आ गया था और वह बड़े गर्व और स्फूर्ति से हँसिया चला रहा था, "कितनी सीधी-सी बात है। केवल अभ्यास की ज़रूरत है। बस थोड़ा-सा अभ्यास होना चाहिए।"

किशोर थोड़ी देर देखता रहा और फिर उसने स्वयं काटने का प्रयत्न किया। धान के पौधों का ढेर उसके पाँव के पास इकट्ठा होता जा रहा था।

कजली ने देखा कि खेत के दूसरे सिरे पर जो किसान काम कर रहे हैं, वह सब इधर देख रहे हैं। उनको आश्चर्य हो रहा था कि यह नया आदमी कौन है। कजली ने कोई ध्यान नहीं दिया। वह उस अजनबी को तकती रही। उसे यह किसानों का काम कैसा लगता होगा, वह सोच रही थी। वहाँ तो मिल में मशीनें दानवों की तरह काम करती हैं। इन लोगों को तो बस मशीनों में तेल या कोयला पहुँचाकर उनको

सन्तुष्ट रखना पड़ता है। धूप से सुरक्षित, आराम से बैठे काम करते रहो। तभी तो मिल में काम करने वाली औरतें, इन लोगों की बेटियाँ और पत्नियाँ, बालों में रंग-बिरंगे फीते डालकर बनी-ठनी रहती हैं।

'मूर्ख होती हैं वह,' वह अपने-आप से कह रही थी। पर वह चाहती थी कि किशोर के कान में भी यह शब्द पड़ जायं। "निरी मूर्ख होती हैं कपड़ा-मिलों में काम करने वाली औरतें।"

"क्यों, मूर्ख क्यों होती हैं ?" उसने उसकी तरफ मुस्कराकर देखते हुए पूछा।

"छिः ! वह बालों में नीले रेशमी फीते डालती हैं। नया फैशन है। फीते बच्चों के बालों में डाले जाते हैं, न कि बड़े लोगों के, वह क्या इतना भी नहीं जानतीं, तुम्हीं बताओ ?" और उसकी आँखें उत्सुकता से उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगीं।

किशोर उससे सहमत न था। उसे क्या मालूम था कि कजली के प्रश्न में कोई गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है। उसने स्वयं देखा था कि 'मई-दिवस' के जुलूस में औरतें मर्दों के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर भाग ले रही थीं। औरतों ने जुलूस में जोशीले गीत भी गाए थे : 'बढ़ चलो मजूर वीर ! सब मज़दूर एक हो ! तुम्हारे पास अपनी दरिद्रता के अतिरिक्त खोने के लिए और क्या है ? भीख मत माँगो। अपनी माँगों के लिए लड़ो ! मज़दूरो, बढ़ चलो !'

उसने सुना और उसका चेहरा तमतमा उठा। मिल की औरतों के लिए उसके हृदय में कितनी प्रशंसा है। वह सचमुच उसके साथ की हैं और वह उनको पसन्द भी करता है; वास्तव में वह उन्हीं का है। यहाँ गाँव में तो वह एक परदेसी की तरह, एक यात्री की तरह आया है। मुझसे उसे क्या मतलब ? मैं तो उसके लिए केवल एक आश्चर्य की वस्तु हूँ, सहानुभूति और दया का पात्र, और कुछ भी नहीं—इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

उसने जल्दी-जल्दी साँस लेना आरम्भ किया और कुछ क्षण तक

कुछ भी न कह सकी। जब उसने फिर जबान खोली तो उसके भाव में तिरस्कार की कटुता थी—

"तुम लोगों को जागृत करने की ज़रूरत है और यह काम औरतों को करना पड़ता है। ये मर्दों के लक्षण हैं? यहाँ गाँव में हमारे मर्द बूढ़े खूसटों की तरह पड़े सोते नहीं रहते कि उनको जगाने की ज़रूरत पड़े। हम देहाती मुँह फाड़-फाड़कर चिल्लाते नहीं कि, 'ए किसानो, जागो'," कजली ने अपनी आवाज़ और ऊँची करते हुए कहा, "तुम्हारे पास अपनी नींद के अतिरिक्त खोने के लिए और है भी क्या? कुछ नहीं, और कुछ नहीं है।" उसके होंठ बन्द हो गए थे पर वह एक क्षण के लिए फिर हिले—"बड़े मर्द बनते हैं!" और फिर बन्द हो गए।

किशोर हँसने लगा, पहले धीरे-धीरे और फिर खुलकर ज़ोर से।

"हमारे पास अपनी नींद के अतिरिक्त खोने के लिए और है भी क्या—कुछ नहीं, सचमुच कुछ नहीं!" उसने ऊँचे स्वर में दोहराया और न जाने क्यों उसे बड़ा आनन्द-सा हुआ। कोई कारण भी समझ में न आता था। वह इतना दिल खोलकर हँस रहा था, उसकी हँसी में हर्ष इतना स्पष्ट था कि उसको देखकर कजली का क्रोध खत्म हो गया। उन दोनों की आँखें चार हुईं और एक बार मिलने के बाद अलग होने की सुध ही न रही। उसकी नज़रों में इतना हर्ष था, इतनी उपासना थी कि वह शरम से गड़ गई और उसकी साँस रुक गई। उसका चेहरा लाल हो गया और वह आँखें इधर-उधर ताकने लगीं। वह बिलकुल मौन खड़ी ज़मीन को कुरेद रही थी।

उसने अपनी ठोड़ी को एक झटका दिया, जो किसी दृढ़ निश्चय का सूचक था।

"मेरा हँसिया दो; गप्पें लड़ाने का वक्त कहाँ है?" उसने हाथ बढ़ाते हुए कहा।

उसने कोई उत्तर न दिया और हँसिये को मज़बूती से पकड़े रहा।

"मेरा हँसिया?" उसने दृढ़तापूर्वक पूछा।

पर उसने सिर हिला दिया। वह झुका और बड़ी फुर्ती से हँसिये को चलाते हुए उसने कुछ धान के पौधे काट लिए और उनको झण्डे के समान ऊपर उठा लिया। वह जीवन की प्रगति देख रहा था। उसने सुनहरे धान के लहलहाते हुए खेतों पर नज़र दौड़ाई और उन लोगों को देखने लगा जो खेत काट रहे थे। उर्वरा भूमि की सुगन्ध उसकी साँस में बस गई। फिर उसकी आँखें आकर धरती की उस बेटी पर टिक गईं, जिसकी धरती का रंग-रूप था, जहाँ धरती का निखार था और जो धरती की तरह सम्पन्न थी।

अपने स्त्री-सहज स्वभाव के कारण कजली समझ गई कि वह क्या कल्पना कर रहा है। उसे ऐसा लगा कि उसका खून उसकी रगों में बहुत तेज़ी से प्रवाहित हो रहा है। "फसल जो काटने को है, उसका क्या होगा? यदि वर्षा आरम्भ हो गई तो?" उसके स्वर में विनती थी और वह आकाश की ओर देख रही थी, मानो सूरज की चमक में उसे घनघोर घटाएं छिपी हुई दिखाई दे रही थीं।

उत्तर में उसे जो शब्द मिले वह दृढ़ थे, गम्भीर थे; पर साथ ही उन में एक मोह था।

"नहीं, यह नहीं हो सकता। अब तुम कभी फसल नहीं काटोगी। जब तक मेरी भुजाओं में शक्ति है, मैं तुमको हँसिया न पकड़ने दूँगा। जब तक मेरे शरीर में दम है, मैं तुमको यह काम न करने दूँगा।"

नौ

एक समय वह भी था जब वह खिलखिलाकर हँस सकती थी; ज़रा-ज़रा-सी बात पर हँस पड़ती थी और इतना हँसती कि उसकी आँखों में आँसू आ जाते, पर उन पापियों ने उसके यौवनपूर्ण अल्हड़पन को कुचलकर रख दिया था। केवल उसके मुख पर ही नहीं उसकी आत्मा पर भी उदासीनता छाई रहती थी। इतने दिनों में किशोर ने तो यही देखा था। उनके विवाह के बाद से दो पूर्णिमाएं आईं और चली गईं। यदि कभी हँसी उसको आती भी थी तो केवल होंठों तक। कभी खुलकर न हँसती, घुटी हुई हँसी, जैसे कोई अज्ञात हाथ उसके गले को दबाये हुए हो।

पर सहसा यह क्या चमत्कार हुआ? उसके मुख से हँसी के फव्वारे छूटने लगे। वह अपने हाथों से मुँह को दबाकर हँसी रोकने का प्रयत्न करती, पर हँसी बाहर फूटी पड़ती थी। वह हँसते-हँसते बेबस हो जाती थी और उसकी आँखों में आँसू आ जाते थे।

उसकी पसलियों के नीचे रक्त का प्रवाह तेज़ हो जाता और उसे ऐसा लगता कि उसका हृदय एक भँवर में कागज़ की नाव की तरह हिचकोले खा रहा है और इस सबका कारण थी कजली की हँसी।

हुआ यह कि पिछले एक माह से किशोर चरखे पर सूत कात रहा था। वह रोज़ दो घंटे चरखा चलाता था, क्योंकि उसकी हार्दिक इच्छा

थी कि कजली, उसकी पत्नी, उसके हाथ के कते हुए सूत की साड़ी पहने, और वह अपनी इस इच्छा को पूरा करने की धुन में था। साड़ी बनकर तैयार हो गई थी; केवल जाकर उसे लाना था। वह और कजली उस दिन सूरज निकलते ही गाँव के छोर पर नदी के किनारे उस जुलाहे की झोंपड़ी में गये जिसने साड़ी बुनी थी। वह उस कोमल सफ़ेद साड़ी को लेकर लौट रहे थे। साड़ी बड़े सलीके से तह की हुई कजली के हाथ पर रखी हुई थी। किशोर कजली को वह साड़ी पहने हुए देखने के लिए पागल हो उठा; वह बिलकुल बच्चों की तरह हठ करने लगा कि वह उस साड़ी को उसी समय पहन ले ताकि वह उसे देखकर अपने नयनों को तृप्त कर सके। सड़क के किनारे ही बाँसों का एक झुण्ड था जिसकी आड़ में खड़ी होकर वह साड़ी बदल सकती थी। "ना ना," कजली लाज के मारे चिल्ला पड़ी पर उसने उससे याचना की, उसकी इतनी मिन्नतें कीं कि आखिरकार उसे मानना पड़ा। "अच्छा तो फिर तुम खड़े होकर देखते रहना, कोई आ न जाय और मुझे नंगा न देख ले?" और उसने अपने पुराने वस्त्र उतार दिए जो बिलकुल घिस गए थे। उसे साड़ी पहनते देखकर किशोर को ऐसा लगा कि उस नई, सफ़ेद, कोमल स्वच्छ साड़ी को उसके लचकदार सुडौल शरीर से प्रेम हो गया है। साड़ी पर चुन्नटें बड़ी सफाई से पड़ी हुई थीं, साड़ी का लाल किनारा उसके सिर पर माथे तक पड़ा हुआ था। किशोर ने जी भरकर उसको देखा।

पुराने बरगद के पास से होकर जब वे गाँव में पहुँचे तो किशोर ने कहा—"इसके आगे साटन और रेशम मात हैं। और शहर में लड़कियाँ जो रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहनती हैं वह भी इसके सामने फीकी मालूम पड़ती हैं। इस सफ़ेद साड़ी में तुम बिलकुल कमल के समान स्वच्छ लगती हो—सफ़ेद कमल, जिसके सामने सारे फूल हेच हैं।"

"ना," कजली ने भर्राए हुए स्वर से कहा। वह इस प्रशंसा से शरमा रही थी और उसकी समझ में न आ रहा था कि क्या कहे।

"जब मेरे पास पैसे होंगे तो तेरे लिए शहर से भी एक साड़ी ला दूँगा—मिल की बनी हुई महीन सूत की साड़ी। पर पैसों की क्या बात है ? हम किसी दिन भी शहर देखने चल सकते हैं। कैसी चौड़ी-चौड़ी सड़कें होती हैं वहाँ ! और रोशनियों का तो कोई ठिकाना ही नहीं है। एक-एक सड़क पर असंख्य रोशनियाँ। और हाँ, तेल के लैम्प नहीं, तेज़ प्रकाश वाली रोशनियाँ बिलकुल बिजली की तरह चमकती हुई। इतनी रोशनियाँ होती हैं कि रात को भी दिन मालूम होता है। और फिर वहाँ सिनेमा का खेल देखेंगे। मैं तुझे सिनेमा दिखाने ले जाऊँगा। बड़ा मज़ा आयगा, बस तू और मैं !"

"पर मुझे एक बात का डर लगता है," उसने कहा और उसकी आँखें चमकने लगीं।

"हाँ," उसने चिन्तित स्वर में पूछा।

"तुझे शहर ले जाते हुए मुझे डर लगता है। अगर तूने किसी शहर के रंगीले नौजवान को पसन्द कर लिया तो फिर मैं क्या करूँगा ?"

"यह कैसी बात करते हो ? क्या मेरा विवाह नहीं हो चुका है ? तुम्हीं बताओ।"

"विवाह होने से क्या होता है ? यह तो शहर में आए-दिन होता रहता है। सिनेमा के खेल में यही दिखाया जाता है, बिलकुल वैसा ही जैसा जीवन में होता है।"

उसकी त्यौरियों पर बल आ गए।

"तो मैं फिर सिनेमा कभी न देखूँगी," उसने क्रोध के आवेश में कहा, "सिनेमा बहुत बुरा है। झूठ है ! ऐसी बातें कभी नहीं हो सकतीं।" और उसने घृणा से अपनी नाक सिकोड़ ली।

किशोर ने अपना गला साफ किया, मानो वह कोई बहुत जोशीली बात कहने जा रहा हो—

"तो फिर इसका उल्टा समझ लो। अगर मैं शहर की किसी चुलबुली-सी लड़की को पसन्द कर लूँ तो ?"

कजली सन्न रह गई और उसको घूरती रह गई। उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें फैल गईं और फिर जो-कुछ हुआ वह बिलकुल अकस्मात् हुआ। "तुम ?" वह चिल्लाई और उसकी आँखें चमकने लगीं। उसकी आँखों में शरारत नाच रही थी। पहले वह धीरे-धीरे हँसती रही फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने फिर कहा, "तुम ?"

वह बिलकुल सकपका गया और अपना सिर खुजाने लगा। वह उसे कितनी अच्छी तरह जानती थी ! वह किसी और को पसन्द कर ले ? वह जिसकी आत्मा तक इस हँसने वाली लड़की की साड़ी के छोर से बँधी थी ! वह भी जी-भर के हँसना चाहता था।

परन्तु यदि इन शब्दों को तराजू में तोला जा सकता तो वह सोने से भी भारी होते। उनका वज़न बुद्धिमानी की बड़ी-बड़ी बातों से ज्यादा था। उन शब्दों ने कजली की उदास आत्मा को फिर प्रफुल्लित कर दिया था; उस पंजे को तोड़ दिया था जो उसके हृदय को जकड़े हुए था और उसका गला घोंटे दे रहा था। किशोर का जी चाहता था कि मारे खुशी के चिल्ला पड़े। पर वह चुपचाप चलता रहा और मन-ही-मन मुस्कराता रहा। और फिर सहसा अपने असीम हर्ष से प्रेरित होकर शहर के गीत के शब्द गुनगुनाने लगा—

"जानता हूँ मैं प्रिये, पहचानता भी हूँ !
भूख मिटती कब किसी की मधुर जीवन में,
इस अमिट-से तथ्य को अनुमानता भी हूँ !
जानता हूँ मैं प्रिये, पहचानता भी हूँ !"

"कौनसी भूख ?" कजली ने बीच में टोक दिया।

"नहीं, यह तो योंही बात कहने का तरीक़ा है। यह तो ग्रामोफ़ोन का गीत है।"

पर कजली ने एक क्षण सोचने के बाद इन शब्दों के गूढ़ अर्थ को समझने का प्रयत्न किया।

"स्त्री का विवाह हो जाने के बाद उसकी हर भूख मिट जाती है।

पर पुरुषों के साथ ऐसा नहीं होता, क्या ?" उसने बहुत ही धीमे स्वर में पूछा।

अब किशोर सोच में पड़ गया। रास्ता खेतों के बीच से होकर टेढ़ा-मेढ़ा जा रहा था। खेत फसल से लदे हुए थे और सूरज की धूप से पककर पौधे सुनहरे हो गए थे। उसने अपनी दृष्टि इधर-उधर दौड़ाई, फिर मुड़ा और बोला, "पुरुष को इस बात की भूख होती है कि उसके खेत में धान के पौधे बालों के बोझ से झुक जायं।" फिर इस विचार से दूसरे विचार ने जन्म लिया—"पुरुष को इस बात की भूख होती है कि उसके परिवार वालों में और उसकी जात-बिरादरी वालों में उसका सम्मान हो। पुरुष को····" पर कजली ने फिर बीच में टोक दिया।

"विवाह हो जाने के बाद तो केवल एक बात की भूख रह जाती है; वह होती है घर-गृहस्थी की भूख, और कोई नहीं। उसकी और छोटी-छोटी भूखें इस एक बड़ी भूख का ही भाग होती हैं। वह सब इस भूख के साथ इसी तरह जुड़ी होती हैं जैसे गाड़ी के पहिए में आरे। स्त्री की भूख एक बड़े पहिए के समान होती है। पुरुष का स्थान उसमें एक आरे के बराबर होता है—नहीं शायद धुरी के समान। और···"

इसके आगे सुनने की प्रतीक्षा में उसने प्रश्न किया, "और ?"

पर कजली एक शब्द भी कहे बग़ैर आगे चलती चली गई—धीरे-धीरे मन-ही-मन मुस्कराती, खोई-खोई-सी जैसे कोई स्वप्न देख रही हो।

उनके जीवन में ऐसे क्षण अक्सर आते थे जब वह उससे बहुत दूर मालूम होने लगती और ऐसी दशा में जब वह अपने-आप में खो जाती तो किशोर कभी उसको नहीं छोड़ता था। वह केवल उसके मुख को देखकर सन्तोष कर लेता, उसकी आँखें बचाकर जी भरकर देखता। हर स्त्री की अपनी विचित्रताएं होती हैं; नहीं तो वह स्त्री ही क्या ?

"कु-हू !" किसी पेड़ पर बैठी हुई कोयल बोल उठी। पक्षी के स्वर में इतना हर्ष था, इतनी गम्भीरता और इतनी चुभन थी कि उसकी

कुहू-कुहू एक मीठे-मीठे दर्द के समान मालूम हो रही थी—एक ऐसा दर्द, जो रह-रहकर उठता था।

"कु-हू !" एक प्रतिध्वनि आई और उसे सुनकर किशोर रुक गया और वहीं खड़ा-का-खड़ा रह गया। वह उस सुरीले स्वर पर उस संगीत-मय ध्वनि से आश्चर्यचकित रह गया। उसकी वह हँसी, फिर यह कोयल की बोली ! किशोर धीरे-धीरे उस बालिका से, अपनी पत्नी से परिचित होता जा रहा था।

"क्यों, रुक क्यों गए ?" कजली ने मुड़कर पूछा।

उसने कुछ कहा नहीं, केवल उसकी तरफ आँखें गड़ाकर देखता रहा। फिर वह एक क़दम आगे बढ़ा और बड़े प्यार से अपना हाथ उसके कोमल गले पर फेरने लगा।

"क्यों," उसने पूछा और फिर उसकी उँगलियों के कोमल स्पर्श के उल्लास में सहसा उसकी आवाज़ जैसे खो गई। उसके हृदय में भावों का तूफान आ रहा था। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

"तेरा मन भी कोयल की तरह है, कजली····!" ये शब्द बरूनी गाँव के किसी युवक ने नहीं कहे थे। वह अनजाने में उन सिनेमा-चित्रों के हीरो की तरह बोल रहा था जिनसे वह अच्छी तरह परिचित हो चुका था।

"सुनो, अगर लोग कहेंगे तो क्या हुआ ?"

"यहाँ किसे चिन्ता है ?" फिर भी वह घबरा-घबराकर इधर-उधर देख रहा था और उसने देखा कि कोई पचास गज दूर, जहाँ कई पगडंडियाँ आकर मिलती थीं, खेतों में से होकर कोई आदमी जा रहा है। एक-दूसरे के आलिंगन में जकड़े हुए अब तक उनका ध्यान भी उस आदमी की ओर नहीं गया था। "ग़ज़ब हो गया," किशोर ने निराशा से कहा और अलग हट गया।

घबराकर वह मुड़ी। उसने आँखों पर ज़ोर देकर भौंहों को सिकोड़-कर उस राही को पहचानने का प्रयत्न किया। जब वह सड़क के पास

वाले खेत से होकर गुज़रा तो उसके मुँह से अनायास निकल गया, "हाँ, वही है।"

"वही ? वही कौन ?" उसकी साँस तेज हो गई थी; उसके प्रश्न में उत्सुकता थी। किशोर को ऐसा लगा कि उसका दिल बैठा जा रहा है। "तुम शहर के लोगों को कैसे जानती हो ?" उसने रुखाई से पूछा।

"शी—शी," कजली ने अपने होंठों पर उँगली रखकर उसे चेतावनी दी, "बाबू के पोते हैं।"

"पोते ?"

पर कजली ने फिर मना किया—"शी—शी !" किशोर की चिन्ता दूर हो गई थी। वह चुपचाप बड़ी दिलचस्पी से सामने देख रहा था।

राही निकट आ गया और बोला, "मैं साधु बाबा का घर ढूँढ़ रहा हूँ। तीन बरस से मैं इधर गाँव की ओर नहीं आया; रास्ता याद नहीं रहा।"

कजली के हृदय में जैसे किसी ने डंक मार दिया। तो क्या वह उसे बिलकुल भूल गया ? उसने अपना सिर झुका लिया और किशोर उसे प्यार-भरी दृष्टि से आँखें बचाकर देखता रहा। बेचारी कजली ! कितने गर्व से अनेकों बार उसने अपने दादू के पोते के बारे में उससे बात की थी और वह उसे पहचानता तक नहीं था।

"आइए, हमारे साथ," किशोर ने कहा, "हम भी साधु बाबा के यहाँ जा रहे हैं। वह तो नहीं हैं, उनको तो वह पापी पकड़कर ले गए ! आपको तो मालूम होगा ?"

हाँ, उसे मालूम था। राष्ट्रीय आन्दोलन, जो इस समय गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया था और जिसके विरुद्ध घोर दमन हो रहा था, हर प्रान्त में गुप्त रूप से ऐसे लोगों की सूची तैयार कर रहा था जो शासन के आतंक का शिकार हुए थे। राहुल आजकल एक कमेटी में काम कर रहा था, जिसके जिम्मे यह काम था कि वह कैदियों का पता

रखे और जिनके ऊपर अभियोग लगाया जाय उनकी पैरवी का प्रबन्ध करे। अल्पवयस्क बालकों को, जो अभी किशोरावस्था में ही थे, फाँसी की सजाएं दी जा रही थीं। यदि राहुल का यह काम न होता तो वह बहुत पहले ही बरूनी आता।

"यह उनकी बेटी है," किशोर ने उत्कंठा से कहा। यदि अब भी वह उसे नहीं पहचानेगा तो कजली को कितना दुःख होगा।

अरे हाँ, कजली! जब उसने पिछली बार उसे देखा था तब वह बिलकुल बच्ची थी। वह इतने दिनों में इतनी बड़ी हो गई थी। उसने तो देखते ही पहचान लिया था, पर उसे पूरी तरह विश्वास नहीं था।

"कजली, तुम्हारा ब्याह हो गया?" उसकी माँग में सिंदूर देखकर उसने पूछा। उसके स्वर में स्नेह था, वह मुस्करा रहा था—"यह तुम्हारे पति हैं?"

उसका चेहरा खिल उठा। यह कैसे सम्भव था कि वह उसे भूल जाय? उसे उसका नाम तक याद था। वह भी उसे देखकर मुस्करा दी और आँखें झुकाए शरमाई हुई उनके साथ चल दी।

"अभी दो महीने ही तो हुए हैं," किशोर ने कहा और पुलकित हो उठा, "अभी केवल दो माह ही तो हुए हैं।" और सहसा उसकी आँखें अतीत के क्षणों में खो गईं। "जेलखाने में हमारा विवाह हुआ था," उसने देखा कि राहुल आश्चर्य से उसे घूर रहा है। उसने मुस्कराकर समझाने का प्रयत्न किया, "नहीं, जेलखाने में नहीं हुआ था—वह तो बात कहने का ढंग था। मैं और बाबा जेल में एक ही कोठरी में रहते थे। बाबा को न जाने क्यों मैं पसन्द आ गया और उन्होंने मुझे अपना दामाद बनाने की इच्छा प्रकट की। मैंने बातों-ही-बातों में बहुत कुछ मालूम कर लिया, यहाँ तक कि मेरे दिमाग में उनकी पुत्री का चित्र बिलकुल साफ-साफ अंकित हो गया। जब कभी मैं थक जाता, या घर की याद बहुत सताती तो मैं अपनी आँखें बन्द कर लेता और मेरी आँखों के सामने इसका चित्र घूम जाता—बिलकुल जीता-जागता चित्र।

मैं देखता कि वह आँगन में बैठी धान साफ कर रही है। मुझे उसकी आवाज़ तक सुनाई देती—'अनु ! भैया अनु !' कभी मैं देखता कि वह गाय की सानी लेकर जा रही है और आवाज़ दे रही है, 'मंगला !' जब मैं जेल से छूटकर बरूनी आया और मेरी दृष्टि इस पर पड़ी तो मुझे ऐसा लगा कि मैं इसे पहले से जानता हूँ। बिलकुल वही रूप था जो मेरे मस्तिष्क पर अंकित था—वही बड़ी-बड़ी आँखें, वही गोरा रंग, वही छोटा कद। इसीलिए मैं हमेशा कहता हूँ कि हमारा दोनों का विवाह जेल में हुआ था। यद्यपि यह बात सच नहीं है, पर योंही बात कहने का ढंग है।"

वह इसी तरह बोलता रहा, मानो वह ज़ोर-ज़ोर से अपने-आप से बातें कर रहा हो। उसने मुड़कर कजली की तरफ देखा। कजली की आँखें उसके प्रति गर्व से चमक रही थीं और उस क्षण में दोनों के मस्तिष्क में एक साथ एक ही विचार आया—वह रंगीन चित्रों का उपहार ! वह अपने साथ शहर से तीन चित्र लाया था। वह जानता था कि उसे दीवार पर चित्र लगाने से कितना प्रेम है। बाबा उससे यह बात बताना नहीं भूले थे। क्षण-भर में कजली ने अपनी आँखें झुका लीं और सहसा उसके चेहरे पर उदासी के बादल छा गए। उसके बाबा को, जो सच्चरित्रता की साकार मूर्ति थे, उन पापियों ने जेलखाने में साधारण अपराधियों की तरह बन्द कर रखा था। और दादू और कनु दादा ?

"क्या वह दादू की वृद्धावस्था का खयाल करके भी उनको नहीं छोड़ेंगे ?" उसके हृदय में छिपी हुई वेदना के कारण उसका गला रुँधा हुआ था। दादू के लिए उसका जी कितना तड़पता था; उसे कितनी वेदना थी !

"दादू को छोड़ेंगे ?" राहुल ने अपना सिर हिला दिया—"वह दादू को तो बंगाल से बाहर बहुत दूर ले गए हैं; देहरादून ले जाकर रखा है, यहाँ से एक हजार मील दूर।" थोड़ी देर तक वह तीनों चुपचाप

चलते रहे और फिर राहुल ने कहा—"मालूम होता है इस गाँव ने बहुत दुःख सहे हैं।"

किशोर ने उत्तर दिया—"देवता ने तो बरूनी पर अहिंसा का जादू फेर दिया है। लोगों ने क्रोध के आवेश में एक डाकखाने को आग लगा दी और बाद में जब उनको देवता की सीख याद आई तो उनका क्रोध शान्त हो गया। लेकिन पास वाले एक गाँव के लोगों ने शैतानों का अड्डा नष्ट कर दिया। उन्होंने एक पुलिस-थाने को आग लगा दी। कुछ ही क्षण में लारियों में भर-भरकर बन्दूकें और मशीनगनें लिये हुए फ़ौज के सिपाही आ गए और गाँव वालों पर गोलियाँ बरसाने लगे। गोलियों की बौछारें होने लगीं। हमारे कई लोग मारे गए। बहुत-से तो इतनी बुरी तरह घायल हुए कि अब जिन्दगी-भर के लिए अपाहिज हो गए। फिर उन पापियों ने घरों को जलाना आरम्भ किया। भूखे शेरों की तरह वह सारे गाँव में गुर्राते फिर रहे थे। उन्होंने निर्दय डाकुओं की तरह गाँव को लूटा; हत्यारे पागलों की तरह उन्होंने अपने अपवित्र हाथों से हमारी औरतों को अपमानित किया···" क्रोध और लज्जा से उसका सिर झुक गया।

"वह तो जापानियों से भी बढ़कर निकले," राहुल चीख उठा। उसका हृदय क्रोध के कारण पीड़ित हो उठा—"पापी! इस ग़द्दार सरकार के लिए इससे उचित कोई नाम नहीं हो सकता—पापी!"

"उन्होंने एक दस बरस के बालक को गोली मार दी। उसका दोष केवल यह था कि वह 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगा रहा था। उन्होंने एक किसान को उसकी बीवी और बच्चों के सामने इतना मारा कि वह मर गया—" इतना कहते-कहते किशोर का गला भर आया।

"क्या यह लाल पगड़ी वाले भी हमारे लोग नहीं हैं—बिलकुल हमारे-जैसे लोग? केवल उन्होंने नीली वर्दी पहन ली है," कजली ने आश्चर्य से कहा, "क्या उनके हमारी तरह माँ-बहनें नहीं हैं?" जब

उसे किसी बात पर आश्चर्य होता था तो उसके होंठ एक विचित्र ढंग से खुल जाते थे।

"इन पापियों की नौकरी करके उनका अपवित्र नमक खाकर, मनुष्य की आत्मा बिक जाती है। रोटी के दो टुकड़ों की खातिर ये लोग अपनी माँएं-बहनें सब-कुछ बेच देते हैं," किशोर ने अपना मुँह दोनों हाथों से मलते हुए कहा। उसका चेहरा गर्म हो गया था और क्रोध के कारण उसके रक्त का प्रवाह तीव्र होकर अन्दर से उसे कोंच रहा था।

"कु-हू!" पेड़ पर से कोयल ने फिर अपना सुरीला स्वर सुनाया। अन्धकारमय, उदासीन जगत् पर जैसे हर्ष का अमृत बरस गया; पीड़ित आत्माओं को शान्ति मिल गई। "कु-हू!"

किशोर ने जल्दी से कजली की तरफ़ आशा-भरे नेत्रों से देखा, पर वह चुपके से मुस्करा दी और उसके होंठों से कोई शब्द नहीं निकला। फिर भी किशोर को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह अपने मन में 'कु-हू' का बोल दुहरा रही है और उसके हृदय का यह निःशब्द संगीत उसके कानों पर हल्के-हल्के सुरीले थपेड़े लगा रहा था। वह बेचैन हो उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसका हृदय किसी प्रबल इच्छा के कारण तड़प उठा है। उसके साथ एकान्त में रहने की इच्छा! बस वह और कजली और कोई नहीं, कजली और वह, वह और उसकी पत्नी···

घर से कोई सौ गज़ दूर कजली अपने-आपको न रोक सकी। उसने अपने क़दम तेज़ किए और दौड़ने लगी। अपने भावों के उद्वेग में उसे अपने नव-विवाहिता वधू होने का भी ध्यान नहीं रहा। उसके कानों में उन दोनों के हँसने की आवाज़ आ रही थी। वह शरमा तो गई पर अपनी धुन में मस्त किसी बात की ओर ध्यान दिये बग़ैर नंगे पाँव दौड़ती रही। उसकी नई साड़ी लहरा रही थी और उसके कूल्हे मटक रहे थे। दो मास के विवाहित जीवन ने उनको सुडौल बना दिया था और वह अब बालिका नहीं पूर्णतः नारी लगने लगी थी।

यह सब देखकर राहुल आज कितना निश्चिन्त हो गया था ! उसके बाबा को जेलखाने में इन निस्सहाय दुखिया लोगों की कितनी चिन्ता थी, जिनको वह अपने सम्बन्धियों से भी निकट समझता था, जो वास्तव में उसके अपने लोग थे। लड़की का विवाह हो गया था। अनेक दुःखों के अन्धकार में उसकी खुशी एक रत्न की ज्योति के समान थी। किशोर घर की देख-भाल करेगा। साधु बाबा ने अपनी बेटी के लिए अच्छा वर चुना था। दादू के हृदय को भी शान्ति मिलेगी।

दौड़ने के कारण हाँफते हुए कजली ने जल्दी से जाकर माँ से आगन्तुक के आने की सूचना दी। राहुल छोटे-से दरवाजे में से सिर झुकाकर घर में प्रवेश कर ही रहा था कि इतने में माँ भी आँगन में आती दिखाई दी।

"तुम्हारे बाबा तो अच्छे हैं ? और माँ ?" माँ ने भाव दिखाते हुए पूछा, "बहू-माँ और बच्चा कैसे हैं ?"

"हाँ माँ, सब मजे में हैं।"

माँ ! यह शब्द उसके होंठों से अनायास ही निकल गया था। उसे बहुत खुशी हुई कि उसने अपने वर्ग के झूठे अभिमान को त्यागकर एक साधारण किसान-स्त्री को 'माँ' कहकर पुकारा। बंगाल के गाँव की इस स्त्री में वह कौनसी ऐसी बात थी जो और स्त्रियों में नहीं होती, जिसने उसे 'माँ' कहकर पुकारने पर विवश किया ?

राहुल की सहृदयता के कारण माँ की आँखों में आँसू छलक आए।

"बेटा, अपने बच्चे का नाम क्या रखा है तुमने ?"

वह हँसने लगा। उसके होंठों पर खुशी नाच रही थी। "कोई नाम अभी तक नहीं मिला; बहुत दिन से ढूँढ़ रहे हैं। बच्चे का नाम रखना इतना आसान नहीं। अभी तो बस खुक्खू कहते हैं," उसने अपने जूते उतारकर नंगे-पाँव भीतर आते हुए कहा।

माँ ने सिर हिलाया। "कनु, अनु, कजली, सबके नाम देवता ने रखे थे। सब बच्चे उनसे कितना प्यार करते थे; एक दिन के लिए भी

उनसे अलग न हो सकते थे।" उसकी आँखें फिर डबडबा आईं— "हमारे घर नष्ट हो गए। हमारा जीवन बरबाद हो गया। एक जमाने में हम भी सुख से जीवन बिताते थे। वह देवता को पकड़ ले गए और कनु को और उसके बाबा को भी। कौन जाने कब यह लोग लौटकर आयंगे, कब हमारा उजड़ा घर फिर बसेगा।" उसने अपने हाथों से आँसू पोंछ डाले।

राहुल उसको धीरज बँधाने लगा—"माँ, जब लड़ाई खत्म हो जायगी, सब लोग वापस आ जायंगे। घबराने की ज़रूरत नहीं। वे राजनीतिक बन्दी हैं, वह स्वतन्त्र भारत के सैनिक हैं। देश-भर के लोग उनसे प्यार करते हैं। उनका नाम इतिहास में अमर रहेगा।"

पर अभी तो वे जेलों में बन्द थे—साठ हज़ार मर्द-औरतें, जिनमें अधिकतर किसान थे। लगभग एक हज़ार लोग मारे गए थे और इसके दुगुने के लगभग घायल हुए थे। बहुत-से लोगों को मुकदमे के ढोंग के बाद फाँसी पर चढ़ा दिया गया था। छोटे-छोटे किसान बालक मरते समय तक 'स्वतन्त्रता की जय हो' और 'बन्दे मातरम्' के नारे लगाते हुए फाँसी पर चढ़ गए थे। एक वर्ष पहले किसी को कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि आम जनता का यह संघर्ष उनकी गुलामी की जंजीरों को तोड़ देगा। यह युग का बहुत बड़ा चमत्कार था। इतिहास कितनी तीव्र गति से आगे बढ़ रहा था। इतिहास की गति को वर्षों में नहीं नापा जा सकता। इतिहास में ऐसे दिन भी आते हैं जो दशाब्दियों से ज्यादा लम्बे होते हैं। राहुल के दिमाग में यह विचार घूम रहे थे।

कजली रसोई से बाहर आई। उसके हाथ में पानी की बाल्टी थी। उसने घुटनों के बल बैठकर राहुल के धूल से भरे हुए पाँवों को धोया। राहुल मुस्करा दिया। उसे बीते दिनों की कोई घटना याद आ गई।

"कजली को कठिन परीक्षा की आग में होकर गुजरना होगा," उसने बनावटी गम्भीरता से कहा।

उसने ऊपर देखा। उसकी प्रश्नसूचक आँखों में उत्सुकता झलक रही थी।

"आज मेरे लिए बहुत बढ़िया खाना पकाना पड़ेगा," उसने आँखें झुकाकर कजली को देखा, "कजली, तुम कौनसी चीज़ सबसे अच्छी बनाती हो ?"

"कद्दू की तरकारी," उसने झट से उत्तर दिया और फौरन ही शरमाकर अपना सिर झुका लिया। किसानों का भोजन, कद्दू की तरकारी। वह सोचने लगी राहुल को शहर के भोजन की आदत है—मछली, गोश्त, चिड़ियाँ आदि खाने की। वह अपने मन में हँसता होगा। उसे उन सैकड़ों भोजनों की याद आ गई जिसका वर्णन किशोर ने किया था।

"कद्दू की तरकारी यदि अच्छी बनी हो तो उससे स्वादिष्ट और क्या चीज़ हो सकती है ? तुमको कोई तकलीफ़ तो नहीं होगी ? तुम्हारे छप्पर पर कौनसी बेल लगी है ?"

"हमारे यहाँ एक इतना बड़ा कद्दू था कि मैं उसे ऊपर से अकेले उतार भी न सकती थी," कजली ने उत्सुकता से जल्दी-जल्दी कहना आरम्भ किया।

राहुल ने कहा, "मुझे तो कद्दू का नाम सुनकर भूख लगने लगी। मुझे तो अभी से उसकी सुगन्ध भी आने लगी।" उसने ऐसा मुँह बनाया, मानो उसे सचमुच सुगन्ध आ रही हो।

"कजली, जल्दी कर बेटा," माँ ने कहा और वह शहर से आये हुए अतिथि को निहारने लगी। उसकी सदा उदास रहने वाली आँखों में ममता मुस्करा रही थी।

कजली जितनी देर तक प्रतिष्ठित अतिथि के पाँवों पर पानी डालकर उनको मल-मलकर धोती रही और बाद में झाड़न से उनको सुखाया, किशोर तब तक उसको ताकता रहा। वह अपने होंठों को बन्द किये हुए इस चिर-स्थापित रीति को देख रहा था। उसको ईर्ष्या-सी हो रही थी। उसके चौड़े माथे पर बल पड़ गए। क्या कजली ने उसके पाँव भी

कभी इस तरह धोए थे ? कभी नहीं। कितने चाव से वह अपने भाई के पैर धो रही थी ! अगर किशोर अपने पाँव धोने के लिए कहता तो वह इनकार कर देती। कम-से-कम एक बार जब उसने कहा था तब तो उसने यही उत्तर दिया था—"क्यों, तुम खुद मेरे पाँव धोओ।" परन्तु जब उसने बात रखने के लिए उसके पाँव की तरफ हाथ बढ़ाया था तो वह छटककर पीछे हट गई थी, मानो किसी ने डंक मार दिया हो और फौरन घुटनों पर गिर कर उसने अपना कोमल मुख उसके धूल-भरे पाँवों पर रख दिया था और रो-रोकर कहा था, "तुम इसे मजाक समझते हो ? तुमको इसका ध्यान नहीं कि मुझे कितना पाप लगेगा ? क्या तुम्हारा हृदय बिलकुल पत्थर का है ?" और उसने सिर उसके पाँव पर से उठाकर आँसुओं से भीगे हुए नेत्रों से उसे देखा था। उसके सारे चेहरे पर उसके पैरों की धूल लगी हुई थी।

ऐसी ही थी कजली ! उसका स्वभाव भी विचित्र था। यदि किशोर को उसके पाँव पर लगी हुई धूल अपने हाथ से धोने का अवसर मिलता तो वह अपने को बहुत भाग्यवान समझता; उसे बड़ी खुशी होती।

राहुल कहने लगा—"अच्छा तुम कद्दू की तरकारी बनाओ मैं इतनी देर में जाकर गाँव वालों से बातें करता हूँ, जिन्होंने इतनी बहादुरी से उन अत्याचारियों का मुकाबला किया। गाँव में थोड़े-बहुत जो लोग बचे हैं उनसे मिलकर आता हूँ। किशोर मुझे ले जाकर सबसे मिला लायगा। आओ भाई चलें।"

भाई ! उसे अपने व्यवहार पर आश्चर्य हो रहा था। क्या शहर में वह मिल में काम करने वाले किसी मजदूर को भाई कहकर पुकार सकता था। किसी सभा में मंच पर से उनको "मजदूर भाइयो" कहकर सम्बोधित करना आसान था, क्योंकि उस समय उस शब्द का कोई वास्तविक महत्त्व नहीं होता, उस सयय उसमें कोई सच्ची भावना नहीं होती। तीव्र-से-तीव्र समाजवादी विचारों के होते हुए भी कभी

किसी व्यक्तिगत मजदूर को 'भाई' कहने की उत्कट भावना उत्पन्न नहीं होती। पर यहाँ गाँव में आकर बिना किसी कठिनाई के शहर के बुद्धिजीवियों वाला झूठा अभिमान दूर हो जाता है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि हम भी धरती के इन बेटों की तरह उसी मिट्टी से जन्मे हैं। यहाँ आकर जीवन की झूठी दिखावटों की अपेक्षा जीवन की वास्तविकता का महत्त्व बढ़ जाता है।

"चलो भाई, जल्दी करो, क्योंकि शाम से पहले ही मुझे कलकत्ता वापस जाने के लिए गाड़ी पकड़नी है।"

एक क्षण के लिए उसकी आँखों के सामने एक अपशकुन के रूप में एक दृश्य घूम गया, जिसका कोई भी कारण उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसको ऐसा लगा कि जैसे स्टेशन की मेहराव पर फैली हुई माधवी-लता में सीपी-जैसे सफेद फूल मुरझा गए हैं, और उसमें एक भी पत्ता बाकी नहीं रह गया है। ऐसा मालूम होता था कि माधवी-लता मर गई है।

× × ×

तो उस बनिए की बात सच निकली!

"सामूहिक जुरमाने का भूत हमारे सिर पर मँडरा रहा है। भाई, गवर्नमेण्ट कोई हम किसानों की तरह गठिया की रोगी नहीं है। गवर्नमेण्ट हाथ-पर-हाथ धरे बैठी मक्खी नहीं मारती रहती; समझे भाई! सरकार नया डाक-घर बनवा रही है। उसके लिए पैसे कहाँ से आयंगे? तुम लोगों से वसूल किया जायगा—तुम ही लोगों से जिन्होंने वह पुराना सड़ा हुआ झोंपड़ा जलाया था। जिसके पास जमीन है उसे अपनी जमीन के हिसाब से जुरमाना देना पड़ेगा। हर बीघे के लिए रकम नियत कर दी गई है और हमारे-ऐसे लोग जिनके पास जमीन नहीं है, बस खाली एक दूकान है, उनसे भी जुरमाना वसूल किया जायगा। सुना भैया! और यह हुक्म आया है कि जो-कोई जुरमाना अदा नहीं करेगा उसका बर्तन-भाँडा कुर्क करके नीलाम करवा दिया जायगा। भैया,

अपनी अक्ल पर जोर दो तो तुम्हारी समझ में आयगी यह बात। जाड़े वाली फसल काटी जा चुकी है। धरती माता ने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की है, फसल अच्छी हुई है। यह पापी सरकार तुम्हारी सारी फसल पर कब्जा कर लेगी और बाजार में ले जाकर मिट्टी के मोल बेच देगी; मिट्टी के मोल, समझे ? इससे पहले ही अगर तुम अपने-आप बेच दोगे तो फायदे में रहोगे। खतरा बहुत तेजी से बढ़ता आ रहा है। अनाज बेच डालो और पैसा अपने पास रख लो। जुरमाना दो चाहे न दो, वह तुम जानो तुम्हारा काम जाने, मुझे इससे मतलब नहीं। मैं तो बस इतनी-सी बात कहता हूँ कि अपनी फसल बेचकर पैसे ले लो। पैसा तो छिपा कर भी रख सकते हो, पर फसल कहाँ छिपाओगे।"

किसानों ने पहले तो उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। सामूहिक जुरमाना ! क्या कोई अन्धेर है ? क्या इस सरकार के अत्याचार का कोई अन्त नहीं है ? किसानों को किसी प्रकार विश्वास नहीं आता था, पर वह अपने मन में जानते थे कि बात सच है।

और फिर तो जुरमाना वसूल करने वाला अफसर भी आ धमका। उसके पीछे-पीछे छः पुलिस के सिपाही थे; एक डोंडी पीटने वाला भी था, जो सारे गाँव में चारों दिशाओं में जुरमाने की मनहूस खबर सुना रहा था।

किशोर गाँव के बाहर जंगल में कजली के लिए कुकुरमुत्ते बटोर रहा था। विचित्र काम था ! कजली जब सुनेगी तो खूब हँसेगी; कहेगी कैसे मर्द हो अपनी बेवकूफ-सी बीवी के लिए कुकुरमुत्ते ढूँढ़ते फिरते हो। उसको भी अजीब-अजीब बातें सूझती रहती हैं और तुम भी उनके चक्कर में मारे-मारे फिरते हो। यह भी कोई मर्दों की-सी बात है ! खूब हँसेगी कजली।

हँसने दो, क्या हुआ ? जब से उसके पेट में बच्चा आया था और जैसे-जैसे वह बढ़ता गया था कजली ने चावल खाना छोड़ दिया था और अजीब-अजीब चीजें खाने की इच्छा प्रकट की थी—कमल के बीज, बाँस

की जड़, कुकुरमुत्ते और इसी प्रकार की अनेकों चीजें। गर्भवती स्त्री की इच्छाएं भी अनोखी होती हैं, यह तो प्रकृति का नियम है। कजली अपनी शरम को छिपाने के लिए हँसती रहती थी। यदि प्रकृति का नियम यही था तो इसमें शरमाने की क्या बात थी? और यदि कोई मर्द अपने होने वाले पुत्र की गर्भवती माँ के लिए खाने-पीने की जंगली चीजें ढूँढ़ता भी है तो क्या वह मर्द नहीं रह जाता? होने वाले पुत्र की माँ, —इन शब्दों का विचार आते ही किशोर का हृदय पुलक उठता। कजली माँ बनेगी! उसके पुत्र की माँ! आश्चर्य से उसके होंठ खुले-के-खुले रह गए।

उसके कानों में डोंडी की आवाज आई—डुग-डुग-डुग-डुग—और फिर डोंडी वाले के शब्द। वह जल्दी से घबराकर जंगल से बाहर निकल आया। अपनी धोती की झोली में कुकुरमुत्ते भरे हुए थे। जब वह वहाँ पहुँचा तो जुरमाना वसूल करने वाला अफसर स्वयं किसानों से कुछ कह रहा था। डोंडी की आवाज सुनकर किसान क्रोध और भय से अपने घरों से निकल-निकलकर वहाँ जमा हो गए थे।

"क्यों, तुम लोगों को क्या शिकायत है? क्या तुम लोगों की अक्ल बिलकुल मारी गई है? तुम क्या समझते हो कि यह सारा पैसा गौर-मिण्ट के पेट में चला जायगा। जो पैसा वसूल किया जायगा उसकी एक-एक पाई नए डाकखाने के बनाने में खर्च होगी। बड़ा शानदार डाक-खाना बनवाया जायगा। सरकार ने उसकी योजना तैयार करवा ली है। पुराने डाकखाने की तरह मिट्टी और फूँस का झोंपड़ा नहीं होगा, जिसे तुमने जला डाला। अब जो डाकखाना बनेगा वह पक्का सीमेण्ट का होगा—फौलाद की तरह मजबूत। जब देखोगे तो गर्व करोगे। तुम गाँव वालों की ही भलाई के लिए यह सब-कुछ किया जा रहा है; तुम्हारी ही तरक्की के लिए। लाल सीमेण्ट के पक्के फर्श पर जब चलोगे तब समझ में आयगा। लकड़ी की और पीतल की खिड़कियाँ बनवाई जायंगी जहाँ तुम टिकट पोस्टकार्ड खरीद सकोगे, जहाँ चाहो

मनीआर्डर भेज सकोगे, अपना रुपया जमा करा सकोगे, चाहो तो बड़े लाट साहब तक तार भेज सकोगे। कौन जाने अबकी तुम्हारे गाँव के डाकखाने के लिए बी० ए० पास पोस्ट-मास्टर भेज दिया जाय।" वह अफसर बाहर से तो मीठी-मीठी बातें कर रहा था और बनावटी मुस्कराहट उसके होठों पर खेल रही थी, पर मन-ही-मन उसे एक बात का भय लग रहा था। वह इतना चालाक था कि उसने गाँव वालों को यह नहीं बतलाया था कि जो जुरमाना उनसे वसूल किया जायगा उसी में से पुलिस का एक जत्था उस गाँव में रखने का भी इन्तजाम किया जायगा। गाँव वालों को उनकी विद्रोही हरकतों की यही सजा दी जायगी।

उसने यह भी कहा कि कोई जल्दी नहीं है। वे कुछ समय के बाद भी जुरमाना अदा कर सकते हैं। उसने गाँव के बनिए पर एक दृष्टि डाली, जो भीड़ से कुछ हटकर खड़ा हुआ था और आँखों-ही-आँखों में उन्होंने आपस में कुछ बातें कर लीं। अफसर ने किसानों से कहा कि वह एक माह के बाद फिर आयगा। एक महीने के अन्दर जुरमाना अदा करने के लिए अपना पैसा तैयार रखो। मैं सब गाँव वालों को बतलाए जाता हूँ, मैं एक माह के बाद फिर आऊँगा।

अब तो कोई चारा नहीं था। बुरी तरह फँस गए! अब कौन बतायगा कि क्या करना चाहिए? देवता जेल में थे। गाँव के सब बड़े-बूढ़े जेल में थे। ऐसी परिस्थिति में गाँव का बनिया गाँव में राष्ट्रीय आन्दोलन का सर्वेसर्वा बन गया। "भाइयो, ये दुष्ट तुम्हारी फसल छीन लेंगे। अभी अपनी फसल बेच डालो, नहीं तो बाद में पछताओगे, एक कौड़ी भी हाथ नहीं लगेगी। दूर क्यों जाते हो, नदी के पार के गाँवों को ही देखो, वहाँ इतना अनाज छीनकर बेचा गया है कि कीमतें गिरती जा रही हैं, दिन-बदिन अनाज का भाव कम होता जा रहा है। आज नहीं बेचोगे तो कल और भी कम दाम मिलेंगे।"

बनिये ने 'बंगाल राइस लिमिटेड' का नमक खाया था और वह

नमकहरामी करने वाला आदमी नहीं था। सारा दिन उसके पाँव और उसकी जबान चलते रहते, फिर भी वह न थकता। उसे एक मिनट के लिए भी दम मारने तक की फुरसत नहीं मिलती।

जब जुरमाना अदा कर दिया गया और गाँव का सारा अनाज बड़ी-बड़ी नावों में भरकर शहरों को भेज दिया गया तो एक नई समस्या उठ खड़ी हुई। खेतिहर मजदूरों को हाट में चावल नहीं मिल सकता था। वह हाट, जहाँ किसी समय अनाज भरा रहता था, आज सहसा खाली हो गया था। किसानों की दशा बड़ी दयनीय थी। क्या कोई उनके हाथ एक दाना भी चावल का नहीं बेच सकता था? क्या वे अनाज बचाकर रखे रहेंगे और अपने गाँव वालों को मर जाने देंगे?

"माँ, हमारे पास खुद अगली फसल तक के लिए अनाज काफी नहीं है," किशोर ने कहा, "हम दूसरों को कैसे दे सकते हैं? और फिर, माँ, जमीदार का लगान भी देना है....."

माँ एक क्षण के लिए चुप रही और फिर कुछ सोचकर बोली। उसकी आवाज में दृढ़ता थी और निश्चय था—

"अगर हम खायंगे तो हमारे भाई-बन्धु सब खायंगे। किशोर, चावल पर उनका भी उतना ही अधिकार है जितना हमारा है, क्योंकि उन्होंने अपने माथे का पसीना बहाकर इस चावल को उगाया है। हमने उनकी मजूरी के जो पैसे उनको दिए हैं उनसे उनका क्या भला होगा। मनुष्य अन्न खाता है, पैसे तो नहीं खाता।"

किशोर ने लज्जा और आत्म-ग्लानि से आँखें नीची कर लीं। पर जो लगान जमीदार को अदा करना था उसके बारे में उसकी चिन्ता दूर नहीं हुई थी और अनाज दिन-बदिन कम होता जा रहा था।

अन्न की भूख जो पहले एक पतली-सी जल-धारा के समान थी, अब एक शक्तिशाली प्रवाह का रूप धारण कर चुकी थी। मछहरों को चावल की आवश्यकता थी। गाँव के दूसरे दस्तकारों को अन्न की जरूरत थी। और इसके अतिरिक्त उन लोगों के काफ़िले-के-काफ़िले चले

आ रहे थे, जिनकी जमीनों को फौज ने खाली कराकर उनको अपने गाँव छोड़ने पर विवश कर दिया था।

माँ के दरवाजे पर जो भी माँगने आता खाली हाथ वापस न जाता। "वह अगर जेल में न होते तो वह भी पहले दूसरों को खिलाए बगैर खुद न खाते; वह अपने दरवाजे से किसी को भूखा न लौटाते। फिर मैं कैसे उनकी मर्जी को ठुकरा सकती हूँ ?" इतना कहकर वह शून्य में ताकने लगी और उसकी दृष्टि दूर क्षितिज में जाकर खो गई। उसके निश्चय में एक नई लौह-समान दृढ़ता आ गई थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि अपने दृढ़ निश्चय के आगे उसे और किसी दूसरी बात का ध्यान नहीं था—उसका दृढ़ निश्चय ही था जो उसके लिए अनेकों विपदाओं का कारण हो सकता था।

किशोर ने भी फैसला कर लिया। वह शहर जायगा और काम ढूँढेगा। वह अपनी पूरी मेहनत से काम करेगा, अपना पेट काटकर बचायगा; वह तकलीफ उठाकर एक-एक पाई बचायगा और हर माह घर बहुत-सा पैसा मनीआर्डर कर दिया करेगा। कजली को गर्भवती छोड़कर जाने का उसे बहुत दुःख था, पर वह कर ही क्या सकता था ? जब उसके बच्चा होने को होगा तब वह लौटकर आने का प्रयत्न करेगा।

आखिर नया डाकखाना जो बनेगा उससे उसको कुछ तो लाभ होगा, इस विचार के आते ही किशोर मुस्करा दिया,पर उसकी मुस्कराहट में विषाद स्पष्ट झलक रहा था।

बरूनी में कोई गाड़ी नहीं ठहरती थी। केवल कभी-कभी फर्स्ट-सेकेण्ड क्लास के यात्रियों के कहने पर गाड़ी वहाँ ठहर जाती थी। किशोर को गाड़ी पकड़ने के लिए छः मील दूर जंकशन तक जाना था।

आज वह विरह का दिन भी आ पहुँचा।

कजली ने अपने कानों के झुमके उतार डाले और चाँदी की पाजेब भी जो माँ ने उसके विवाह के समय दी थी। उसके पास केवल यही

जेवर थे। कजली ने चुपके से उन्हें अपने पति के हाथों में रख दिया। "सुनो, इनको शहर में बेच लेना। काम मिलने से पहले तो कुछ दिन खाने और रहने का प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।"

"नहीं···नहीं, यह मुझसे न होगा," किशोर दुःख से प्रायः चीख उठा।

"नहीं, तुमको करना पड़ेगा। तुम्हारी समझ में नहीं आता?" उसने अपनी आँसुओं से भरी आँखें झुका लीं। "जेवर! मेरे पास इनका क्या उपयोग है? तुम चले जाओगे तो इनको देखने वाला कौन होगा?" उसने अपनी नजर उठाकर उसके दुःख को दूर करने के अभिप्राय से उसे धीरज देना शुरू किया। उसके आँसुओं की बदली में मुस्कराहट की बिजली-सी कौंध गई। "इसमें क्या है, जब तुम जाड़े में घर लौटकर आओ तो मेरे लिए नए फैशन की चाँदी की बालियाँ लेते आना। और हाँ, देखो मेरे हाथों के कंगन भी। लाओगे न?"

उसने अपना सिर फिर झुका लिया। किशोर उसे इस तरह देख रहा था, अतृप्त नेत्रों से निरन्तर घूर रहा था, कि वह शरमा गई।

विदा होते समय उसने अपने आँसुओं को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, क्योंकि उसका विचार था कि आँसू अपशकुन के चिह्न होते हैं, और होंठों पर बहुत कोशिश करके मुस्कराहट लाने के बाद वह बोली, "देखो, हर हफ़्ते खत लिखना। लिखोगे न लम्बा-सा खत?" कजली ने उसका हाथ अपने हाथों में लेकर अपने पेट पर रख लिया, जहाँ उनका नन्हा-सा पुत्र पल रहा था; मानो वह अनजाने बालक को उसके पिता का आशीर्वाद दिला रही हो।

दो घण्टे बाद जब वह दोपहर का खाना खाने के लिए बैठी तो सहसा चौंक पड़ी। वह एक मिनट तक सहमी हुई बैठी रही। उसकी आँखें, ऐसा लगता था, पथरा गई हैं; उनकी ज्योति न जाने कहाँ चली गई। ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपनी सारी आत्म-शक्ति लगाकर कुछ सुनने का प्रयत्न कर रही है। वह फर्श पर लुढ़क गई और दोनों

हाथों में अपना मुँह छिपाकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसके गालों पर अविरल अश्रुधारा बह रही थी।

उसी क्षण रेल की पटरी पर पड़ा किशोर अपने जीवन की अन्तिम साँसें ले रहा था। गोली उसकी रीढ़ की हड्डी में लगी थी एक फर्लाङ्ग दूर स्टेशन दिखाई दे रहा था।

उस दिन गवर्नर साहब अपनी स्पेशल में उस तरफ से गुजरने वाले थे। सारी रेल की लाइन पर सैकड़ों मील तक सशस्त्र पहरा बिठा दिया गया था। एक मील के अन्दर दस पहरेदार। किशोर जैसे ही पुल पर चढ़ा और छोटे रास्ते से जाने के उद्देश्य से रेल की पटरी पार करने लगा पुलिस के एक पहरेदार ने उसे ललकारा और किशोर घबराहट के मारे भागने लगा। पहरेदार ने निशाना साधा और गोली चला दी।

दस

लीबिया के रेगिस्तान के किसी स्थान से कुणाल ने अपने भाई को पत्र लिखा था। आजकल उसके पत्र बहुत ही कम आते थे। वह घोर युद्ध में फँसा हुआ था। मेर्सा मतरूह, तोबरूक, बेनगाज़ी। अल अलामीन की लड़ाई के बाद कुणाल को पुरस्कार के स्वरूप एक तमग़ा मिला था जो इसका सूचक था कि उसने लड़ाई में उल्लेखनीय भाग लिया। उसने अपने पत्र में और बातों के अतिरिक्त इसके बारे में भी लिखा था। उसके लिखने के ढंग से यह मालूम होता था कि जैसे इस सम्मान का उसके लिए कोई महत्त्व नहीं था। क्योंकि उसके दिमाग़ में कोई उच्च विचार और उसके हृदय में कोई तीव्र भावना ऐसी थी जिसके सामने इस पदक का कोई महत्त्व नहीं था।

उसने लिखा था, "मुझे इस बात का बहुत गर्व है कि हमारे हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने बहुत बड़ी विजय प्राप्त की है। मेरा मतलब उस विजय से नहीं है जो उन्होंने शत्रु पर प्राप्त की है; मेरा अर्थ उस विजय से है जो उन्होंने एक प्रकार से स्वयं अपने ऊपर प्राप्त की है। दादा, तुम शायद नहीं जानते कि उनका जो पुराना शत्रु था अर्थात् अपने-आपको दूसरी जातियों के सामने तुच्छ समझने की प्रवृत्ति, उसका उन्होंने अन्त कर दिया है। पिछले कई युगों से यूरोपीय जातियों को उनके युद्ध-बल के कारण इतिहास में दूसरी जातियों की अपेक्षा अधिक

ऊँचा पद दिया जाता था। अब क्या हो गया है ? हिन्दुस्तान के सिपाहियों ने अपार संकटों का सामना करते हुए गोरी फौजों को खुले युद्ध में परास्त करके दिखा दिया है। शायद कोई साहित्यिक इस बात को इस प्रकार कहता—गोरी जातियों की धूम का गुब्बार अफ्रीका की हवा में फूट गया। क्यों है न ? मैंने अपने दस्ते के आदमियों से बात की है; उन सबका यही विचार है। पर इस सबका तो आपको ज्ञान होगा ही। हमारे सिपाही अपने घरों को पत्र लिखते समय बड़े गर्व और तिरस्कार की भावना से एक गोरी जाति की पराजय का उल्लेख करते हैं। वह भ्रम जो कई साम्राज्यों का आधार था आज मरुस्थल की भूमि पर खण्ड-खण्ड होकर बिखरा पड़ा है। इस युद्ध के बाद साम्राज्य बहुत काल तक जीवित नहीं रह सकते।"

"दादा, मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसमें अतिशयोक्ति तो नहीं है ? मेरी यही दृढ़ धारणा है और मैं आपको बता सकता हूँ कि दूसरे हिन्दुस्तानी अफसरों के विचार भी इसी प्रकार के हैं। आप जानते हैं कि मैं सारी बातें आपको पत्र में नहीं लिख सकता। लेकिन दादा, विश्वास कीजिये जब सिपाही और फौजी-अफसर घर वापस आयंगे तो वह हर बात को चुपचाप नहीं सह लेंगे।"

राहुल सोचने लगा कि इस युद्ध से कम-से-कम एक लाभ तो होगा। परन्तु इस समय तो युद्ध के फलस्वरूप सारे देश में हाहाकार मचा हुआ था। राहुल की आँखों के सामने एक घटना का दृश्य घूम गया। वसन्त के अन्तिम दिनों की बात थी। पूर्वी तट के पास एक लड़खड़ाता हुआ आदमी गिरा और फिर कभी नहीं उठा। कहा जाता है कि वह भूख के कारण मरा था और समाचार-पत्रों की इस छोटी-सी खबर पर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया था। कोई भिखारी रहा होगा! पर किसी की कल्पना में भी यह बात न आई थी कि यह घटना भविष्य की सूचक है; यह आने वाले समय का प्रतीक है। इसी प्रकार दूसरे लोग भी गिरकर मरते रहे। फिर कुछ स्त्रियों के मरने की खबर आई

और फिर बच्चों के मरने की। लोगों ने अपने सम्बन्धियों को, अपने परिवार वालों को, अपने खून की बलि देकर बचाने की कोशिश की थी, पर वह असफल रहे थे। वह सब धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे थे।

और मृत्यु का यह प्रबल प्रवाह बड़े वेग से आगे बढ़ता गया। बढ़ते-बढ़ते यह प्रवाह कलकत्ता पहुँचा, पहले तो उत्तरी इलाके में इसका आक्रमण हुआ जहाँ आबादी बहुत घनी थी; फिर मध्य कलकत्ते से होता हुआ वह लेकसाइड के मनोरम इलाके में पहुँच गया, जहाँ राहुल रहता था।

शासन ने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्होंने यह समझकर टाल दिया कि कुछ दिनों में अपने-आप यह समस्या हल हो जायगी। वर्षा से भीगे हुए फुटपाथों पर जो बीमार ठिठुरे पड़े थे उनको अस्पतालों में भरती करने से इनकार कर दिया गया। अस्पताल के कानून में ऐसे लोगों को भरती करने का कोई नियम नहीं था जिनको कोई रोग न हो और जो केवल भूख के कारण सूखते जा रहे हों।

उनके पेट इसलिए नहीं खाली थे कि कोई दैवी कोप उन पर गिरा था और न फसल खराब हुई थी। यह अभाव मनुष्य द्वारा पैदा किया हुआ था। फसल अच्छी हुई थी और यदि फौज अपनी आवश्यकता-भर के लिए पर्याप्त मात्रा में अनाज खरीद भी लेती तो भी राशनिंग के उचित प्रबन्ध से सबको पेट-भर भोजन मिल सकता था। पर राशनिंग था कहाँ? अनाज छिपाकर रखने के विरुद्ध कानून पास भी हुआ तो इतनी देर में कि उसका कोई महत्त्व ही नहीं रह गया—वह कानून बड़े-बड़े अन्नचोरों और मुनाफाखोरों के खिलाफ कभी लागू ही नहीं किया गया, क्योंकि वह सब लोग गवर्नरों के और बड़े-बड़े पदाधिकारी लोगों के पिट्ठू थे। चालीस हज़ार नौकाओं अन्धाधुन्ध जला दीगई थीं। गाँव-के-गाँव खाली करा दिये गए थे, और इन गाँवों के लोग कौड़ी-कौड़ी को मोहताज हो गए थे। मुद्रा-प्रसार ने, जो युद्ध के लिए पैसा

प्राप्त करने का मुख्य साधन था, तो जनता की कमर ही तोड़ दी। उसकी चीज़ें खरीदने की शक्ति क्षीण होती गई और उसकी बरसों से जोड़-जोड़कर जमा की हुई पूँजी का मूल्य पाँचगुना कम हो गया। जीवन का आधार ही भंग हो गया, सारा जीवन समूल नष्ट हो गया।

बिलकुल सीधी-सी बात थी। उन्होंने किसानों को रुपये देकर उनका अनाज खरीद लिया। उन्होंने ज़मीन ले ली, घर ले लिए, मछुहरों से उनकी नावें ले लीं। पैसा वे हमेशा खूब देते थे—कदाचित् बाज़ार के भाव से भी थोड़ा-सा ज्यादा ही देते होंगे—और यह सब करने के बाद वह कितना निश्चिन्त थे। और फिर उन्होंने अपने छापेखानों को जितना चला सकते थे चलाया और मामूली कागज और रोशनाई की सहायता से उन्होंने रुपये बनाना आरम्भ किया—अपार धन, असंख्य रुपये। उन्होंने सारे देश को कागज के नोटों से पाट दिया—नोट, जो धन देने के वायदे के अतिरिक्त कुछ भी नहीं थे। युद्ध-पूर्व के डेढ़ अरब रुपये बढ़कर सात अरब हो गए और प्रति सप्ताह रुपयों की संख्या में दस करोड़ के लगभग वृद्धि हो जाती थी। और इस क्रिया के साथ-साथ रुपये का मूल्य घटता जाता था। जिस किसान को अपने बाप-दादा के घर के बदले में दो सौ रुपये मिले थे उसे कुछ दिन बाद मालूम हुआ कि वह रुपए घटकर बहुत कम हो गए हैं। रुपए के बाहरी रूप में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। वह अंग्रेजी सम्राट् का चित्र था, वही सब-कुछ लिखा हुआ था जो पहले होता था। बस उसका मूल्य घटता जाता था, प्रति सप्ताह कम होता जाता था। किसान बेचारा हैरान था, उसकी कुछ समझ में न आता था कि यह सब किस प्रकार होता है। पर उसके शासक जानते थे। यह आर्थिक लूट थी, डकैती थी, जो बहुत बड़े पैमाने पर की जा रही थी।

राहुल जानता था कि बंगाल के जीवन में जो संकट आया है उसमें उसकी अर्थ-व्यवस्था की क्या दशा है। ऊपर से उस विदेशी शासन का भार था—निर्दयी और क्रूर शासन, जो अपने पालतू पिट्ठुओं और गद्दारों

की सहायता से जनता को भूखा मारने में सफल होने का हर उपाय जानता था। और यह गद्दार अयोग्य थे, लापरवाह थे, और संसार की हर वस्तु के प्रति उदासीन होने के कारण बिलकुल चेतनाहीन हो गए थे। और शासन के जितने अंग थे वह ऊपर से नीचे तक बेईमानी और भ्रष्टाचार के कोढ़ में ग्रस्त थे।

बेईमानी रोग की तरह फैल रही थी। पैसे के पीछे लोग पागल हो रहे थे। और पैसा जल की धारा की तरह बहकर अमीरों के धन के सागर में जा रहा था; और वह प्रतिदिन और अमीर होते जा रहे थे। गरीब इसी अनुपात से गरीब होते जा रहे थे। देश के इतिहास में कभी इतनी तेजी से और इस हद तक यह नहीं हुआ था कि जो अमीर हैं वह और अमीर होते जायं और जो गरीब हैं वह और गरीब होते जायं।

उस धनवान नगर में हजारों की संख्या में कंगाल पीड़ा से कराह रहे थे। देहातों में विपदा इतनी बढ़ गई थी कि वह बहकर शहर तक आ पहुँची थी। उन पर कितनी घोर विपदा टूट पड़ी थी, किसी को इसका पूरा-पूरा ज्ञान नहीं था, क्योंकि उनके बीच ऐसी अभेद्य दीवारें खड़ी थीं कि आपस में कोई सम्पर्क ही नहीं था। बंगाल के गवर्नर साहब के एक मन्त्री ने प्रस्ताव रखा कि देहातों में जितना अनाज है और लोगों को जितने अनाज की आवश्यकता है उसका अनुमान लगाया जाय। पर लाट साहब ने फौरन ही इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया। उनका विचार था कि इसमें व्यर्थ समय खराब होगा और इससे युद्ध-सम्बन्धी हितों को कोई लाभ नहीं पहुँचेगा। उनके विचार में सबसे मुख्य काम यह था कि शत्रु के आने पर सब चीजों को जलाकर पीछे हट आया जाय। अन्न के बारे में आँकड़े जमा करने का कोई महत्त्व नहीं था।

राहुल विचारों में मग्न पेन्सिल हाथ में लिये ब्लाटिंग पेपर पर लकीरें खींच रहा था। वह सोच रहा था कि गवर्नर, जो जनता की

रोटी और उनके जीवन का सत्यानाश कर रहा था और जो तमाम चिन्ताओं से मुक्त अपना सुखमय निश्चिन्त जीवन बिताता था, वह भी किसी दूसरी शक्ति का प्रतीक था। वह ब्लाटिंग पर इसी प्रतीक का चित्र बना रहा था।

जिस डाक से लीबिया से कुणाल का पत्र आया था उसी से बंगाल के किसी गाँव से किसी ने अपनी किसान माँ के नाम एक मनी आर्डर भी भेजा था, पर वह मनी आर्डर वापस लौट गया था। पाने वाले का कोई पता नहीं चल सका था। आखिर उसको क्या हुआ? राहुल आश्चर्य कर रहा था। माँ, कजली और किशोर सब कहाँ गए होंगे? क्या किशोर को किसी शहर में नौकरी मिल गई और वह कहीं चले गए? पर किशोर को उसका शहर का पता मालूम था और यदि उनकी दशा बुरी होती तो वह पत्र अवश्य लिखता; बल्कि वह कलकत्ता आता। वह कलकत्ता से भली भाँति परिचित था। राहुल को परेशानी हो रही थी। वह सोचने लगा कि पत्र का उत्तर न मिलने पर उसे गाँव चला जाना चाहिए था। उसके हृदय में पाश्चात्ताप काँटे की तरह खटक रहा था। यदि वह अपना काम छोड़कर गाँव जा सकता! उसने इस विचार से कि उन लोगों के पास पैसों की कमी होगी पत्र के साथ कुछ रुपये भी रख दिए थे। (राहुल को क्या मालूम था कि वह पत्र कभी उस पते तक पहुँचेगा ही नहीं। वह क्या जानता था कि डाक के सेन्सर ने उस पत्र को खोलकर पढ़ लिया—विद्रोही जिलों में किसी भी पते पर भेजे जाने वाले पत्र खोलकर पढ़े जाते थे—तो पत्र फाड़कर फेंक दिया था और पैसे अपनी जेब में रख लिए थे।) राहुल ने दो माह तक प्रतीक्षा की और फिर एक मनी आर्डर भेजा। उसने सोचा था कि मनीआर्डर की रसीद पर तो किसी के हस्ताक्षर होंगे। पर मनीआर्डर लौट आया था और कुणाल के पत्र के पास पत्रों के एक ढेर में पड़ा था।

कुणाल ने लिखा था कि भारतीय सेना के सिपाही, जो सभ्यता की रक्षा के लिए लड़ रहे थे, बिलकुल ही नये ढंग से सोचने लगे थे

और अपने देश वापस आकर वह अब हर बात को चुपचाप नहीं सह लेंगे। पर जनता को क्या हो गया था? देश-भर में कहीं भी रोटियों के लिए लूट नहीं हुई; किसी ने भी रोटी न मिलने पर अपने क्रोध का प्रदर्शन नहीं किया—उस रोटी के लिए जो प्रत्येक मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। राहुल इसका कारण जानता था, उसे एक क्षण में ही जैसे इस बात का ज्ञान हो गया था। अकाल-पीड़ितों का एक जत्था, जो कालेज-स्ट्रीट पर घिसटता चला जा रहा था, एक हलवाई की दूकान के सामने आकर रुक गया। धँसी हुई आँखें ललचाई हुई नजरों से शीशे के पीछे रखी हुई नाना प्रकार की खाने की चीजों को ताक रही थीं। राहुल भी पास ही खड़ा यह सब देख रहा था। किसी ने क्रोध से उत्तेजित होकर कहा—"हम क्यों न शीशा तोड़कर यह चीजें खा लें?" लोगों ने निरुत्साहपूर्वक दबी जबान से इस प्रस्ताव का समर्थन किया। जेल जाना पड़ेगा? तो क्या हुआ, जेल में उनको खाने को तो मिलेगा, वह जीवित तो रह सकेंगे। फिर एक बूढ़ा आदमी जिसके कन्धे झुक गए थे बोला—"छिः! बेटा छिः! तुम क्या कोई चोर हो? जो चीज तुम्हारी नहीं है उसे तुम जबरदस्ती कैसे ले सकते हो? क्या तुम्हारा कोई धर्म, कोई परम्परा, जीवन का कोई सिद्धान्त नहीं है? क्या तुम जंगली जानवर हो?"

"जानवर?" वह बुभुक्षित नवयुवक चिल्ला पड़ा जिसने प्रस्ताव रखा था, "जानवर वह हैं जो इतना भोजन जमा करके रखते हैं और हमको टुकड़े-टुकड़े के लिए मोहताज कर देते हैं।" चारों तरफ सन्नाटा छा गया। फिर वह झुकी हुई कमर वाला, सफेद बालों वाला बूढ़ा आगे बढ़ा और बोला—"बेटा, मेरे पास कल का थोड़ा-सा बचा है। तू खा ले।" और अपनी लंगोटी की एक परत में से निकालकर उसने सूखी रोटी का एक टुकड़ा उसके आगे बढ़ा दिया—"खाओ, बेटा।" दो सफेद बालों वाले बूढ़े और आगे आये और उन्होंने भी अपनी-अपनी लंगोटी में से बासी खाने के टुकड़े निकालकर उसको दिये और कहने

लगे—"खाओ बेटा!" वह नवयुवक भौंचक्का खड़ा रह गया और सहसा फूट-फूटकर रोने लगा और वहाँ से मुँह छिपाकर भाग गया। वह तीनों बूढ़े उसकी प्रतिक्षण दूर होती हुई आकृति को देखते रहे और फिर उन्होंने अपनी धँसी हुई आँखों से एक-दूसरे को देखा और धीरे-से मुस्करा दिए, मानो कह रहे हों, "पाप से तो बच गया।" और उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान् को कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम किया।

अभी एक वर्ष पहले की ही बात थी कि यही लोग या उनके सगे-सम्बन्धी अत्याचारी शासकों के विरुद्ध, स्वतन्त्रता के डाकुओं के विरुद्ध क्रोध में उठ खड़े हुए थे—उन शासकों के खिलाफ, जिन्होंने नाम-मात्र को भी मुकद्दमा चलाए बगैर जनता के नेताओं को जेल में ठूँस दिया था। पर वह अपने पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए नहीं उठ खड़े हो सकते थे; वह तो उनके स्वार्थ का सवाल था। वह किसी नैतिक प्रश्न पर जान तक देने को तैयार थे। पर भूख तो उनके भाग्य में लिखी थी; यह तो उनके पिछले जन्म के कर्मों का फल था। किसानों के हाथ उनकी प्राचीन नैतिक परम्परा से बँधे हुए थे। अत्याचारी, चावल-चोर, सब किसानों की इस परम्परा के कारण सुरक्षित थे। पर एक दिन आयगा जब लाखों-करोड़ों भूखे अपने जीवित रहने के अधिकार के प्रति जागृत हो जायंगे और फिर उनके क्रोध के सामने अत्याचार थरथर काँपेगा।

राहुल उठा और विचारों में मग्न [illegible] में एक कोने से दूसरे कोने तक टहलता रहा। उसके पैरों में चपलता थी। कभी उसका दिल जनता की निष्क्रियता को देखकर बैठ जाता और कभी जनता के क्रोध की कल्पना से उसके हृदय में गम्भीरता आ जाती।

उसे इस ठीकरे के समान पृथ्वी से क्या लेना था? क्यों न वह इसको भूलकर सितारों से सम्पर्क स्थापित करने के प्रयत्न में लग जाय—उस सुदूर पृथ्वी-मंडल से जिनके अज्ञात भेदों का वह अन्वेषण कर रहा था? क्यों न वह बंगाल के इस दम घोटने वाले अन्धकार से भागकर

ऐहिक प्रकाश में जाकर शरण ले ले ? उसी से उसका वास्तविक सम्बन्ध था। जनता की अन्न और स्वतन्त्रता की भूख से उसे क्या लेना था; उसकी स्वयं अपनी अलग एक भूख थी। और अपनी भूख के अतिरिक्त उसे किसी से क्या सम्बन्ध ? आखिर उसने अपना वह मानसिक संतुलन क्यों खो दिया था ?

पर वह लाचार था। उसका स्वभाव ही ऐसा था। वह अपनी आत्मा में अपनी जनता की भूख को अनुभव करता। उन सबकी भूख उसकी भी भूख थी। उसके रक्त में न जाने कितने प्रकार की क्षुधाएं प्रवाहित थीं। उसकी आत्मा में भूख-ही-भूख थी।

उसका विचार अपने दादा की ओर गया। वह उस दिन की कितनी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा था जब वह उनसे जाकर देहरादून जेल में मिलेगा। उसे उनसे मिलने की अनुमति मिल गई थी। दादू से मिलकर उसकी आत्मा को शक्ति मिलेगी। दादू ने पहले भी अपने दृढ़-विश्वास से और अपने विचारों से उसे शक्ति प्रदान की थी। राहुल उनको कुणाल की नई धारणा के बारे में और भारतीय सेना के सिपाहियों की नव-जागृति के बारे में बतायगा। दादू सुनकर कितना प्रसन्न होंगे। बड़े आश्चर्य की बात थी कि यद्यपि दादू और कुणाल में कभी कोई सम्पर्क न रहा था उनके विचार भी एक-दूसरे से नहीं मिलते थे, पर दादू को हमेशा से उससे बड़ी-बड़ी आशाएं थीं।

वह अधखुले दरवाजे के पास से होकर गुजरा तो उसने किसी को वहाँ से भागकर जाते हुए देखा और क्रोध के आवेश में वह चिल्ला उठने वाला था—"अरे नीच, मैं अभी गया नहीं हूँ। अभी मुझे काफी समय लगेगा।" पर उसने अपने-आप को शान्त कर लिया।

वह थोड़ी देर बैठकर कुछ लिखना चाहता था जिससे कि यह मालूम हो कि वह अभी तक मृत्यु-किरण की खोज में है। उसके जाते ही वह जासूस प्रयोगशाला में आकर उसके कागजों को पढ़ेगा, शायद उनको नकल करके अपने स्वामियों को ले जाकर दिखायगा—उन दुष्टों को।

राहुल को किसानों का दिया हुआ यह नाम बहुत ही उचित प्रतीत हुआ।

वह उसे इस घृणित काम के लिए कितने पैसे देते होंगे? राहुल आश्चर्य कर रहा था। ऐसे आदमी को नौकरी के लिए मारे-मारे नहीं फिरना पड़ेगा। कालेज से पास होते ही वह दुष्ट उसे कहीं अच्छी-सी नौकरी दिला देंगे। यूनिवर्सिटी के तेज-से-तेज विद्यार्थी नौकरी के लिए ठोकरें खाते फिरेंगे ताकि इन जासूसों के लिए और ऐसे ही और कूड़ा लोगों के लिए नौकरियाँ निकाली जा सकें जिनके पास उच्च पदों पर बैठे हुए ऐसे ही कूड़ा अफसरों की सनदें मौजूद हों।

विद्यार्थियों की विद्रोह की भावना का ज्वालामुखी फूटने ही वाला था और उनके भय से दुष्ट सरकार उन्हें मनुष्य-भक्षकों की तरह देख रही थी। फासिज़्म के प्रति घृणा के कारण ही वह अपने-आप को रोके हुए थे। पर इस बात का भय था कि उनका अवरोध जहाँ एक बार टूटा फिर वह आतंकवाद का रास्ता अपना लेंगे जैसा वह पहले कई बार कर चुके थे। पर वह सही मार्ग नहीं था। जनता का आन्दोलन—जनता के आन्दोलन में सम्पूर्ण विश्वास रखो और जनता में बिलकुल घुल-मिल जाओ—राहुल उनसे यही कहता रहता था। विद्यार्थी आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। राहुल को उसमें अपना उत्तरदायित्व पूरा करना था। सितारों की किरणें स्वतन्त्रता के आने तक प्रतीक्षा कर सकती थीं।

पर उसके हित में यही था कि वह झूठ-मूठ उनके बारे में कुछ-न-कुछ लिखता रहकर अपने-आप को सुरक्षित रखे। उस जासूस के बच्चे को भ्रम में रखना आवश्यक था कि मृत्यु-किरण का पता बस अब लगा ही चाहता है।

ग्यारह

कजली ने अबकी अपनी तरकारियों की क्यारियाँ बहुत लगन से तैयार की थीं। वह कोई कोशिश उठा नहीं रखना चाहती थी। उसने नम मिट्टी को अच्छी तरह खोदा था, मिट्टी के ढेले फोड़कर उनमें से घास-फूस की जड़ें आदि साफ कर दी थीं और फिर खेत को कुछ दिन हवा सोखने के लिए खुला छोड़ दिया था, क्योंकि वह जानती थी कि पेड़ों की जड़ें हवा को सोखकर उससे अपना भोजन प्राप्त करती हैं। फिर उसने मिट्टी में खाद डालकर उसे और उपजाऊ बना लिया था। उसने मंगला के गोबर को एक गढ़े में तोप दिया था और कुछ दिन में बहुत ही उत्तम खाद बनकर तैयार हो गई थी। उसने खाद मिलाने के बाद खेत की मिट्टी को खूब अच्छी तरह उलट-पुलट लिया था ताकि उसमें अच्छी तरह हवा सोख जाय। उसने क्यारियों में पानी देने के लिए नालियाँ बना दी थीं और बैंगन के बीज बो दिए थे। बैंगन की तरकारी बहुत आम तरकारी है। गोल, भरा हुआ, चिकना बैंगन जो पहले सफेद होता है फिर बढ़कर हरा हो जाता है और फिर ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है और पकता जाता है बैंगनी होता जाता है। इसके घुटने के इतने ऊँचे पौधों में एक दर्जन तक फल लगते हैं और हल्की आँच में पकाया हुआ बैंगन खाने में बड़ा स्वादिष्ट होता है। कजली बैंगन उगाने की सब तरकीबें जानती थी और इसी कारण उसकी क्यारी

में हमेशा बैंगन बहुत होते थे। कितने अचरज की बात थी कि पौधों का भी जानवरों की तरह अपना अलग स्वभाव होता है और जब तक वे अपने आपको तृप्त नहीं कर लेते वे न तो विकास पाते हैं और न उनमें फल लगते हैं।

झाड़ी के किनारे-किनारे उसने सेम की बेल लगा दी थी। सेम की बेल बड़ी आसानी से उग आती है और काफी मात्रा में होती है तथा पुष्टिदायक होती है। बैंगन और सेम के बीच में भिंडियों की एक कतार थी। छप्पर पर कद्दू की बेल फैली हुई थी जो अब फसल खतम हो जाने के कारण मुरझाने लगी थी। कजली ने अपनी जमीन का चप्पा-चप्पा इस्तेमाल कर लिया था।

इस प्रकार कजली ने अपने और अपने घरवालों के खाने-भर को काफी प्रबन्ध कर लिया था। जो चावल उनके पास था वह एक माह से अधिक चलने वाला नहीं था, यद्यपि वह एक-एक दाना बचाते थे। उस दिन के भय से जब उनके पास खाने के लिए चावल का एक दाना भी न रह जायगा, जिस दिन वह चावल का मटका बिलकुल खाली हो जायगा—बिलकुल खाली—वह केवल उतना ही खाते थे, जितना किसी प्रकार जीवित रहने के लिए आवश्यक था। सारा दिन वह माँ और अनु के साथ जाकर खाने की अनेक प्रकार की वस्तुएं जमा करती—तालाब से झींगे पकड़ लाती; पानी में उगने वाली बेलें तोड़ लाती; ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से कच्चे हरे अंजीर तोड़ लाती या बंजर स्थानों से बेर या खाने योग्य नरम जड़ें उखाड़ लाती। पर सारा गाँव प्रातःकाल से सन्ध्या तक इसी खोज में लगा रहता था और प्रकृति के भोजन का भंडार दिन-प्रतिदिन खाली होता जाता था।

कभी-कभी कोई व्यापारी एकाध बोरा चावल लेकर बेचने के लिए आ जाता और एक मुट्ठी चावल के बदले किसानों से उनकी बची-खुची थोड़ी बहुत सम्पत्ति भी लेकर चला जाता। उनके हल, फावड़े, कुदालें, जेवर, बरतन-भाँडा कुछ न छोड़ता—जो मिल जाता ले जाता। गाँव

गाँव में केवल यही नया चावल कभी-कभी आता था। और भी चावल आता था, क्योंकि गाय-बैल अच्छे दामों पर बिक जाते थे और दूसरे गाँव जाकर हाट से पिछली फसल के समय से पाँचगुने दाम पर अनाज खरीदा जा सकता था। (यह हाट अब उस हाट का केवल एक ढाँचा रह गया था जो वहाँ एक हजार वर्षों से हर शनिवार को लगती आई थी। अब यहाँ केवल छोटे-मोटे जेवरों और बरतनों आदि के बदले अन्न का लेन-देन होता था; यही अब इस हाट का कुल व्यापार रह गया था।) पशुओं की बड़ी माँग थी। फौज में पशुओं का मांस खाया जाता था। पर कोई किसान अपने आखिरी दम तक भी अपने गाय-बैल देने को तैयार न होता था, क्योंकि वह जानता था कि बैलों की जोड़ी चली गई तो वह फिर किस तरह जोतेगा। पर जो पशुओं के व्यापारी थे, वह सन्तोषपूर्वक समय की घात में बैठे थे। वह जानते थे कि एक दिन वह आयगा जब हर किसान को अपने पशु बेच देने पड़ेंगे। जब भूख उनको और उनके सगे सम्बन्धियों को खाने लगेगी तब वह पशुओं का क्या करेंगे ? समय विपदाग्रस्त किसानों का सबसे बड़ा शत्रु था।

और जमीन ? बहुत-से किसानों को तो वह जमीन बेचने का अधिकार ही नहीं था जो वह जोतते थे, क्योंकि उस पर जमींदार का अधिकार था और जो काश्तकार जमींदारों के आसामी थे और जिनको जमीन पर अधिकार था वह भी कहते थे कि मर जायंगे पर मरते दम तक जमीन न बेचेंगे। वह लोग जो जमीन की ताक में गाँव-गाँव घूम रहे थे जैसे जंगली भेड़िए शिकार की खोज में घूमते हैं, वे किसानों की बातें सुनते और मन-ही-मन दुष्टता की हँसी हँसते और बड़े सब्र के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करते जब वह मनमानी कर सकेंगे।

बंगाल की लड़ाई तेज होती गई। जनता का सन्तोष अपनी अन्तिम सीमा को पहुँच गया। बच्चे दाने-दाने के लिए बिलखते हुए मौत का शिकार होते गए। झुण्ड-के-झुण्ड लोग अपने पूर्वजों के घरों को छोड़-छोड़कर खाने की तलाश में निकल पड़े – रेल के डब्बों के बाहर लटककर,

रेल की धूप में तपती हुई छत पर बैठकर—जिससे जिस तरह भी बन पड़ा। परन्तु जब पुलिस ने उनकी राह में बाधा डालना आरम्भ किया तब वह पैदल ही खेतों में और सड़कों पर होकर चल पड़े। दस हजार गाँवों से लोगों का ताँता शहरों की तरफ जा रहा था। सामने शहर दिखाई पड़ रहा था—बिजली की रोशनी में जगमग करता हुआ। शहर में कभी अनाज का एक दाना भी पैदा न हुआ था। किसानों के हरे-भरे खेतों की थाली में से हमेशा शहर वाले अपना पेट भरते आए थे। शहर वाले सारी फसल लेकर गाँव वालों के लिए थोड़ी-सी छोड़ देते थे। अब तक यही होता आया था। शहर वाले क्या अब उनके लिए थोड़ा-सा अन्न न दे सकेंगे ? क्या वह अन्न उपजाने वालों को भूखा मर जाने देंगे ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। चलो, शहर चलो। और सब-के-सब अपने लड़खड़ाते हुए पाँवों को घसीटते हुए शहर की ओर चल पड़े।

कजली दिन-भर में दर्जनों बार अपने बोए हुए पौधों को गौर से झुककर देखती। बैंगनी फूल फलों में बदल गए और नन्हे-नन्हे सफेद फल बढ़ते गए, प्रतिदिन बड़े होते गए। उनका दैनिक विकास आँख से दिखाई न दे सकता था पर कजली के पास एक ऐसी दृष्टि थी जो आँखों की नहीं थी। उसे अपने खेत के हर पौधे के विकास का हाल मालूम था और वह बड़े सन्तोषपूर्वक उस समय की प्रतीक्षा करने लगी जब फल पकेंगे।

उसे पाँचवाँ महीना था। अभी बच्चा होने में काफी दिन बाकी थे। काश, किशोर उससे पहले आ जाय ! उसकी बाँहें बच्चे को गोद में लेने के लिए व्याकुल हो गईं, उसके स्तन उसके पोपले मुँह के लिए बेचैन हो गए। वह इतने दिन कैसे बच्चे की प्रतीक्षा करेगी। सारा दिन तो वह खाना ढूँढ़ने की मुसीबत में फँसी रहती थी और फिर बच्चे के पिता का भी कोई पत्र नहीं आया था। कजली को पूरा विश्वास था, उन दुष्टों ने उसे पकड़कर जेल में डाल दिया है। वह क्या जानती थी कि उसके नवजात शिशु को किन संकटों का सामना करना पड़ेगा,

कि अपने क्षीण शरीर से वह उसका पालन-पोषण अधिक न कर सकेगी। पर उसे अपने बच्चे के कपड़ों की चिन्ता अभी से लगी थी। एक गुलाबी फ्राक, यही उसकी उच्चतम अभिलाषा थी। बड़ी अजीब-सी बात थी कि जब वह अपने बच्चे के बारे में सोचती तो वह उसे गुलाबी फ्राक पहने हुए ही देखती।

एक दिन तड़के ही उठकर जब वह रोज की तरह अपने बैंगन के पौधों को देखने गई तो उसके चेहरे का रंग उड़ गया। चींटियाँ! लाल चींटियाँ, बैंगन की जानी दुश्मन! अब वह अपनी इस चिर-संचित सम्पत्ति की किस प्रकार रक्षा करे? वह भागी-भागी गई और रसोई से एक टोकरी में भरकर राख ले आई और उसे सब पौधों पर छिड़क दिया। वह प्रतीक्षा करने लगी और एक टक उन पौधों की तरफ देखती रही; उसका दिल धड़क रहा था।

चींटियाँ लड़खड़ाईं और गिर पड़ीं। राख से अंधी होकर वह बिल-बिलाई हुईं पौधों को छोड़कर इधर-उधर भागने लगीं। कजली ने सन्तोष की साँस ली। परन्तु आध घण्टे बाद जब वह पौधों को देखने गई तो वह फिर वहाँ मौजूद थीं और इस बार पहले से भी अधिक संख्या में, एक पूरी फ़ौज थी, हज़ारों चींटियाँ-ही-चींटियाँ। कजली ने और राख छिड़क दी।

सारे दिन यही क्रम चलता रहा। आज कजली रोज की तरह तालाब और जंगल से अपने खाने क चीजें ढूँढ़ने भी न जा सकी। रात हो आई पर वह झगड़ा चलता रहा। अनु भी उसका हाथ बँटाने को आ गया और माँ भी। ऐसा मालूम पड़ता था कि लाखों चींटियाँ वहाँ जमा हो गई थीं। शायद चींटियों के यहाँ भी अकाल पड़ गया था। मनुष्यों ने उनसे उनका भोजन छीन लिया था—वह जड़ें जो जंगलों में बहुत मात्रा में होती थीं जिन पर यह चींटियाँ पलती थीं। वह पूरी कोशिश के साथ चींटियों का सामना कर रहे थे। आखिरकार कजली हार मानकर रोने लगी। थोड़े-से अधपके बैंगन जो चींटियों के

खाने से बच गए थे वह माँ ने तोड़ लिए और हर बैंगन के टूटने के साथ कजली का मन मसोस उठा।

प्रातःकाल वह भागकर फिर बगीचे में गई। चींटियाँ जा चुकी थीं। पर वह अपना विनाश का काम पूरा कर चुकी थीं। छोटे-छोटे बैंगन जो अभी बैंगनी रंग के फूलों से बाहर झाँक ही रहे थे, उनका उन्होंने सफाया कर दिया था।

उसने अपने हाथों से अपना मुख ढक लिया। ऐसा मालूम पड़ता था कि उसका सर्वस्व लुट गया है, जैसे किसी ने उसकी सारी शक्ति निचोड़ ली है।

सेम की बेलें बच गई थीं और वह एक नए उत्साह से, सतत चेतना के साथ उनकी देखभाल करने लगी। उसकी स्वस्थ लताएं झाड़ी पर फैलने लगी थीं और कोमल कोपलों के छल्ले इधर-उधर झूमने लगे थे, मानो वे इस गर्व से फूले न समाते हों कि शीघ्र ही वे फलों से लद जायंगे। सेम बैंगन की तरह कोमल नहीं होती कि चींटियाँ आसानी से उसे नष्ट कर सकें। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि सेम बहुत होगी।

कजली रसोई में कुछ रूखा-सूखा भोजन पका रही थी कि इतने में आँगन से माँ के चीखने की आवाज आई। वह घबराई हुई झपटकर बाहर आई। माँ खड़ी मंगला को घूर रही थी और क्रोध से काँप रही थी। उसने अपना हाथ उठाया और गाय के मुँह पर एक थप्पड़ मारा।

"माँ!" कजली ने घोर प्रतिरोध के स्वर में चिल्लाकर कहा। पर शीघ्र ही उसने देखा कि क्या दुर्घटना हो गई थी। बेल की डंठलें झाड़ी पर अपंगु-सी झूल रही थीं। उनकी पत्तियाँ और कोपलें सब चर ली गई थीं। "माँ," कजली चीख पड़ी, "मेरी सेम!"

क्रोध और व्यथा के कारण माँ एक-दो क्षण तक तो कोई उत्तर न दे सकी।

"मंगला सब चर गई, चुड़ैल कहीं की !" उसका स्वर घुटा-घुटा-सा था।

मंगला चर गई; मंगला, जो उस परिवार का ही एक अंग थी, उसके दुःख-सुख में साथ थी ? कजली को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। व्यथा और आश्चर्य से भरी हुई उसकी दृष्टि गाय पर एक-टक जमी हुई थी। मंगला चुपचाप सिर झुकाए, अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में पीड़ा छिपाए खड़ी थी।

मंगला को भरपेट खाने को न मिलता था। उसकी कत्थई रंग की खाल ऐसी लगती थी कि मानो उसकी हड्डियों पर एक ढीला-ढाला वस्त्र पड़ा हुआ है। उसके चरने के लिए कहीं नाम को भी घास न थी। गाँव का चरागाह तो जा ही चुका था—जमींदार ने उसे 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन के सिलसिले में जुतवाकर उसमें फसल बुवा दी थी। गाँव वालों ने अपने गाय-बैल बेच दिए थे और इसलिए उनको सम्मिलित चरागाह का अधिकार भी नहीं रह गया था। पर यदि अधिक अन्न पैदा हो भी तो उससे उनका क्या लाभ ? वह अन्न उन लोगों के खाने के लिए तो था नहीं। और जो थोड़े-बहुत पशु बच गए थे उनका क्या होगा ? मीलों चलकर दूसरे गाँव के चरागाह में ले जाना कोई आसान काम नहीं था। हल वाले बैलों की जोड़ी तो पहले ही पन्द्रह सेर चावल के बदले में जा चुकी थी। उनको बैलों के असली मूल्य का दसवाँ भाग भी तो नहीं मिला था और अब तो केवल मंगला ही बच गई थी। मंगला को कई महीनों से भर पेट खाने को नहीं मिला था। प्रतिदिन वह आँगन में खड़ी-खड़ी सेम की डंठलों को बढ़ते हुए देखती रहती थी—हरी-हरी कोमल लताएं उनकी लम्बी-लम्बी झूमती हुई कोंपलें और रसपूर्ण पत्तियाँ। वह प्रतिदिन देखती थी और उनको प्राप्त करने की लालसा उसके मन में उठती, पर वह अपनी भूख को मारकर चुप रह जाती। पर आज सहसा मंगला का धैर्य टूट गया।

कजली एक क्षण के अन्दर जैसे मंगला के व्यवहार को बिलकुल समझ गई।

दुखिया माँ उस पशु पर अपना क्रोध उतार रही थी।

"माँ," कजली ने विनती करते हुए कहा, "उसे क्यों बुरा-भला कहती हो माँ? क्या तुम उसका दिल तोड़ देना चाहती हो? उसकी आँखों को तो देखो माँ!" इतना कहकर वह हाथ फैलाकर मंगला के शरीर से लिपट गई और उसकी खुरदरी कत्थई रंग की खाल में अपना मुँह छिपाकर फूट-फूटकर रोने लगी।

× × ×

अंजीर के वृक्षों से सारे फल तोड़े जा चुके थे, यद्यपि वह अभी कच्चे और छोटे-छोटे ही थे और पत्थर की तरह सख्त। केवल इक्का-दुक्का गुच्छे बच गए थे, जो फुनगियों पर लगे थे और जिन तक पहुँचना बहुत कठिन था। परन्तु वह लड़का पेड़ पर गिलहरी की तरह चढ़ जाता था। वह पेड़ की एक डाल, एक-एक टहनी की मजबूती और लचक से परिचित था और छूकर बता देता था कि अमुक डाल उसका भार सहन कर सकेगी या नहीं। कभी-कभी तो बड़ा आश्चर्य होता था कि बहुत पतली-पतली टहनियाँ उसके भार से बिलकुल झुक जाती थीं पर टूटती न थीं। वह अपने साथियों की ईर्ष्या का पात्र था, क्योंकि वे तो नीचे की डालों पर ही बैठे रहते और उनमें से प्रत्येक के हाथ केवल दस-दस बारह-बारह अधपके अंजीर आते थे जिन्हें वे बहुत हिफाजत से अपनी धोती की काँछ में रख लेते थे, पर अनु ऊपर तक चढ़ता चला जाता—उनके सिर के ऊपर बहुत ऊँचे तक। उसके हाथ बहुत देर चलते रहते और उसकी जेबें भर जातीं। फिर भी अनु अंजीरों को बरबाद नहीं करता था। अब यह आखिरी अंजीर बच गए थे और उनको बचाकर रखना आवश्यक था। इसीलिए वह बहुत हाथ रोककर उनको तोड़ता था। केवल बड़े-बड़े तैयार फलों को तोड़ता जिनके बारे में उसे

विश्वास होता कि दो-एक दिन में वह धीरे-धीरे पीले पड़ने लगेंगे और उनका रस और स्वाद कम होने लगेगा।

"थोड़े-से हमको भी दो," लड़कों ने बड़ी दीनता और लाचारी से उससे कहा।

अनु ने एक गुच्छा तोड़कर जमीन पर फेंक दिया। सब लड़के जल्दी-जल्दी पेड़ पर से उतरकर ऊपर की ओर मुँह उठाकर खड़े हो गए। उनकी आँखें सूरज की रोशनी से चौंधिया रही थीं। अनु पेड़ की पत्तियों में छिपा हुआ पेड़ की फुनगी पर बैठा था। उन्होंने देखा कि वह अब और अंजीर नहीं तोड़ रहा है और उतरकर नीचे आ रहा है।

"अनु, थोड़े और तोड़कर फेंक दो," लड़कों ने चिल्लाकर चिड़-चिड़ाते हुए कहा। उनकी समझ में न आ रहा था कि आखिर अनु चाहता क्या है।

पर अनु निश्चय कर चुका था। वे अंजीर, जिन तक केवल वही पहुँच सकता था उसका गुप्त खजाना था। दूसरों को उन पर कोई अधिकार नहीं था। वे लोग अगर तोड़ पाएँ तो तोड़ लें।

उसके स्वभाव में स्वार्थपरता लेश-मात्र को न थी। वह हमेशा अपनी अच्छी-से-अच्छी चीज भी अपने मित्रों के साथ बाँट कर खाता था। पर भूख ने उसकी मासूम, स्नेहमयी आत्मा को कुत्सित बना दिया था। वह अब अपनी चीजें जमा करके दूसरों से छिपाकर रखता था। पेड़ की फुनगी पर लगे हुए हरे जंगली अंजीर उसने अपने लिए, अपनी बहन के लिए और अपनी माँ के लिए बचाकर रख छोड़े थे। वह जानता था कि कोई और उन तक नहीं पहुँच सकता था।

वह नीचे उतरा और लड़कों से मुँह फेरकर खेतों में होकर घर की ओर जाने लगा। एक क्षण तक तो सब लड़के आश्चर्य-चकित चुपचाप खड़े रहे फिर वे सब एक-साथ बन्दरों की तरह चिचियाने लगे और चिल्लाये—"पकड़ो, पकड़ो, चोर!" और सब एक-साथ उसकी तरफ लपके।

अनु का चेहरा लज्जा से लाल हो गया, क्योंकि वह अनुभव कर रहा था कि उसने नीचता का व्यवहार किया है और उसकी ग्लानि क्रोध के रूप में भड़क उठी। "आखिर तुम लोग चाहते क्या हो?" उसने ललकार कर कहा।

घृणा की दृष्टि से उन्होंने उसके खाली पेट पर बँधी हुई अँजीरों की पोटली को देखा और उनमें से एक चिल्लाया—"चोर!" और बाकी सबने आवाज़ मिलाई, "चोर! चोर!"

"मैंने चोरी नहीं की है। मैंने तो जो अंजीर तोड़े हैं वह मेरे पास हैं," अनु ने सिर को झटका देकर जवाब दिया। "तुम चाहो तो तुम भी तोड़ लो; अभी तो बहुत लगे हैं। क्या तुम्हारा सबका दिमाग़ खराब हो गया है?"

सब लड़कों ने मिलकर फिर कहा—"चोट्टा कहीं का!" और एक क्षण में मानो अपनी अन्तरात्मा के आदेश के अधीन वे उस पर टूट पड़े, उसको पीटने लगे, उसके बाल नोचने लगे और उसके अंजीर छीनने का प्रयत्न करने लगे।

अपनी धोती के छोर में बँधी हुई अंजीरों की पोटली को वह एक हाथ से मज़बूती से पकड़े हुए था और दूसरे हाथ से लड़ रहा था। वह सब एक ही उम्र के लड़के थे; भूख के कारण सबकी हड्डियाँ निकल आई थीं, चेहरे सूख गए थे। अभी एक क्षण पहले तक वह घनिष्ठ मित्र थे पर भूख की ज्वाला ने उनको अलग-अलग कर दिया था; एक के विरुद्ध तीन लड़ रहे थे। अनु पीठ के बल गिर पड़ा, परन्तु शीघ्र ही अपनी पूरी कोशिश के साथ उठ बैठा, दूसरे लड़के उसकी धोती में बँधे हुए अंजीरों की पोटली को टटोल रहे थे और उसे खींचकर खोलने का प्रयत्न कर रहे थे। यहाँ तक कि वह धोती जो फटकर तार-तार हो गई थी, खुल गई। वह हाँप रहा था और धौंकनियों की तरह चलती हुई उसकी पसलियों पर पसीने की धारा बह रही थी। उसने अपने दाँतों से किसी लड़के के हाथ को काट लिया जो उसे पकड़े हुए था। वह दर्द के

मारे चीख उठा और फिर किसी के हाथों ने अनु को ढकेलना और बुरी तरह धक्के देना शुरू किया। अनु फिर गिर पड़ा। उसका सिर एक गुम्मे से टकराया, उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वह दूसरे क्षण ही निश्चल हो गया।

लड़कों ने अनु को देखा और भय से उनका रंग पीला पड़ गया। वह कुछ देर तक चुप खड़े रहे फिर सहसा मुड़कर भाग गए।

परन्तु उनमें से एक लौट आया। अनु तपती धूप में बिलकुल मूर्तिवत् पड़ा था। उसके होंठों पर और उसकी नाक पर धूल जमी हुई थी और उसकी खोपड़ी में से रक्त की धारा बह रही थी। बालक ने अपने मित्र पर एक दृष्टि डाली, कुछ सोचा, फिर अपनी नाक पोंछी और भागकर पास वाले तालाब में अपनी धोती का एक कोना भिगोकर वापस आया और अनु के सिर के घाव पर उसे रख दिया। उसने अनु की बन्द आँखों को देखा और फिर झुककर उसके कान में कहा, "अनु भैया! उठो।" वह सिसकियाँ ले रहा था। "अनु भैया! उठो। बहुत चोट तो नहीं लगी, भैया?"

अनु ने थोड़ी देर में आँखें खोल दीं और अपना सिर हिलाया। सूरज की रोशनी से उसकी आँखों में चकाचौंध हो रही थी। अभी तक वह पूरी तरह होश में नहीं आया था, पर शीघ्र ही उसे अँजीरों की याद आई और वह घबराकर उठ बैठा कि कहीं कोई उसके सब अंजीर लेकर न चला जाय। अंजीर इधर-उधर बिखरे पड़े थे। सूखी हुई घास पर हरे-हरे अंजीर चमक रहे थे। उसकी धोती फट गई थी और उस हानि का विचार आते ही उसने क्रोध से अपने होंठ भींच लिये और घूरने लगा। "बदमाश!" उसने घृणा से कहा और फिर अपने होंठ कसकर बन्द कर लिए।

दूसरे बालक पर गाली का कोई असर नहीं पड़ा। वह मुस्कराया, उसका चेहरा हर्ष से खिल गया और वह अंजीरों को बटोरने लगा। उसने पहले अनु की फटी हुई धोती को गाँठ लगाकर ठीक किया और

एक कोने में अंजीर बाँध दिए। फिर वह सिर हिलाकर बोला, "अनु भैया, मैंने तुमको बिलकुल नहीं मारा।" और वह लगातार अपना सिर हिलाता रहा मानो उसके बार-बार इनकार करने से वह झूठ झूठ नहीं रह जायगा।

"मैंने तो मुन्नी के लिए अंजीर लिये थे," उसने घूँट निगलकर अपना गला साफ करते हुए कहा, "अभी चार बरस की है। हम लोगों की तरह वह हर चीज़ हज़म नहीं कर सकती है। वह जंगली जड़ें और सिंघाड़ा तो नहीं खा सकती। वह उबले हुए नरम अंजीर खा लेती है।" उसके होंठों की मुस्कराहट ग़ायब हो गई और उसकी आँखें डबडबा आईं। "नहीं तो, भैया, मैं तुम से क्यों लड़ता?" उसने अपना सिर झुका लिया और आँखें मल-मलकर सिसकियाँ लेने लगा।

अनु अपने मित्र की छोटी बहन को जानता था। अनु के पिता की तरह ही उसके पिता को भी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह करने के अपराध में पुलिस वाले हथकड़ी डालकर पकड़ ले गए थे। अनु की तरह रवि पर भी घर-भर की जीविका कमाने का भार था।

अनु ने अपने धोती का फेंटा खोलकर आधे अंजीर अपने मित्र को देने के लिए निकाले। "रोज इसी तरह हम आधे-आधे बाँट लिया करेंगे। क्यों, ठीक है न? अभी उस पेड़ में बहुत से लगे हैं," यह कहकर अनु अपने मित्र की अपेक्षा स्वयं अपने-आपको अधिक सान्त्वना दे रहा था, "फुनगी की हार डाल तक मेरा हाथ पहुँच जाता है।"

अपने मित्र की उदारता देखकर रवि और भी सिसक-सिसककर रोने लगा। "इतने नहीं, बस एक मुट्ठी-भर दे दो; बस।" और उसने अपने हाथ फैला दिये।

अनु ने हठ किया—"नहीं, यह सब ले लो।" वह भी रो रहा था। उसे यह सोचकर क्षोभ हो रहा था कि वह बालक जिसने उसे अभी जोर का धक्का देकर गिरा दिया था, उसके घर में भी एक छोटा बच्चा था—एक छोटा भाई। उसका किसान पिता लंगड़ा हो गया था। उसकी

जाँघ में पुलिस की गोली लगी थी और उसकी टाँग बेकार हो गई थी। शायद उसके छोटे भाई के लिए भी अंजीरों की आवश्यकता रही होगी। विष्णु अंजीरों के लिए इतनी बुरी तरह केवल इसीलिए लड़ा होगा कि उसका छोटा भाई भूखा रहा होगा। अनु का दिल बैठने-सा लगा।

कितने आदमियों का पेट भरना है! अनु अपनी कल्पना में उन अंजीरों को देख रहा था जो अभी तक पेड़ पर लगे रह गए थे। फिर वह मन-ही-मन कुछ हिसाब लगाने लगा। वह अंजीर तो शीघ्र ही खत्म हो जायंगे जिनको आसानी से तोड़ा जा सकता है फिर फैली हुई डालों के सिरे वाली टहनियों पर जाकर अंजीर तोड़ने पड़ेंगे। पर उसे डर लगने लगा था। यदि वह गिर पड़ा और उसका सिर फट गया और वह मर गया तो क्या होगा? यदि उसकी टाँग टूट गई तो? जैसे होरी की टाँग टूट गई थी? वह भी पेड़ पर से ही गिरा था और अब वह सारी जिन्दगी के लिए लंगड़ा हो गया था और बैसाखियों पर अपनी लंगड़ी टाँग घसीटे फिरता था। इधर कुछ दिनों से वह पेड़ पर इतनी सुविधा और फुर्ती से न चढ़ पाता था जैसे पहले चढ़ जाया करता था, क्योंकि असह्य भूख और कमजोरी के कारण उसके हाथ काँपने लगते थे, उसका सिर चकराने लगता था, उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा जाता और उसे डाल को बहुत मजबूती से पकड़ना पड़ता था कि कहीं गिर न पड़े।

भय और निराशा के वश अनु ने अपने आँसुओं को पलकों में ही पी जाना चाहा। वह अपनी माँ और बहन को केवल जंगली जड़ें और जंगली बूटियों पर ही जीवन व्यतीत करने न देगा; और नन्हे-नन्हे बच्चे उसके मित्रों के भाई-बहन तो जंगली जड़ें बिलकुल ही न खा सकते थे। अनु के सामने इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता ही न था कि वह पेड़ की कमजोर खतरनाक डालों पर चढ़कर फुनगी पर से अंजीर तोड़कर लाये। वह अपनी अन्तर-भावनाओं के व्यूह में फँसकर लाचार हो गया था। इसके सिवा कोई चारा ही न था।

बारह

किसान माता बहुत उदास होकर मन-ही-मन मुस्कराई कि आखिर-कार उसको मंगला के चरने के लिए यह हरी घास का मैदान मिल गया था, यद्यपि वह उसके गाँव से थोड़ा दूर था। वह अपनी गाय को लेकर घण्टे-भर का रास्ता तै करके नदी के तट पर पहुँची थी। वहाँ चारों ओर कोमल दूब उगी हुई थी। उसके चारों तरफ कोई झाड़ी वगैरह भी नहीं लगी हुई थी; जिसका जी चाहे वह वहाँ जा सकता था। गायों को चराने की पुरानी जगह में गवर्नमेण्ट के हुक्म से अधिक अन्न उपजाने के लिए हल चलवा दिया गया था; कम-से-कम कहा तो यही जाता था। गाँव से दूर चराई को दूसरे स्थान थे उनमें न जाने क्यों गाँव के मवेशियों को चराने की इजाजत न थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि मवेशी खरीदने वालों ने उन किसानों को विवश करने के लिए जो अपने गाय-बैल बेचने को तैयार न होते थे, यह तरकीब निकाली थी।

जब चराने के लिए कोई जगह ही न होगी तो हताश होकर जानवर बेचना पड़ेंगे। फिर उन खाल और हड्डी की ठठरियों का क्या प्रयोग रह जायगा? दूध देने वाली गायें? उनके थन सूखकर सिकुड़ गए थे। जानवर किसानों के लिए एक व्यर्थ का भार बनकर रह गए थे। एक दिन वह मर तो जायंगे ही, फिर तो उनका कुछ भी मूल्य न मिलेगा। फिर क्यों न उनको बेचकर चावल खरीद लिया जाय? उनको अपने

भूख से जर्जर शरीर के लिए और अपने बेटे-बेटियों के शरीर का पालन करने के लिए चावल की सख्त जरूरत थी। कोई आदमी इतना स्वार्थी तो नहीं हो सकता कि अपने प्यारे बच्चों को भोजन से वंचित रखे।

पर उस किसान माता का किसी तरह भी मंगला को बेचने का साहस न होता था और यदि उसमें साहस होता भी तो अनु और कजली कभी उसे बेचने न देते। वे दोनों भूखों मर जाने को तैयार थे पर मंगला को बेचकर खरीदे हुए चावल का एक दाना भी छूने को तैयार न थे। और ठीक भी था, क्योंकि यह तो मंगला का ही मांस खाने के बराबर था। उनके लिए मंगला केवल एक गाय ही नहीं थी, दीर्घकाल तक उसके साथ रहकर और उससे प्यार करके उन्होंने उसे मनुष्य का रूप दे दिया था। उसी का दूध पीकर वह बढ़े-पले थे। वह भी उनकी आवाज पहचानती थी और उनके आवाज देने पर बड़ी उत्सुकता से रँभाकर उत्तर देती थी। दूध से भरे उसके बड़े-बड़े थन; वह कितनी स्नेहशील थी! वह उन दोनों को अपने बछड़ों के साथ निरापत्ति खेलने देती थी और अपनी काली बड़ी-बड़ी आँखों में स्नेह-भरे उनको देखा करती थी। वह स्वयं भी तो इसी घर में पैदा हुई थी। और जो लोग पशु खरीद रहे थे वह केवल उनके मांस के लिए ही खरीद रहे थे, यह बात कौन नहीं जानता था? एक बहुत बड़ी फौज, टिड्डी-दल की तरह सारे बंगाल पर छाई हुई थी। इस पलटन में हर जाति के, हर कौम के लोग थे, और उनमें से बहुत-से गाय का मांस खाते थे। देखते-ही-देखते गाँव-के-गाँव पशुओं से खाली हो गए। व्यापारियों के पास पैसा था पर उनको आश्चर्य होता था कि इन किसानों में स्वार्थपरता कितनी कूट-कूटकर भरी हुई है कि वह अपने बच्चों को भूखा मरते हुए देखते थे पर अपने जानवर बेचने को तैयार न होते थे।

आज किसान माता की तकदीर अच्छी मालूम होती थी। जब मंगला घास के एक तिनके के लिए दयनीय ढंग से रँभाती तो उसे बड़ा दुःख होता, विशेष रूप से जब वह यह देखती कि जिन चरागाहों

में सदा से पशु चरते आए थे आज उन पर पहरे बिठा दिये गए थे। वह चरागाह जिनमें कचकचाकर दूब निकली हुई थी पर किसी के काम न आ सकती थी—वर्षाकाल की लम्बी, हरी-हरी मीठी दूब! जब वह मंगला की कत्थई खाल के नीचे एक-एक हड्डी उभरी देखती, या जब वह उसकी भयभीत याचक आँखों को देखती तो माँ का हृदय रो उठता। यहाँ तक कि उसके मजबूत घुमावदार सींग भी अजीब ढंग से सिकुड़े हुए मालूम होते थे। महीनों से मंगला को छप्पर में से फूस नोच-नोचकर खिलाया जा रहा था। सारे घर में बस केवल एक कोठरी पर ही छप्पर बाकी रह गया था—उस कोठरी में सारा घर शरण लिये हुए था। किसी भी दिन मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो जाने की आशंका थी और एक बार वर्षा आरम्भ होने के बाद दिन-भर पानी बरसे, रात-भर बरसे, कई दिन तक बरसे, यह कौन कह सकता था! माँ, उसके बच्चे और मंगला—सभी तो उस कोठरी के कच्चे, गीले फर्श पर सिकुड़े-सिमटे पड़े रहते थे, पानी टपकता रहता था और आकाश के सप्तपवन पागलों की तरह शोर करते रहते थे। परन्तु अब माँ ने हिम्मत करके रेल के पुल के पार नदी के किनारे यह चरने का स्थान ढूँढ निकाला था। इसका मालिक कौन था किसी को मालूम न था, शायद रेलवे कम्पनी ही इसकी मालिक हो। अब मंगला भूखी नहीं मरेगी। वह भर-पेट घास खायगी; शायद लालच में ज्यादा भी खा जाय और आठ-दस दिन में उसकी सिकुड़ी हुई, झुर्रियोंदार खाल पहले की तरह तन जायगी; उसके पुट्ठों पर माँस चढ़ जायगा।

माँ को वहाँ बैठकर सुस्ताने की और मंगला को सन्तोषपूर्वक घास चरते हुए देखने की फुरसत नहीं थी। उसे रोज की तरह अपने लिए और अपने बच्चों के लिए जाकर कुछ खाने की चीजें ढूँढनी थीं। वह नदी के किनारे-किनारे चल रही थी और बीच-बीच में जंगली काचू की या किसी अन्य अपरिचित पौधे की जड़ उखाड़ने के लिए रुक जाती थी, और मिट्टी-समेत जड़ों को उखाड़कर रखती जाती थी। इन्हीं

जड़ों को तो काटकर और उबालकर वे नमक के साथ खाते थे। जिन जड़ों के खाने से पेट में भयंकर पीड़ा होती थी उनको तो त्याग दिया जाता था, पर जिन जड़ों के खाने से पेट में केवल मामूली-सी गड़बड़ होती थी और जो पेट में जाकर पत्थर की तरह रखी रहती थीं उनको खाना पड़ता था, क्योंकि अपनी रुचि की खाने की चीजें पसन्द करने का सवाल ही नहीं उठता था और यह अच्छा भी था कि पेट में कुछ ऐसी चीज़ पड़ी रहे जो भूख को काफी समय के लिए मार दे। माँ अच्छी तरह जानती थी कि भूख और बदहज़मी की पीड़ा में से भूख की पीड़ा को कोई भी पसन्द नहीं करता।

चलते-चलते उसने अपने हाथों से साड़ी के एक कोने में बँधे हुए चावल को छुआ और उसके स्पर्श से उसके रोम-रोम में हर्ष की लहर दौड़ गई। चावल अब श्रेष्ठतम खाद्य-पदार्थ समझा जाने लगा था। एक समय था जब चावल प्रतिदिन का भोजन था परन्तु अब किसानों से उनका चावल छीन लिया गया था, चावल के एक-एक दाने को वे तरसते थे, चावल आज सोने से भी मँहगा हो गया था। (*गवर्नमेण्ट* और व्यापारियों ने बाज़ार-भाव पर सारी फसल खरीद ली थी पर किसानों को उनके चावल के बदले जो धन मिला था उसका मूल्य प्रतिक्षण कम होता चला जा रहा था और दुबारा वही चावल खरीदने के लिए, जो उन्होंने पहले बेच दिया था, उनको अब दस गुने दाम देने पड़ रहे थे।) माँ के पास जो चावल बँधा हुआ था वह मंगला की तरफ से उपहार था। वे गाँव के बनिए की दुकान के पास से गुजर रहे थे कि मंगला ठिठककर खड़ी हो गई और अपने सिर को झटका देकर हिलाने लगी। मंगला को क्या हो गया? क्या कोई कीड़ा उसकी आँख में चला गया था? नहीं। कोई कौआ भी तो उसकी पीठ पर बैठा उसके कानों को नहीं छेड़ रहा था। फिर हुआ क्या था? मंगला ने फिर अपना सिर झटका। उसके गले में पड़ी हुई घंटियों की माला बज उठी। जब मंगला चलती थी तो यह घंटियाँ बजा करती थीं, पर इस

समय तो मंगला खड़ी होकर जान-बूझकर उनको बजा रही थी। माँ ने उसकी आँखों में आँखें डालकर देखा और एक क्षण में सब-कुछ समझ गई। 'पर मंगला, मैं तुम्हारी यह घंटियाँ किस प्रकार ले सकती हूँ ?' पर मंगला अपना सिर हठपूर्वक हिलाती रही। माँ ने विवश होकर, जी न चाहते हुए भी, लाल डोरी में बँधी हुई घंटियों की माला खोली और छोटी-छोटी घंटियों को बड़े प्रेम से अपने हाथों से सहलाया। ऐसा मालूम पड़ता था कि मंगला को बहुत सन्तोष हुआ और वह बहुत धीमे से रँभाई। माँ दुकान में चली गई।

"गाय की घंटियाँ !" दुकानदार ने तिरस्कार से कहा, "गाय की घंटियाँ कौन लेगा ?"

माँ ने भी सन्तोष की साँस ली। "ठीक है, ठीक है," कहकर वह सिर हिलाती हुई जल्दी से दुकान के बाहर चली गई। दुकानदार ने पुकारकर कहा, "माँ, एक बात तो सुनो।" उसे सहसा ध्यान आया कि शहर की दुकान में इन घंटियों के अच्छे पैसे मिल जायंगे। वहाँ दुकानों में खिलौनों की कमी थी और धनवानों के बच्चों को उनकी बड़ी लालसा थी।

दुकानदार ने उसको घंटियों के बदले चावल दे दिए—पाँच मुट्ठी चावल। पिछले कई सप्ताहों से माँ को इतना अन्न कभी नहीं मिला था। कटु अनुभवों के दर्पण में समय का आकार बहुत बड़ा हो जाता है; माँ को यह सप्ताह वर्षों के समान मालूम होते थे।

माँ उदास भी थी और खुश भी। गाँव में से होकर जाते समय उसको मंगला की ओर देखने का भी साहस न हो रहा था। अब उसके गले में घंटियाँ नहीं बज रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि उसके शरीर का कोई अभिन्न अंग उससे छीन लिया गया हो।

पर मंगला के चरने के लिए वह स्थान ढूँढकर माँ ने अपना कलंक धो डाला था—वह स्थान जिस पर न तो कोई पहरा था और न कोई उसका दावेदार ही मालूम होता था। मंगला ने उसे चावल का उपहार दिया था, और उसने उसके बदले में घास का उपहार दिया था।

कजली और अनु जब सुनेंगे तो खुशी से नाच उठेंगे।

रेल की पटरी के पास वाली मोड़ पर एक औरत दुबकी बैठी थी और अपने हाथों से नरम मिट्टी खोद रही थी। उसकी बगल में एक बालक बैठा हुआ था। माँ को कौतूहल हुआ और वह उनके पास चली गई। उसने दिन-भर के लिए काफी जड़ें खोद ली थीं। अब और ज्यादा खोदने से कोई लाभ नहीं था, क्योंकि उनको जमा करके तो रखा नहीं जा सकता था। वह सूखकर लकड़ी की तरह सख्त हो जातीं थीं। माँ को यह जानने की उत्कण्ठा थी कि उस औरत को क्या चीज मिली थी।

वह युवती, जिसकी आयु कजली-जितनी ही रही होगी, अपने काम में तल्लीन थी। उसने न तो माँ के कदमों की आहट सुनी और न उसे यह आभास ही हुआ कि कोई उसके पास खड़ा है। उसने लगभग एक बालिश्त गहरा एक गढ़ा खोद लिया था। माँ आश्चर्यचकित चुपचाप उसे देखती रही। वह युवती मुड़ी और उस नग्न शरीर बालक को अपने हाथों में उठाकर झुलाने लगी। बालक रो रहा था; युवती उसे बड़े प्यार-भरे शब्दों से बहलाने का प्रयत्न कर रही थी : "न रो मेरे लाल, मेरे लाल न रो! अब तुम्हारे पेट में कभी दर्द न होगा। सुख की नींद सो जाओगे।" और इतना कहकर उसने बच्चे को गढ़े में रख दिया, उसके लकड़ियों-जैसे सूखे हाथ उसके सीने पर रख दिए और उसकी पलकें नीचे कर दीं, मानो बच्चे को सुला रही हो और फिर वह जल्दी-जल्दी गढ़े में मिट्टी भरने लगी।

माँ को जैसे काठ मार गया। वह मूर्तवत् वहीं खड़ी रही; उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। जब मिट्टी बच्चे की ठोड़ी तक आ गई तो उससे न रहा गया और वह अपनी पूरी शक्ति से चीख पड़ी।

उस युवती को कोई आश्चर्य न हुआ। वह मुड़ी, व्याकुल नेत्रों से माँ को देखा और फिर अपने बीभत्स काम में रत हो गई। "अब तुझे कोई पीड़ा न होगी, मेरे लाल!" वह प्यार-भरे कोमल स्वर में अपने बच्चे को बहलाने का प्रयत्न कर रही थी।

माँ झपटी और लपककर बालक को कब्र में से निकाल लिया।

"चुड़ैल ! हत्यारी ! अपने बच्चे की हत्या कर रही है ! तुझे तो नरक में भी जगह न मिलेगी ! चुड़ैल कहीं की !"

"मेरा बच्चा, मुझे मेरा बच्चा दे दो," युवती ने याचना-भरे स्वर में गिड़गिड़ाकर कहा, "वह भूखा है, उसकी आँखों से नींद जैसे गायब हो गई है। वह आँखें फाड़-फाड़कर देखता रहता है। बस, मुझको घूरता रहता है। मुझे दे दो, मैं उसे सुला दूँ, सुख की नींद सुला दूँ।" उसने अपनी बाँहें फैला दीं मानो उसे इस काम को पूरा करने की बड़ी जल्दी हो।

क्रोध के आवेश में माँ ने हाथ उठाया और अपनी पूरी शक्ति से उस युवती के मुँह पर एक थप्पड़ मार दिया। वह युवती ज्योतिहीन आँखों से उसे घूरती रही और उसके फैले हुए हाथ नीचे गिर पड़े। माँ ने उसके धूल से भरे उलझे हुए बालों को पकड़कर उसे झंझोड़ा, पर वह फिर भी कुछ न बोली। न तो उसने कोई प्रतिरोध ही किया और न पीड़ा से चीखी। उसका मस्तिष्क बिलकुल खाली था, वैसे ही जैसे कि उसका पेट बिलकुल खाली था। माँ उसे जानती थी। वह एक मछुहरे की बीवी थी। उसे देखकर यह कहना असम्भव था कि अभी पिछले वर्ष ही वह एक नई-नवेली दुलहन थी।

"मेरा लाल भूख से कितना व्यथित है ! देखो, मेरे स्तन बिलकुल सूख गए हैं, एक बूँद भी दूध नहीं रह गया है इनमें," उसने अपने फटे चीथड़े को उठाकर दिखाया जो उसके वक्षस्थल को ढकने का निष्फल प्रयत्न कर रहा था। "अब तो उसमें चीखने की शक्ति भी नहीं रही। अगर उसे जरा देर भी नींद आ जाती तो कितना अच्छा था ! पर नींद है कहाँ उसकी आँखों में ? उसे तो हर क्षण भूख की यातना सताती रहती है। यह गढ़ा बहुत शीतल और सुखदायक है। यहाँ उसे नींद आ जायगी।"

माँ उस कब्र को देखकर सिहर उठी और उसने बच्चे को अपनी

छाती से चिपटा लिया। बच्चा उसे निरन्तर घूर रहा था। उसकी आँखें बिलकुल ज्योतिहीन प्रतीत होती थीं—बिलकुल निर्जीव !

"चल यहाँ से," उसने उस युवती का हाथ पकड़कर उसे घसीटा और जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती हुई चल पड़ी।

"कितनी लज्जा की बात है ! इतने नन्हे-से बालक को···! अच्छा ही हुआ कि मैं ठीक वक्त पर आ गई। भगवान् की मरजी थी। उसने अपने हाथ जोड़कर माथे से लगाए और ऐसा करते समय उसे अनुभव हुआ कि वह बच्चा उसके मुँह से लग गया था। उसे अपने उस बच्चे की याद आ गई जो बहुत वर्ष हुए मर गया था। उस समय वह युवावस्था में थी और उसका बच्चा भी इतना ही बड़ा रहा होगा। उसने उसके ठंडे शिथिल गाल पर अपना मुँह रख दिया और उसका हृदय ममता से भर गया।

"तुम्हारा पति मछहरा है न, कहाँ है वह ?" उसने एक ठंडी आह भरकर पूछा। माँ उसको जानती थी। वह उसके बेटे कनु का मित्र था। अपने विवाह के दिन उसने गाँव के हर किसान-परिवार को मछलियों का उपहार दिया था, क्योंकि उसका हृदय अपनी पत्नी को पाकर खुशी से भर गया था। उसकी पत्नी, उसका नन्हा-सा बेटा··· !

"वह तो चला गया।"

"चला गया ? कहाँ ?"

"कौन जाने कहाँ गया ? बस कहीं चला गया—" और इतना कहकर युवती ने अनिश्चित भाव से अपने हाथ के इशारे से एक ओर संकेत कर दिया।

माँ उसकी बात समझ गई। गाँव में एक भी नौजवान बाकी न रह गया था। सब खाने की तलाश में कहीं-न-कहीं चले गए थे, पर लौटकर कोई भी न आया था। स्वयं उसका दामाद भी इसी तरह··· माँ ने फिर आह भरी। कजली को छः माह का गर्भ था, और वह न

जाने कहाँ चला गया था। तीन महीने हो गए थे उसको गये हुए और···

"मैं तुम्हें चावल दूँगी," उसने अपनी साड़ी का कोना उठाकर उसे अपना खजाना दिखाया। चावल से बढ़कर संतोषजनक वस्तु इस संसार में और क्या हो सकती थी! पर उस युवती को कोई लालच न हुआ।

"वह चावल कैसे खायगा बेचारा? अभी बहुत छोटा है। और उसे पिलाने के लिए मेरे पास दूध भी नहीं है। दूध खरीदने के लिए पैसे भी नहीं हैं। अगर वह जिन्दा रहेगा तो उसे और कष्ट होगा, बहुत कष्ट होगा। मैं उसे कष्ट सहते नहीं देख सकती।" और सहसा उसकी आँखों से आँसू बहने लगे और वह सिसक-सिसककर रोने लगी।

"माँ, तुम मेरे बच्चे के साथ इतनी निर्दयता क्यों कर रही हो? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुम उसे सुख से क्यों नहीं सो जाने देतीं? मेरी गोद में उसे कष्ट-ही-कष्ट मिलता है और वह घुल-घुलकर मर रहा है, धीरे-धीरे मौत के मुँह में जा रहा है····"

विवशतापूर्ण आश्चर्य के भाव से माँ ने अपना हाथ उठाकर अपने मुँह पर रख लिया।

"क्यों बेटी, तू कलकत्ता क्यों नहीं चली जाती? तुझे कभी इसका ध्यान नहीं आया?" वह बात सूझते ही उसने जल्दी से चिल्लाकर कहा, "सब लोग भाग-भागकर कलकत्ता जा रहे हैं, सैकड़ों लोग जा चुके हैं। कौन जाने तेरा पति भी वहीं हो। वहाँ उस जादू की नगरी में तुझे जी भरकर दूध मिलेगा, चावल मिलेगा और पहनने के लिए नई-नई साड़ियाँ मिलेंगी। कलकत्ते में बहुत फालतू पैसा है। वहाँ लोगों के दिल में दया है। वे गरीब लोगों के साथ बड़ी कृपा करते हैं। वहाँ तुझे किसी बात की तकलीफ न होगी। तुझे काम भी मिल जायगा। वहाँ मजूरी बहुत ज्यादा मिलती है। तुझे किसी बात की चिन्ता नहीं रहेगी, किसी बात की भी नहीं। एक दिन तेरा बेटा बड़ा होकर किसी

जूट की मिल में नौकर हो जायगा। कितने गर्व का होगा वह दिन! देख, मेरी बात मान ले···" उसके स्वर में याचना थी, "बेटो, तू कलकत्ता चली जा।" वह अपने उत्सुक नेत्र उस युवती पर जमाये थी, मानो उसके निर्णय पर स्वयं उसकी मानसिक शान्ति निर्भर है।

"कलकत्ता ?···बहुत दूर है। यह वहाँ तक जियेगा नहीं। रास्ता बहुत कठिन है; रास्ते में ही मर जायगा। दूध की एक बूँद के बिना वह इतने दिन जिएगा कैसे ?"

माँ एकटक शून्य में ताक रही थी; उसके हृदय में व्यथा थी। उसने देखा कि मंगला घास पर बैठी जुगाली कर रही है। फिर उसके कंठ से एक स्वर निकला जो इतना अपरिचित था कि उसको मालूम ही न पड़ता था। उसने रुँधे हुए स्वर से कहा, "मेरी गाय ले लो, उसे बेच लेना। जाओ, कलकत्ते चली जाओ। वह जादू की नगरी है; वहाँ तुम्हारी जान बच जायगी।"

युवती ने बड़े ध्यान से पहले गाय को देखा और फिर माँ को। उसकी नीरस धँसी हुई आँखों में आशा की ज्योति चमकने लगी। उस समय उसकी दशा एक ऐसे व्यक्ति की-सी थी जो डूब रहा हो, और जब उसके बचने की कोई आशा न रह जाय और उसका दम बिलकुल घुट रहा हो तो सहसा एक नाव आती हुई दिखाई पड़े और कोई उसकी तरफ हाथ बढ़ा दे। वह माँ के पैरों पर गिर पड़ी। वह सिसक-सिसककर रो रही थी। उसके फटे चीथड़े के नीचे उसका सीना जोर-जोर से धड़क रहा था। उसने कई बार अपना सिर जमीन पर दे मारा। इस प्रकार वह माँ से गाय लेकर कृतज्ञता और अपनी व्यथा का प्रदर्शन कर रही थी।

उसकी भावनाओं पर से जड़ता का आवरण हट गया था। वह एक बार फिर जीवित हो गई थी। अब उसे अपने बच्चे को पाने की, अपने लाल को प्राप्त करने की उत्कंठा कितनी तीव्र हो उठी थी!

माँ ने यह सब-कुछ देखा। उसने युवती को उठाकर खड़ा कर

दिया और बच्चे को उसकी गोद में दे दिया—"जाओ, जल्दी जाओ!" उसने देखा कि युवती ने अपने बच्चे के भूख से विह्वल मुख को अपने स्तन से लगा लिया। माँ बड़ी देर तक मंगला को देखती रही, पर उसकी यह हिम्मत न हुई कि उसके पास जाकर उसे विदा कर दे, उसके मुख पर अन्तिम बार हाथ फेर दे। उसे ऐसा लगा कि वह यह न कर सकेगी। वह जल्दी से मुड़ी और चली गई।

मंगला के बिना अब वह अपने बच्चों को क्या मुँह दिखायगी। वह चावल को हाथ भी न लगायंगे। वह समझेंगे कि यह चावल नहीं मंगला की हड्डियाँ और माँस है। फिर वह चावल घर ले जाकर क्या करेगी? वह रुकी और मुड़कर उसने मछहरे की स्त्री को पुकारा जो बड़ी उतावली के साथ गाय की तरफ जा रही थी।

युवती काँप उठी। उसने सोचा कि शायद माँ ने अपना विचार बदल दिया है।

"यह चावल भी लेती जाओ।" माँ का स्वर भर्राया हुआ और निर्जीव था।

युवती ने अपने वक्षस्थल पर से वह फटा चीथड़ा उतारा और चावल के लिए आगे बढ़ा दिया।

माँ जिस समय मंगला के बिना गाँव में से होकर जा रही थी, उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इस संसार में उससे अधिक असहाय कोई दूसरी स्त्री न होगी। वह थककर चूर हो गई थी। हर कदम पर उसे ऐसा प्रतीत होता था कि अब वह और आगे न चल सकेगी। वह कहीं सड़क के किनारे बैठकर खूब जी भरकर रोना चाहती थी।

अपने पाँवों को घसीटती हुई वह धीरे-धीरे घर की ओर चलती रही। उसके हृदय को यह भय सता रहा था कि कजली और अनु इस दुर्घटना को किस प्रकार सहन कर पायंगे। वह रास्ते में गाँव की एक औरत से बात करने के लिए ठहर गई जो अपनी बेटी के साथ उसी रास्ते आ रही थी। माँ-बेटी दोनों नई साड़ियाँ पहने हुए थीं। माँ की

सफेद साड़ी पर चौड़ा लाल किनारा बना हुआ था और बेटी की साड़ी गहरे आसमानी रंग की थी। उनके तो भाग्य खुल गए थे। ऐसे सुन्दर कपड़े! एक जमाने में जब यह पृथ्वी स्वर्ग के समान थी तब गाँव के जुलाहे के यहाँ ऐसी साड़ियाँ भरी रहती थीं, परन्तु अब तो चावल की तरह साड़ियों का भी अकाल पड़ गया था। अब तो लोग जिस तरह बन पड़ता था अपने शरीर को फटे-पुराने चीथड़ों से ढके रहते थे। उसने तो एक स्त्री को टाट पहने हुए भी देखा था। जब वह स्त्री चलती थी तो ऐसा मालूम पड़ता था कि अनाज का बोरा चल रहा है, या तले-ऊपर रखे हुए दो बोरे चल रहे हैं। अन्तर केवल यह था कि मालूम पड़ता था कि उन बोरों में से आधा अनाज निकाल लिया गया है। यदि किसी दिन उसकी कजली को भी टाट की बोरियाँ पहननी पड़ीं तो क्या होगा! जो साड़ी वह पहने हुए थी फट चली थी और एक गर्भवती जवान स्त्री के लिए वह साड़ी पहनना सर्वथा अनुचित था। वह कजली को टाट की बोरी पहने कैसे देख सकेगी? सहसा उसे अपने खेत का ध्यान आया। पर फिर उसे याद आया कि इच्छा रहते हुए भी वह उसे न बेच सकती थी, क्योंकि वह उसकी जमीन तो थी नहीं। केवल उसका पति अपने दस्तखत और अँगूठे के निशान से उस जमीन को बेच सकता था।

नीरी जवान हो गई थी, पर अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ था, और अब वह ज़मींदार की बेटी की तरह बनी-ठनी घूम रही थी।

"बहन, तुम्हारे घर पर किस लक्ष्मी की कृपा हुई है?" उसने ईर्ष्या से कहा, "तुम्हारे तो अच्छे दिन फिर आए हैं। कितना अच्छा कपड़ा है; अब तो कहीं देखने को नहीं मिलता।" उसने नीरी की आसमानी साड़ी का आँचल हाथ से छूते हुए कहा, "हाँ बड़ी खुशी होती है ऐसा अच्छा कपड़ा देखकर।" उसकी इच्छा उस कपड़े को छोड़ने की न होती थी। उसे छूकर उसे खुशी भी हो रही थी और पीड़ा भी।

नीरी की माँ ने अपने हाथ से माथे की ओर संकेत करते हुए कहा, "सब भाग्य की बात है।" और इतना कहकर वह चुप हो गई।

"तुम्हारे घर में तो मालूम होता है कहीं से उपहार आये हैं। क्या नीरी के लिए कोई धनवान वर मिल गया है? क्या अपनी नीरी का ब्याह होने वाला है? लड़का तो बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है कि बहू की तरह सास का भी ध्यान रखता है।"

नीरी का ब्याह! धनवान वर! सहसा किसी अज्ञात भावना से स्त्री की मुखाकृति विकृत हो गई और उसके होंठ काँपने लगे—"अनु की माँ, तुम हमारे भाग्य को क्यों नज़र लगाती हो? हमको अपने दुःख बहुतेरे हैं। तुमको भी हैं। तुम हमारी कुछ सहायता नहीं कर सकतीं, हम तुम्हारी नहीं कर सकते। तुम्हारे भी तो बेटी है। तुम अपनी राह जाओ, हमारी बात में क्यों दखल देती हो?" उसने अपनी बेटी की बाँह पकड़ ली जो मुँह फेरे खड़ी थी और किसी गुप्त भावना के कारण वह बेचैन हो उठी और बिफरकर बड़े आवेग से बोली, "तुम्हारा इसमें क्या जाता है, मुझे अपने खाने के लिए भी तो कुछ चाहिए, नीरी को भी भोजन चाहिए। और हम जंगली जड़ें क्यों खाएं; हम तो चावल खायंगे। तुमको भी एक दिन जी भरकर खाने को मिलेगा, तुम्हारे भी तो एक बेटी है। अनु की माँ! जाओ अपना रास्ता देखो, और हमारे सौभाग्य पर कुदृष्टि न डालो।"

इतना कहकर वह स्त्री चल दी। माँ दंग रह गई। उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि वह स्त्री क्या कह रही थी। उसने तो कोई ऐसी बात नहीं की थी कि वह नाराज होती। फिर न जाने क्यों वह इतनी बिगड़कर बात कर रही थी। दूसरी बात में फँसकर माँ की जो उदासी एक क्षण के लिए दूर हो गई थी वह फिर लौट आई। मंगला के बिछुड़ जाने के ध्यान से वह दुःखी हो उठी।

छप्पर में से फूस नोच लिये जाने के कारण उसका घर बिलकुल उजड़ा हुआ लगता था। किसी दुर्बल मनुष्य की पसलियों की तरह

बाँस छप्पर में से बाहर निकले हुए थे। उसने दूर से ही देखा कि उसके दरवाजे पर कुछ अपरिचित लोग बैठे हैं—एक दुबला-पतला अधेड़ उम्र का पुरुष और एक मोटी-सी औरत। देखने से शहर के लोग मालूम पड़ते थे। माँ घर के पास पहुँची तो उसे बहुत आश्चर्य हो रहा था। उसने रीति के अनुसार अपना घूँघट खींच लिया, क्योंकि घर के सामने ही एक अपरिचित पुरुष बैठा था। वह पुरुष उसको देखते ही उठकर दूसरी तरफ चला गया। माँ ने अपना घूँघट हटा दिया। इसी समय अनु घर के अन्दर से कूदता हुआ बाहर आया।

"माँ, देखो तो," उसने बहुत खुश होकर कहा, "खाओ," और उसने बड़ी उत्सुकता से हाथ बढ़ा दिया, जिसमें पेड़े के प्रकार की कोई मिठाई थी। यह मिठाई तो अकाल से पहले के सुनहरे दिनों में भी गाँव में मुश्किल से ही देखने को मिलती थी।

"बेटा अनु," उस शहरवाली मोटी औरत ने चिल्लाकर प्यार से कहा, "वह सन्देस सारा-का सारा तेरे लिए है। मेरे पास और बहुत हैं। तेरी माँ बहुत दूर से चलकर आई है, उसे ज़रा सुस्ता लेने दे, थक गई होगी। माँ की तरफ मुड़कर वह मुस्कराकर बोली—"बहन, तुमको भी जी भरकर खाने को मिलेगा।"

माँ का हृदय धड़कने लगा। *तुमको भी जी भरकर खाने को मिलेगा*—यही शब्द तो उस स्त्री ने उससे सड़क पर कहे थे, पर उसके कहने में तिरस्कार की भावना थी। पर माँ को इस बात की बड़ी खुशी थी कि अनु ने यह नहीं देखा था कि मंगला लौटकर नहीं आई। वह सन्देस खाने में इतना मस्त था कि उसने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया।

"कजली," माँ ने पुकारकर कहा, "तूने इन लोगों को पैर धोने के लिए एक लोटा पानी भी नहीं दिया। तुझे तो किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता।"

कजली ने रसोई में से कुछ कहा, पर उस शहरवाली औरत ने तुरन्त चिल्लाकर कहा—"नहीं, बहन, कोई जरूरत नहीं है। कजली ने तो पानी

दिया था पर हमारे पाँव बिलकुल साफ हैं। हमने जूते जो पहन रखे हैं।" वह एक क्षण चुप रही और फिर कहना शुरू किया, "कजली ? गाँव-भर में उसके-जैसी कोई भी लड़की नहीं है; दूर-दूर के किसी गाँव में नहीं है। मैं तो गाँव-गाँव घूमती रहती हूँ। जिन लोगों को जरूरत होती है उनको भोजन बाँटती हूँ। पिछले एक माह में मैंने दस गाँव देखे हैं पर कजली-जैसी लड़की कहीं नहीं देखी। अरे, सुन्दरता में तो वह शहर की किसी भी लड़की को मात कर सकती है। बिना किसी सजधज के, बिना होंठों पर सुर्खी या आँखों में काजल लगाए, और बिना पाउडर लगाए ही वह शहर की अच्छी-से-अच्छी बनी-सँवरी छोकरी को मात कर सकती है। मेरे भी भाग्य अच्छे थे कि मैं तुम्हारे घर आई। सब भगवान् की देन है।" इतना कहकर उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगाए और दैवी इच्छा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

माँ चकराई हुई अपने अतिथि को घूर रही थी। कौनसी दया की देवी थी वह कि गाँव-गाँव घूमकर भूखों को खाना बाँटती थी ? क्या वह उसे भी कुछ मुट्ठी अन्न नहीं देगी ? इस आशा से माँ का हृदय और तेज़ी से धकड़ने लगा। शायद वह किसी सहायता-समिति की तरफ से आई है। उसने सुन रखा था कि इस प्रकार की कई सहायता-समितियाँ जगह-जगह काम कर रही थीं। पर इस परोपकारिणी के पास तो स्वयं ही बहुत दौलत मालूम पड़ती थी। सोने की चूड़ियाँ, कानों में बालियाँ, नाक में हीरे की कील—सभी-कुछ तो था। पर माँ पर उसके जेवरों की अपेक्षा उसकी साड़ी का ज्यादा रोब पड़ा। कौन पहन सकता है इतनी लम्बी, एड़ी तक की साड़ी और इतनी चुन्नटदार ! गाँव में तो इस साड़ी को तीन साड़ियाँ बन सकती थीं। तीन औरतों के पहनने-भर को काफी थी वह एक साड़ी। कितना कपड़ा व्यर्थ किया गया था उस साड़ी में ! और उसकी बुनाई और किनारे का तो कहना ही क्या !

"बहन, चखो तो," उस स्त्री ने एल्युमिनियम के एक कटोरदान का

ढक्कन खोलते हुए कहा, जो ऊपर तक मिठाई से भरा हुआ था। माँ ने धीरे से उत्तर दिया—"नहीं नहीं, अभी नहीं। बाद में खा लूँगी। यह कोई मिठाई खाने का वक्त है?" पर उसके मुँह में पानी भरा आ रहा था।

उस स्त्री ने हठपूर्वक कहा—"बहन, शहर की बहुत अच्छी मिठाई है, खाकर तो देखो, और मिठाई खाने का भी क्या कोई खास वक्त होता है? मिठाई तो दिन में कभी भी खाई जा सकती है। मैं तो सारे दिन खाती रहती हूँ, दिन में चार-चार दफ़ा और इससे भी ज्यादा, तभी तो देखो कितनी मोटी हूँ।"

"कहाँ मोटी हो?" माँ ने शिष्टता के विचार से उसकी बात का खण्डन करते हुए कहा, "बस तन्दुरुस्ती अच्छी है जैसी कि तुम्हारी उम्र की औरतों की होनी चाहिए। मैं···" उसने उस स्त्री को खुश करने के लिए झूठ बोलते हुए कहा, "यह दुर्दिन आने से पहले मैं तुमसे भी ज्यादा मोटी थी।"

और वह बैठकर मिठाई खाने लगी। उसकी इच्छा होती थी कि खोए और चीनी की बनी हुई मिठाई को जितनी देर तक हो सके अपने मुँह में ही रखे रहे। वह उसे धीरे-धीरे चबाती और फिर निगल जाती। कैसा अजीब लग रहा था उसका मिठाई खाने का ढंग। उसके अंगों में एक शिथिलता आ गई और खुशी के मारे उसकी आँखें बन्द होने लगीं।

अनु ने चुपके से उसके कान में कहा, "माँ, चावल! माँ, दाल! घी, माँ!" और उसका क्षीण मुख आनन्द से खिल उठा, "दीदी रसोई में आग सुलगा रही है, दाल-चावल धो रही है। मैं तो खूब पेट भरकर खाऊँगा। मैं तो···" सहसा उसने अनुभव किया कि उसे बहुत भूख लगी है और वह पीड़ा से विह्वल हो उठी।

उस स्त्री ने यह बात सुन ली थी और उसके भरे हुए चेहरे पर मुस्कराहट के कारण मोटी-मोटी झुर्रियाँ पड़ गई थीं।

"घबराते क्यों हो, मैं तुम्हारे पास तीन महीने तक खाने-भर को चावल छोड़ जाऊँगी। और फिर बीस रुपए भी दे जाऊंगी। इन मुसीबत के दिनों में तुम माँ-बेटे के लिए बहुत होगा। उस बेचारी लड़की को रसोई में बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। चूल्हा फूँकते-फूँकते हल्कान हो जाती है, आँखों से आँसू बहने लगते हैं। मैंने झाँककर देखा था, तुम्हारे यहाँ गोबर के उपले नहीं हैं। बेचारी लकड़ी को मुँह से फूँकती रहती है और उसकी आँख से पानी बहता रहता है। बेचारी जवान लड़की है, क्या सुख पाती है वह जीवन में?" और उसने सहानुभूति का प्रदर्शन करते हुए अपना सिर हिलाया, "तुम ही बताओ, जवान लड़की के लिए यह भी कोई जीवन है?"

"गोबर? हमारी मंगला को खाने को इतना थोड़ा मिलता है कि···" माँ ने फौरन दाँतों से अपनी जीभ काट ली। मैं भी कितनी मूर्ख हूँ कि मंगला का नाम ले दिया और उसने चिन्तापूर्ण नेत्रों से अपने बेटे को देखा। अगर वह इन अतिथियों के सामने कोई झगड़ा करने लगे तो क्या होगा? पर अनु ने उसकी बात सुनी ही नहीं थी। वह तो चावल, दाल और घी के स्वप्न देख रहा था। रसोई में एक पतीली में खिचड़ी पक रही थी। ओह, दीदी को भी खिचड़ी पकाने में कितनी देर लगती है, न जाने जल्दी क्यों नहीं पकाती। दीदी, जल्दी से बना दो न···

वह पुरुष, जो लगभग तीस कदम दूर बैठा सिगरेट पी रहा था, ऊँचे स्वर में पुकारकर बोला, "अरे, अब मतलब की बात भी तो कहो कि बस यों ही बकवास करती रहोगी।"

"अभी नहीं," स्त्री ने उत्तर दिया, "खाना खा लेने दो, फिर कहूँगी बाद में।"

माँ अपने कौतूहल को न छिपा सकी। उसने प्रार्थना की—"कहो न, अभी तो खाने में देर है।" और वह दम साधकर उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

स्त्री ने बात शुरू करने से पहले गला साफ किया और बोली—"अच्छा सुनो," उसकी छोटी-छोटी तेज़ आँखें घबरा-घबराकर इधर-उधर देख रही थीं और वह बहुत धीमे स्वर में बात कर रही थी, मानो कोई गुप्त बात हो, "शाहज़ादी की तरह रहेगी तुम्हारी बेटी। ऐसा नाक-नक्श, ऐसा रूप किसको नसीब होता है! शहर में तो लोग उसके पीछे पागल हो जायंगे, बिलकुल पागल। उसके तलुए चाटेंगे। जितना चाहेगी खायगी। पहनने को दर्जनों साड़ियाँ होंगी और जेवरों की तो बात न पूछो—सोने की चूड़ियाँ, कंगन, मोती के हार और हीरे की कान की बालियाँ सब कुछ होगा। देखो, मैं तुम्हारे लिए भी एक साड़ी लाई हूँ।" उसने एक बंडल खोलकर उसे दो साड़ियाँ दिखाईं; एक सफेद थी और उस पर चौड़ा-सा लाल किनारा बना हुआ था और दूसरी गहरे आसमानी रंग की थी। "बहन तुमको इनकी बहुत जरूरत है। भगवान की दया थी कि मैं आ गई, नहीं तो जब तुम्हारी यह साड़ी फट कर बिलकुल तार-तार हो जाती तो तुम क्या करतीं? फट तो अभी ही गई है।" वह स्त्री बहुत चालाक थी। वह समझ गई थी कि माँ के पास यही एक साड़ी है।

जब धीरे-धीरे, बहुत धीरे-धीरे, उसकी समझ में आने लगा कि बात क्या है तो वह स्तम्भित रह गई। बौखलाहट के कारण उसके मुख से एक शब्द भी न निकला। इस समय उसकी वही दशा हो रही थी जो अब से घंटे-भर पहले हुई थी जब उसने उस स्त्री को अपने जीवित पुत्र को नदी के किनारे खोदकर गाड़ते हुए देखा था और वह उसे पीछे से देख-कर भी न कुछ बोल पाई थी और न अपनी जगह से हिल ही सकी थी। उसके होंठ काँप कर रह गए।

"उसके पास रहने के लिए एक शानदार घर में अपना एक कमरा होगा। वहाँ केवल भले लोगों को आने की इजाज़त है—शरीफ और धनवान लोगों को। उनके हाथों में पैसा पानी की तरह ऐसे बहता है कि बस पूछो नहीं। आजकल पैसे की गंगा बह रही है। पिछले हजार

बरस में भी किसी ने इतना पैसा नहीं देखा। मुग़ल बादशाहों के ज़माने के बाद से इतना पैसा कभी हुआ ही नहीं। धनवानों के पास इतना पैसा है कि उनकी समझ में नहीं आता है कि उसका क्या करें—वह तो बस पैसा लुटाना जानते हैं, दोनों हाथों से लुटाते हैं। पैसा और होता भी किसलिए है? बस, तुम्हारी बेटी को दो-चार हाव-भाव सीखने पड़ेंगे, बाकी सब ठीक हो जायगा। मैं उसे सब कुछ सिखा दूँगी और जब वह अमीर हो जायगी तो मुझ मोटी-भद्दी औरत को भी जी खोलकर पैसे देगी, मेरा उपकार वह भूल थोड़े ही जायगी।" और यह कहते हुए उसने आँख मारी—"बहन, आज मैं मोटी और भद्दी लगती हूँ, हमेशा से ऐसी थोड़े ही थी। मेरा भी ज़माना था। तुम्हारी कजली की तरह मैं भी सुन्दर थी, [illegible] थी। मेरे गाहकों में एक···"

माँ सहसा बरस पड़ी—"दूर हो यहाँ से, पापिन! चली जा यहाँ से, चुड़ैल!"

उस स्त्री ने नाक-भौं तो बहुत सिकोड़ा, पर उसी प्रकार शान्त स्वर में कहती रही—"ख़फा न हो। सोच-विचार लो। मैं तुमसे यह तो नहीं कहती कि लड़की को इसी क्षण मुझे दे दो। नदी पर हमारी नाव खड़ी है। हम कल रात तक जायंगे। अभी हमको और भी बहुत काम करना है। गाली-गलौज करने से क्या फायदा? सख्त बात कहने से, आँखें दिखाने से तुम्हारा क्या फायदा होगा? तुम्हारे पास अपना निर्वाह करने को है ही क्या? गाय भी तो मालूम पड़ता है नहीं है।" गाय का नाम सुनते ही माँ अपराधियों की तरह चौंक पड़ी। "अगर बीस रुपए काफी नहीं तो मैं पच्चीस दे दूँगी। बस इससे ज्यादा नहीं। वैसे मैंने दस गाँवों में दस दफा इसी हिसाब से रुपये दिये हैं। हमारी पीठ पर बड़े-बड़े लोगों का हाथ है। मुझे तो सिर्फ़ कमीशन मिलता है। बड़ा बुरा समय आ गया है। सारा देश भूखों मर रहा है। तुम्हारे पास भी अपनी बेटी को खिलाने के लिए भोजन

नहीं है। मैं झूठ तो नहीं कहती? जंगली जड़ें खाकर कब तक जिओगी? और महीने-भर में तो बंगाल में पेड़ों की जड़ें भी नहीं मिलेंगी; पेड़ों की पत्तियाँ, हरी-हरी घास, कुछ भी नहीं मिलेगा। सब कुछ लोगों के पेट में चला जायगा। अपनी बेटी को क्यों मारती हो? तुम माँ होकर उसे मरते हुए कैसे देख सकती हो? वह जीते-जी मरी जा रही है। सूख-सूखकर काँटा हुई जा रही है। एक दिन इसी तरह बिलकुल मर जायगी।"

"हट जा यहाँ से, चुड़ैल," माँ ने फिर चीखकर कहा, पर उसकी आवाज़ घुटी जा रही थी। वह स्त्री मुस्कराई, मानो वह सब कुछ जानती हो।

"अभी कल ही की बात है मैं छः बरस की एक लड़की को नाव पर ले गई हूँ। मैंने उसकी माँ को दस रुपए नकद दिये हैं। जब तक वह बढ़कर जवान न हो जायगी हम लोगों को उसे घर में रखकर खिलाना-पिलाना पड़ेगा। हम उसको गाना सिखायंगे, नाचना सिखायंगे, बनाव-सिंगार करना सिखायंगे। और उसकी माँ—पहली बार कोई तीन हफ्ते पहले जब मैं उसके पास गयी थी तो वह मेरे ऊपर शेरनी की तरह गुर्राई थी। कल जब मैं उसके पास फिर गई तो बेचारी ने रो-रोकर अपना जी निकाल दिया और अपना सिर जमीन पर ऐसे दे-दे मारा कि खून बहने लगा। फिर भी उसने अपनी बच्ची को मुझे दे दिया। लेकिन मैं उससे बहुत नाराज़ थी और इसीलिए मैंने उसे दो रुपए कम दिये। इतना झगड़ा-फिसाद करने से नुक्सान उसी का हुआ।" उसकी मुखाकृति कठोर हो गई और उसने माँ को आग्नेय नेत्रों से देखकर कहा—"मुझे झगड़े-फिसाद से बहुत नफरत है।"

माँ क्रोध से काँप रही थी—"अब एक शब्द भी अगर तेरी इस घिनौनी जबान से निकला तो···" और उसने इधर-उधर दृष्टि डाली और छप्पर का गिरा हुआ एक बाँस उसके हाथ लग गया—"एक शब्द भी और कहा, चुड़ैल, तो मैं तेरा मुँह तोड़ दूँगी," कहकर

उसने डंडा जोर से घुमाया। कजली रसोई से भागी-भागी आई और रोकर कहने लगी—"माँ, ओ माँ!"

वह मोटी औरत क्रोध की इस साकार मूर्ति को देख रही थी और अन्दाज लगा रही थी कि अकाल का उस पर कितना प्रभाव पड़ा है। उसके पिचके हुए गाल, गढ़ों में धँसी हुई आँखें, और सूखी हुई खाल में उभरी हुई हँसली की हड्डियाँ! कब तक आखिर वह अपना यह गर्व बनाए रखेगी? और फिर उसकी आँखें बेटी को जाँचने लगीं। भूखी रहने पर भी उसका शरीर बहुत सुडौल था; भूख से मुरझाए हुए चेहरे पर बड़ी-बड़ी आँखें बड़ी सुन्दर मालूम पड़ती थीं। गर्भ होने के कारण उसकी छातियाँ भरी हुई थीं, यद्यपि उचित भोजन न मिलने के कारण वह छोटी-छोटी ही थीं। अकाल से पहले इस प्रकार का सौन्दर्य शहर में किसी ने देखा भी न था। और शहर में नई अनोखी चीज़ की बड़ी कद्र होती है। मोटी औरत ने मन-ही-मन स्वीकार कर लिया कि लड़की इस योग्य थी कि उसके बारे में झगड़ा किया जाय।

"कजली, तूने भात पका लिया?" उसके शब्दों में मधु की-सी मिठास थी।

"अपना अन्न लो और हमारा पीछा छोड़ो," माँ भागी-भागी रसोई में गई और एक क्षण बाद चावल और दाल की बोरियाँ और घी का डब्बा लिये हुए वापस आ गई। और आज के बाद फिर कभी हमारे दरवाजे पर कदम न रखना।

"अच्छी बात है, अच्छी बात है!" उस स्त्री की आँखें कजली पर, उसके बढ़े हुए पेट पर इस तरह जमी हुई थीं जैसे बाज की आँखें अपने शिकार पर होती हैं। कजली की सारी इच्छाएं अब उस जीव के बश में थीं जो उसके गर्भ में बढ़ रहा था। एक दिन अपने बच्चे को जीवित रखने के लिए, उसे भोजन देने के लिए कजली अपने-आपको समर्पण कर देगी।

"अच्छा, जो चावल पक रहा है उसे तो रख ही लो। कम-से-कम

एक वक्त तो पेट-भर खा लो।" स्त्री के शब्दों में सान्त्वना भी थी और व्यंग्य भी।

पर माँ जलते हुए बर्तन को टाट के एक टुकड़े से पकड़े हुए फिर बाहर आई। "लो, यह खाना नहीं जहर है। छिः कूड़ा!" और इतना कह कर उसने खौलता हुआ अधपका चावल-दाल जमीन पर उँडेल दिया। बर्तन से उसका हाथ जल गया था।

उस स्त्री के चेहरे की कृत्रिम मिठास दूर हो चुकी थी और अब उसके चेहरे की कुरूपता नग्न रूप में स्पष्ट हो गई थी। उसे यह सब देखकर बड़ी खुशी हुई। उसने सोचा कि अच्छा ही हुआ नहीं तो वह दिन जिसकी वह प्रतीक्षा कर रही थी कुछ दिन के लिए और टल जाता। इस भोजन से उनकी हड्डियों पर कुछ मांस चढ़ जाता, उनके शरीर में कुछ शक्ति आ जाती। अहा, भगवान् की भी कैसी माया है!

"आओ चलो," वह दुबला-पतला आदमी जो अब तक दूर खड़ा यह सब-कुछ देख रहा था, चिल्लाया। उसके होंठों में सिगरेट लटक रही थी। "जाहिल किसान," उसने तिरस्कार से कहा। "किसानों की खोपड़ी में भी बस भूसा ही भरा होता है। इससे ज्यादा अकल तो गैरैया के होती है," उसने घृणा के भाव से जमीन पर जोर से थूका।

उस स्त्री ने अनाज की बोरियाँ उस आदमी को थमाते हुए चलते-चलते भी एक कड़वी बात कह ही तो दी—"जानवर क्या जानें चावल खाना। उनको तो वही जंगली जड़ें अच्छी लगती हैं।"

अनु फूट-फूटकर रो रहा था। सब चावल चला गया। अब बर्तन में एक दाना भी नहीं रह गया था। बर्तन भी उसके पेट की ही तरह खाली पड़ा था। हवा में केवल पके हुए चावल की सुगन्ध आ रही थी। कजली भी मुँह लटकाए बैठी अपने होंठ काट रही थी; उसकी आँखों में आँसू डबडबा आए थे। माँ उन दोनों को जाते हुए देख रही थी। सहसा एक बात का ध्यान आते ही वह चौंक पड़ी। "मैंने एक वेश्या के हाथ से खा लिया।" वह आगे झुकी और हलक में उँगली

डालकर क़ै करने का प्रयत्न करने लगी। उसके खाली पेट में से कुछ भी नहीं निकला, केवल क़ै करनेके विफल प्रयत्न के कारण क्षीण शरीर थक गया। उसने अपनी उँगली और अन्दर डाली और अपने इस प्रयत्न के कारण वह काँपने लगी। उसकी एक-एक पसली हिल गई और आखिरकार उसे क़ै हो गई।

अनु अपनी दुर्बल टाँगों पर कहीं भागा जा रहा था।

"बेटा, कहाँ जा रहे हो?" माँ ने दम लेते हुए पूछा।

अनु ने एक क्षण के लिए मुड़कर देखा।

"अंजीर के पेड़ तक जा रहा हूँ; और कहाँ जाऊँगा? अभी बिलकुल ऊपर वाली डाल पर लगे हैं," उसने नाक सफा करके बड़े दयनीय स्वर में कहा। फिर उसने अपने हाथ से नाक पोंछते हुए कहा—"कुछ भी हो मैं पेड़ पर चढ़ूँगा, बिलकुल ऊपर तक चढ़ जाऊँगा और फिर पतली डाल टूट जायगी," उसने रोकर आँखें मलते हुए निराशा-भरे स्वर में कहा—"और मैं अंजीर की तरह पेड़ पर से गिर पड़ूँगा, और मर जाऊँगा।"

तेरह

धानी रंग के कालीनों की तरह बिछे हुए खेतों के पार बहुत दूर प्रातःकाल के ललाट पर सूर्य की रक्तिम किरणें प्रकाशमान हो रही थीं और उनकी रोशनी में पुल से थोड़ी दूर पर रेल की लोहे की पटरियों के किनारे-किनारे जाने वाली सड़क साफ दिखाई पड़ रही थी।

यही वह सड़क थी जिस पर होकर उन्मूलित मानवता लड़खड़ाते हुए कदमों से अपने भविष्य की ओर घिसटती चली जा रही थी। यह सड़क इसी प्रकार की सैकड़ों दूसरी सड़कों में से एक थी। और भावी बहुत दूर, बहुत अस्पष्ट और बहुत अनिश्चित था। उनका न कोई भूत था और न कोई भविष्य। वह तो केवल एक क्षण के बाद दूसरे क्षण में और एक श्वास के बाद दूसरे श्वास में पदार्पण करते थे। जब सो जाते तो मालूम पड़ता था कि मर गए हैं, जब जागते तो मालूम होता कि फिर जीवन लौट आया है। वही सड़क उनका घर थी जिसका न कोई आदि था और न कोई अन्त। वह सड़क की धूल ही के समान उसका अभिन्न अंग बन गए थे। इन्हीं को लोग निराश्रित कहते थे।

कजली अपने सहज-स्वभाव से इस बात को समझ गई और मौं भी।

सड़क पर पहुँचकर माँ रुकी और मुड़कर गाँव की ओर देखने लगी।

वह पुश्ता, जिस पर होकर रेल की पटरी जाती थी, उसकी आँखों के आगे दुर्भेद्य भीत के समान खड़ा था। उसे केवल वह हरा घास का मैदान दिखाई पड़ा जो उसने मंगला के चरने के लिए ढूँढ़ा था और जिसके मिलते ही उसने मंगला को क्रूर काल के गर्त में ढकेल दिया था। अनु और कजली की खातिर मंगला हर्ष से अपने प्राण दे देती, पर माँ को यह स्वीकार न था। एक बच्चे के जीवित दफन होने से बचाने के लिए, एक अपरिचित बालक के प्राण बचाने के लिए उसने मंगला की आहुति चढ़ा दी थी। आखिर क्यों? घास के उस हरे-हरे मैदान को देखकर माँ ने हजारवीं बार अपने-आपसे प्रश्न किया—आखिर क्यों?

पर जो हुआ अच्छा ही हुआ। एक निराश्रित के पास गाय का उपयोग ही क्या था? कोई उसे चुरा ले जाता और फिर वह बूढ़ी भी हो गई थी। उसने घर में ही अपना जीवन बिताया था। उसे तो निराश्रित नहीं होना पड़ेगा।

घर छोड़कर उन्हें बहुत व्यथा हो रही थी—ऐसी व्यथा जिसने उनको मूक बना दिया था। वह धरती आज उससे छूट रही थी जिसमें उसके जीवन की जड़ें थीं, वह धरती जिसमें उसके पति के जीवन की जड़ें थीं। यद्यपि पुलिस उनको पकड़कर ले गई थी, पर उनका अदृश्य अस्तित्व, उनका संगीतमय स्वर, उनकी खिली हुई हँसी, ऐसा लगता था कि सारे घर पर छाए रहते थे। वह घर ही उनका मन्दिर था—आँगन में तुलसी का वृक्ष था; एक ताक में देवता की मूर्ति रखी थी और सारे वातावरण में उनके पूर्वजों की आत्मा वास करती थी।

पर वही मन्दिर उनके लिए मृत्यु-पाश बन गया। अब वहाँ भूख के सिवाय कुछ भी न था, आशा की एक किरण भी नहीं। उनके पड़ोसी और मित्र एक-एक करके सब गाँव छोड़कर चले गए थे, पर वह अन्तिम आशा रहने तक अपने घर के साथ चिपटे रहे। अब उनको उस दुर्गम मार्ग पर अकेले ही जाना था; कोई साथ जाने वाला न था—माँ, उसकी गर्भवती बेटी और एक छोटा-सा बालक, न कोई सहायक और न कोई

संरक्षक। उन लोगों को छोड़कर, जो पुलिस की गोलियों से बिलकुल अपंगु हो गए थे और अपने बीवी-बच्चों समेत उस गाँव में अपनी हड्डियों को वहाँ की धरती में विलीन करने के लिए रह गए थे, उस गाँव में और कोई न रह गया था।

कल शाम को गोधूलि-वेला के समय माँ ने संध्या देवी का स्वागत करने के लिए तीन बार शंख बजाया था। पिछले सहस्रों वर्षों से गाँव में संध्या देवी का स्वागत इसी प्रकार होता आया था। कजली ने भी तीन बार शंख बजाया था और अनु ने भी। फिर माँ ने अपनी यह अन्तिम सम्पत्ति भी बनिए के हाथ एक मुट्ठी नाज के बदले बेच दी थी।

वह बनिया गाँव में ही ठहरा हुआ था। वह लोगों की जमीनें और उनकी बची-खुची सम्पत्ति खरीद रहा था। उसका जनता से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह जनता के दुःखों का फायदा उठाकर गिद्ध की तरह उनको नोच-नोचकर खा रहा था।

उस गिद्ध की ललचाई हुई दृष्टि माँ के खेतों पर भी जमी थी, पर वह उनको कभी न पा सकेगा—कभी नहीं। वह जमीन बिलकुल सुरक्षित रहेगी और जब घर के मर्द वापस आ जायंगे तो वह उसका उपयोग करेंगे। पर जाड़े की फसल तो गिरवी हो चुकी थी। जमींदार का लगान चुकाने के लिए सारी-की-सारी फसल बाजार-भाव से भी बहुत कम पर गिरवी रख दी गई थी। खेत उगते हुए धान के हरे-हरे पत्तों से लहक उठे थे, पर यह अनाज तो उस बनिए के लिए ही पक रहा था।

"अच्छा, तो तुमने अपनी जाड़े की फसल तो मजे के साथ पहले से ही खा ली," बनिए ने हँसते हुए कहा; "मजे के साथ खाई तो तुमने और फसल काटने की मुसीबत मेरे सिर डाल दी।"

बनिए ने धरती माता को अपने जाल में फाँस लिया था और उसे मजबूती के साथ जंजीरों में जकड़ दिया था।

"माँ!" कजली ने जोर से पुकारा और माँ के भ्रमण करते हुए

विचारों को रोक दिया, "वह देखो, उधर," उसने लोगों के एक समूह की ओर संकेत किया जो सड़क पर उन्हीं की तरफ आ रहे थे।

वह पास आ गए—मर्द और औरतें, लड़के और लड़कियाँ, कमरें झुकी हुई, सिर निढाल, सबके पास चीथड़ों की पोटली थी और वह घिसटते हुए धीरे-धीरे चल रहे थे—बहुत धीरे-धीरे। वह सब लोग किसी एक ही चित्र का भाग मालूम होते थे—दीवार पर पत्थर में कटे हुए किसी चित्र की आकृतियाँ। उनमें से एक ने पूछा—"माँ, कलकत्ता जायंगे, अभी कितनी दूर और है ?" प्रश्न करने के लिए न तो वह रुका और न उसने अपना सिर उठाया।

माँ चौंक पड़ी। उन दुःखी प्राणियों के प्रति उसका हृदय सम-वेदना से भर आया। उसे इस बात का भय होने लगा कि वह स्वयं भी और उसके बच्चे भी इसी दुर्दशा को पहुँच जायंगे।

"दूर है, अभी बहुत दूर है," उसका स्वर बहुत क्षीण था।

"अभी दूर है," उस आदमी ने दुहराया और आगे बढ़ गया।

माँ भी उसके पीछे हो ली—"कहाँ से आ रहे हो, बेटा ?"

"विष्णुग्राम से।"

"क्या बहुत दिन हो गए तुमको चले हुए ? कितने दिन हुए होंगे ?"

"बहुत दिन हो गए। किसे याद रहता है ? बस इतना याद है कि कृष्ण पक्ष के बीच में कभी चले थे।"

और इस समय रात्रिकाल की अन्तिम घड़ियों में हँसिया का ऐसा पतला ज्योतिहीन चाँद आकाश पर डूब रहा था। इस गति से चलकर तो वह कलकत्ता शायद कभी भी न पहुँच पायं।

"आओ चलें," माँ ने अपने बच्चों से कहा और तीनों ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से गाँव की ओर फिर एक बार देखा और जो सिसकियाँ फूट पड़ने को आतुर थीं उनको उन्होंने गले में ही पी लिया और दूसरे लोगों से कुछ दूर उनके पीछे-पीछे चल पड़े। वह निराश्रित उनसे भी ज्यादा

थके हुए थे और उनकी कोई सहायता न कर सकते थे, पर फिर भी उनकी उपस्थिति से ही उनको काफी शक्ति मिल रही थी, क्योंकि वह भी उनकी ही तरह साधारण जनता का ही एक भाग थे। आनेवाले पहाड़-जैसे दिनों में और लम्बी रातों में उनको अपने-जैसे लोगों की ज़रूरत पड़ेगी। यदि मरना भी पड़े तो अपने-जैसे दूसरे जन-साधारण के साथ मरना अच्छा था।

वह आगे बढ़ते जा रहे थे और उनके साथ-साथ उनका घर भी जा रहा था। वह किसी प्रकार अपने घर का विचार अपने दिमाग से निकाल ही न पाते थे। सारी रात वह जरा भी न सोए थे। उस घर की छत के नीचे वह उनकी अन्तिम रात थी, जिसमें उन्होंने इतने दिन तक शरण पाई थी। इधर-से-उधर अँधेरे में भटक-भटककर सारी रात उन्होंने काट दी थी—कभी कोठरी के फर्श पर, कभी बरामदे में, कभी आँगन में। हफ्तों हो गए थे, दिए में जलाने के लिए उनको तेल नसीब न हुआ था। रात के पिछले पहर उठकर उन्होंने हाथ-मुँह धोया और घर का बचा-खुचा आखिरी अन्न खाकर घर की ड्योढ़ी के बाहर हो गए। फिर भी उन्होंने घुटनों के बल झुककर देहरी पर माथा टेका और प्रार्थना की : भगवान करे हम जल्दी ही लौटकर तेरी शरण में आयें।

अब, जबकि घर अपने वासियों से खाली हो गया था और एक अदृश्य निराकार रूप में उनके साथ हो लिया था, तो उन कठिनाइयों को तो कोई याद बाकी न रह गई जो उस घर में उन लोगों को सहन करनी पड़ी थीं, केवल वह सुख याद रह गए जो उन्होंने उस घर में पाये थे। फिर भी एक कष्टदायक विचार उनको रह-रहकर सताता था—यदि घर के मर्द एक-एक करके लौटकर आये तो क्या होगा? कनु, कनु का पिता और किशोर—वह आयंगे और घर को खाली पाकर उल्टे पाँवों लौट जायंगे।

कुछ दूर चलने के बाद वे एक बहुत बड़े इमली के पेड़ के पास पहुँचे, जिसके नीचे कुछ लोग बैठे कुछ पका रहे थे, जो देखने में किसी

पेड़ की पत्तियाँ मालूम होती थीं। धूप तेज पड़ रही थी। कजली अपने गर्भ के भार के कारण और सिर पर लदे हुए बंडल के बोझ से दबी हुई हाँफ रही थी। एक-एक बंडल सबके पास था। खाना पकाने का एक बर्तन, एक लोहे का चमचा, कुछ छोटा-मोटा माल-असबाब और अनु के लिए एक पतला-सा गद्दा, जो केवल इतना चौड़ा था कि बस वह उस पर सीधा लेट सकता था। माँ और कजली जमीन पर ही सो जाते थे, पर अनु गद्दे पर सोता था, क्योंकि खाली जमीन पर सोने से उसकी रीढ़ की हड्डी गड़ती थी। और वह इसी प्रकार आगे बढ़ते रहे। कुछ दूर चलने के बाद एक और समूह दिखाई दिया। आश्चर्य की बात थी कि यह समूह भी बिलकुल पिछले समूह-जैसा ही था। सब एक ही चित्र के अंग मालूम पड़ते थे—दीवार पर पत्थर में कटे हुए किसी चित्र की आकृतियाँ। जब दिन ढलने लगा और भूख उनको बहुत सताने लगी और उनके पैरों ने जवाब दे दिया तो वह ठहर गए, इधर-उधर से कुछ सूखी लकड़ियाँ जमा करके आग सुलगाई और काचू की जो जड़ें उनके पास थीं उनको पकाने की तैयारी करने लगे। यह जड़ें कल की बची हुई थीं। कल उनको और जड़ें ढूँढनी पड़ेंगी। माँ के हृदय में भय समाया हुआ था। उस राह से होकर उनसे पहले और भी अनेकों निराश्रित गये थे और रास्ते में वह जड़ें खोदकर या पत्तियाँ तोड़कर ही अपने भोजन का प्रबन्ध करते थे। कलकत्ते की उस औरत के भयानक शब्द माँ के कानों में प्रतिध्वनित हो रहे थे—"जड़ें? जंगली जड़ें खाकर कब तक जिओगी? और महीने-भर में तो बंगाल में पेड़ों की जड़ें भी नहीं मिलेंगी। पेड़ों की पत्तियाँ, हरी-हरी घास, कुछ भी नहीं मिलेगा—" इस बात को बीते एक माह हो चुका था।

माँ को अभी इस बात का अच्छी तरह अन्दाज़ा नहीं था कि उसके पहले कितने असंख्य लोग भूख से व्याकुल होकर उससे आगे जा चुके थे और कितने ही उसके पीछे आ रहे थे। लाखों लोग अपनी भूख मिटाने के लिए शहर की ओर चले जा रहे थे। उनमें से बहुतों को तो लक्ष्य

तक पहुँचने की आशा ही नहीं थी। उनका प्रत्येक पग उनके जीवन के बचे-खुचे भाग के एक अंश का अन्त कर देता था। वह मानवता का नीरस कंकाल होकर रह गए थे। पर फिर भी वह मानवता का ही एक भाग थे—कजली, अनु, माँ; कजली के पिता और इन्हीं-जैसे दूसरे परिवार। यही लोग जन-साधारण कहलाते थे, जिनमें सोचने की शक्ति थी, जिनके पास दुःख-सुख अनुभव करने की क्षमता थी, और यही आन्तरिक गुण अब एक श्राप बन गए थे, क्योंकि भूख की व्यथा को सहन करना इतना कठिन नहीं है जितना आत्मा की पीड़ा को। माँएं अपने प्राण अधिक आसानी से दे सकतीं, यदि उनकी आँखों के सामने उनके दिन-प्रतिदिन सूखते हुए, दिन-प्रतिदिन मौत के निकट जाते हुए बच्चों का चित्र न होता। और इन बच्चों के इस प्रकार घुल-घुलकर मरने का कारण कोई रोग नहीं था, और न वह जापानी शत्रु ही था जिसका डर दिखाकर सारा अन्न उनसे छीन लिया गया था। वह एक दीर्घकाल की निरन्तर भूख के कारण मर रहे थे, पर उसको दूर करने का कोई उपाय नहीं था, कोई नहीं।

क्या कोई उनकी सहायता नहीं करेगा? अपने जीवन के अच्छे दिनों में उन्होंने अपनी चावल की फसल का कितना बड़ा भाग जमींदार को दिया था। क्या वह भी मदद नहीं करेगा? खेतों में इतना अनाज हो रहा था, आशा की जाती थी कि अबकी बार फसल बहुत अच्छी होगी; कितना कटु व्यंग्य था। और क्या *गौरमिण्ट* भी मदद न करेगी; वह तो जनता की माई-बाप है? वह व्यापारी जो गाँव में आया था उसने इस प्रश्न का उत्तर दे दिया था जो गाँव में हर व्यक्ति के होंठों पर था—"तुम्हारा काम है कि *गौरमिण्ट* को खिलाओ न कि *गौरमिण्ट* तुमको खिलाए। और अभी साल-भर पहले तुमने *गौरमिण्ट* के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी, याद है? तुम *गौरमिण्ट* को पापी कहते थे, याद है? अपने माई-बाप को गाली देने के पाप का यही फल

होता है। अब जब विपदा आन पड़ी है, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?"

गौरमिण्ट—हमारी माई-बाप! ठीक है! बहुत दिनों की बात नहीं है, सरकार को लोग आम तौर पर यही कहा करते थे। पर अब ऐसा मालूम पड़ता था कि उन दिनों को बीते शताब्दियाँ हो गई थीं; एक युग बीत गया था। जो नाम पहले हर-एक की जबान पर था आज वही नाम बहुत अजीब और व्यंग्यपूर्ण मालूम पड़ता था।

हमारे माई-बाप—उसी माई-बाप सरकार का एक बड़ा अफसर अभी कुछ दिन हुए उस गाँव में आया था जहाँ बाजार लगता था। नदी से गाँव का रास्ता कोई तीन घंटे का रहा होगा। उसके आने से पहले सारे बरूनी में एक-एक खेत पर एक-एक गली में डुग्गी पीट-कर उसके आने की सूचना दी गई थी। डुग-डुग-डुग! भाइयो, आप सबसे प्रार्थना है कि कल सबेरे रंगमती के बड़े बरगद के नीचे आप सब लोग जमा हों। डुग-डुग-डुग! सरकार के बड़े अफसर आये हैं, वह आप लोगों को कुछ बातें बतायंगे। डुग-डुग-डुग!···और इस घोषणा के आधार पर बरूनी का सारा गाँव-का-गाँव रंगमती की ओर चल पड़ा था। सबके पेट खाली थे और सबके दिल धड़क रहे थे। फिर दोपहर के करीब उस महान् विभूति के दर्शन हुए। वह एक जीप गाड़ी में बैठ-कर आये थे। एक ऊँचे-से चबूतरे पर, जिस पर लाल सालू का फर्श बिछा हुआ था, एक गद्देदार कुरसी बिछी हुई थी। वह आकर बड़ी शान से उस कुर्सी पर विराजमान हो गए। फिर उन्होंने पाँच गाँवों के लोगों के सामने, जो वहाँ एकत्रित हुए थे, भाषण दिया। उन्होंने जापानी शत्रु के बारे में कुछ कहा, फिर उस भीषण नरमेध का कुछ वर्णन किया, फिर स्वयं हिन्दुस्तानी पल्टन की वीरता की गाथा सुनाई। उन्होंने कहा कि पल्टन के सिपाही हमारे भाई हैं, वह हमारी ही तरह हैं। उन्होंने दुनिया-भर की बातें कीं, पर असली बात नहीं की। आखिर वह उसका जिक्र कब करेंगे? जब वह आखिरकार चुप हो गए और

उन्होंने एक कच्चे नारियल का पानी पी लिया तो पाँचों गाँवों के लोगों ने, जो वहाँ जमा थे, एक स्वर में पूछा—"...[illegible] और हमारी बात ?" उनका यह प्रश्न एक करुण रुदन की तरह गूँज गया। वह सूरज की तपती हुई धूप में घंटों आस लगाए बैठे रहे थे कि किसी भी क्षण उनके मतलब की बात कही जायगी। एक बार फिर करुण रुदन का स्वर उठा—"हमारी बात, मालिक !" अन्न, अन्न, आज अन्न के अतिरिक्त कोई बात उनके लिए असली बात नहीं थी। पाँच गाँवों के लोगों ने धीरज के साथ उस सर्वशक्तिमान सरकारी अफसर के पाँच हजार झूठे शब्द सुने थे, केवल इस आशा में कि बाद में उनको वह सच्चा शब्द सुनने को मिलेगा जिसके लिए वह इतने बेचैन थे—अन्न। फिर बरूनी के बूढ़े जमींदार ने आगे बढ़कर उनके कान में कुछ कहा और वह *गौरमिण्ट* का महान् दूत विचलित हो उठा; क्रोध में उसने अपनी काली भवें सिकोड़ लीं और पत्थर की मूर्ति की तरह गम्भीर मुद्रा बनाये अपनी जीप में बैठकर चला गया। वह असली शब्द न कहा जाना था, न कहा गया। जनता की भूख के लिए अन्न का प्रबन्ध होने की कोई आशा न थी। पाँच गाँवों के लोग तीन घंटे पैदल चलकर रंगमती के बरगद के नीचे बेकार जमा हुए थे। बिलकुल बेकार और सूरज की तपती हुई धूप में फिर तीन घंटे चलकर अपने-अपने गाँव वापस चले गए। उनके खाली पेटों में केवल पाँच हजार अर्थहीन झूठे शब्द डाल दिये गए थे।

···पेड़ों पर गिद्ध बैठे थे; आकाश पर गिद्ध मँडरा रहे थे, सूरज की चमकती हुई धूप में गिद्ध वायुमंडल में पर साधे हुए उड़ रहे थे। असंख्य गिद्ध बंगाल के देहातों पर अपनी नजरें जमाये हुए थे। उस दिन जैसे-जैसे दिन ढलता गया, यह बात माँ की समझ में आती गई कि यह गिद्ध अपना काम किस खूबी के साथ पूरा कर रहे थे।

सड़कों के किनारे लाशों की ठठरियों के ढेर लगे हुए थे। शरीर का सारा मांस गिद्धों ने खा लिया था, केवल हड्डियाँ दिखाई पड़ रही

थीं; आँखों की पुतलियाँ निकल जाने के कारण आँखों के गढ़े वीभत्स मालूम पड़ते थे; ठोड़ी पर या नाक पर या पसलियों पर जो थोड़ा-सा मांस या खाल लगी हुई थी वह सड़ रही थी; चोंचें मार-मारकर गिद्धों ने उनकी खोपड़ियाँ फोड़ दी थीं, केवल बाल खाने से बच गए थे—बच्चों के घुँघराले बाल, मर्दों के बाल, औरतों के कमर तक लम्बे बाल। एक परिवार चिर-निद्रा में सो रहा था; और इस निद्रा के बाद केवल गिद्ध-ही-गिद्ध थे।

माँ काँप उठी और अपने दोनों बच्चों का हाथ पकड़कर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गई।

गिद्धों की खाई हुई लाशों से किसी प्रकार पीछा ही नहीं छूटता था। कभी सड़क के किनारे पड़ी दिखाई दे जातीं, कभी कुछ हटकर पेड़ के नीचे, कभी झाड़ियों के पीछे, पर हमेशा एक-एक स्थान पर कई लाशों का समूह एक-साथ दिखाई पड़ता था। कुछ ऐसी थीं जो अभी पूरी तरह नहीं खाई गई थीं और गिद्ध उन पर बैठे हुए चोंचें मार रहे थे। कुछ दूर पर कौओं का एक झुण्ड बैठा हुआ इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि उनकी बारी कब आयगी। चारों ओर गृहस्थी की छोटी-मोटी चीजें बिखरी पड़ी थीं—मिट्टी के बर्तन, कंघियाँ और सिन्दूर रखने की काठ की डिब्बियाँ, गन्दी गुड़ियाँ, खिलौने, गद्दे, तकिए और तरह-तरह का सामान। घर छोड़ने के बाद इधर-उधर मारे-मारे फिरने के लिए भी कुछ लोग तकिए साथ लेकर निकले थे।

सड़क से सौ गज दूर ही रेल की पटरी थी जो अपने ऊँचे पुश्ते पर दूर तक चली गई थी। कभी दूर तक सीधी चली जाती, कभी हँसिया की तरह मुड़कर आकाश में खो-खो जाती। कभी-कभी कत्थई रंग के डिब्बों की एक शृङ्खला उस पर जाती दिखाई देती, जिसके फुटबोर्ड पर सैकड़ों आदमी बन्दरों की तरह लटके रहते थे। क्या शहर इसी तरह जाना पड़ता है? माँ इस विचार से काँप गई। नहीं, वह ऐसा कभी नहीं कर सकती। यदि उसके बच्चों का हाथ छूट गया और वह

गिर पड़े तो क्या होगा ? माँ ने उनके हाथ कसकर पकड़ लिये। उसका हृदय भय और आशंका के कारण जोर-जोर से धड़क रहा था। वह इसी तरह सड़क के रास्ते चले जायंगे—अनु उसका बायाँ हाथ पकड़े और कजली दाहिना। अगर तीन सप्ताह तक भी इसी तरह चलना पड़ा तो वे सहन कर लेंगे। तीन घंटे तक फुटबोर्ड पर लटककर चलने से यह कहीं अच्छा था। यदि अनु कहीं रेल की तेज गति के कारण फिसलकर गिर पड़ा तो क्या होगा ? वह चंचल तो वैसे ही है। यदि कजली को कहीं चक्कर आ गया और वह गिर पड़ी तो क्या होगा ? माँ ने उनके हाथ और कसकर पकड़ लिये।

उसके हृदय में शक्ति के नए स्रोत फूट रहे थे। इस महान् संकट के समय अपने बच्चों की खातिर उसमें न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गई थी और उसके बच्चों में भी माँ की खातिर और एक-दूसरे की खातिर अधिक शक्ति पैदा हो गई थी। यदि उनमें से एक भी कमजोर पड़ता तो तीनों का सत्यानाश हो जाता।

जब रात अधिक हो गई तो उन्होंने दिन के उबले हुए चावलों को बची हुई जड़ों के साथ खा लिया और एक बड़े-से पुराने इमली के पेड़ के नीचे सोने के लिए लेट गए। वह भी लाशों के उन समूहों की तरह सरदी से बचने के लिए और एक-दूसरे को ढाढस बँधाए रखने के लिए एक-दूसरे से चिमटकर लेट गए। अनु ने एक हाथ माँ के चारों ओर डाल रखा था और कजली ने भी। रात्रि की गहन कालिमा उनको दबोचे ले रही थी; रात्रि का घोर अन्धकार उनकी आत्माओं पर एक बोझ के समान लग रहा था। उल्लू बोल रहे थे और सियार आवाजें मिलाकर रो रहे थे। ऐसा लगता था कि आस-पास कम-से-कम बीस सियार होंगे। वह इन बोलियों से परिचित थे, पर इस बीहड़ मैदान में लेटे हुए उनको यह बोलियाँ बहुत डरावनी लग रही थीं। यदि सियार आकर सोते में उनको अपने थूथन से सूँघें या सोते में उनको काट लें तो क्या होगा ? अगर लाल चींटियाँ आ गईं तो क्या होगा ?

और अगर साँप-बिच्छू हुए तो क्या होगा? इसी प्रकार आधा घंटा बीत गया। सहसा किसी के सिसकने की क्षीण और शोकग्रस्त आवाज से वातावरण काँप गया। ऐसा लगता था कि यह स्वर इमली के पेड़ पर से आ रहा है। फिर ऐसा लगा जैसे दस-बारह रोगी बालक एक साथ बिलख-बिलखकर रो रहे हैं। अनु माँ से चिपट गया, वह काँप रहा था और कजली भी।

"डरो नहीं, भूत नहीं है," माँ ने उनको धीरज बँधाया। वह इमली के घनघोर अन्धकार में घूर-घूरकर देख रही थी और एक हाथ से अपने बेटे को रक्षा किये हुए थी और दूसरे से अपनी बेटी की। "गिद्धों के बच्चे हैं," उसने समझाते हुए कहा।

वह अपने पाँव बटोरकर ज्यों ही सोने को तैयार हुए उनको ऐसा लगा जैसे अँधेरे में से किसी की आँखें उनको घूर रही हैं—पेड़ पर से गिद्धों की आँखें और मैदान से जंगली जानवरों की आँखें। मालूम पड़ता था कि वह पूछ रही हों—क्या तुम लोग मर रहे हो? क्या तुम लोग मर गए हो? गिद्धों की पैनी चोंचें उनको खाने के लिए तैयार थीं। खूँखार दाँतों में जबानें लपलपा रही थीं।

माँ को ठीक तरह नींद नहीं आई। वह बड़ी देर तक जागती रही—अपने बच्चों की रक्षा करने के विचार से। रात के अन्धकार में सहसा कहीं से जुगनुओं का एक झुण्ड चमकने लगा और यकायक ऐसा मालूम पड़ा कि वातावरण में असंख्य चिंगारियाँ जगमगा उठी हैं। माँ बड़ी देर तक पड़ी उनको देखती रही और उनके कोमल सौन्दर्य से उसे बड़ी सांत्वना मिली, मानो वह प्रकाश के छोटे-छोटे बिन्दु अनन्त प्रकाश की उस महामूर्ति के प्रतीक थे, उसका सन्देश थे। मानो वह कह रहे हों असंख्य दीपों वाले नगर की ओर बढ़े चलो! मानवता की नगरी की ओर! सभ्य जीवन की नगरी की ओर! देखो कहीं ऐसा न हो कि उस नगर की सहिष्णु सड़कों पर पहुँचने से पहले ही तुम्हारे पाँव जवाब दे दें!

उसके हृदय में केवल एक आशा रह-रहकर जागृत हो उठती थी—

वहाँ शहर में देवता का पोता रहता है। वह उनकी सहायता जरूर करेगा, यद्यपि वह उसके पास सहायता के लिए भीख माँगने नहीं जायंगे। पर कजली ने इस आशा को स्वीकार न किया था। उसने अपना मुँह सिकोड़कर माँ से कहा था—"माँ, वह अमीर लोग हैं, वह हमको पहचानेंगे भी नहीं। धन उनके पास बहुत है पर उनकी याद बहुत थोड़ी है।" "कजली, तू यह क्यों भूलती है कि वह किसका पोता है? उसको हमारे दुःखों का बस पता भर चल जाय," माँ ने उसको समझाने का प्रयत्न किया था। पर कजली ने अपना सिर हिलाकर मुस्कराते हुए कहा था—"उनको हमारी याद भी न होगी, माँ।" और यह कहकर कजली को अपने दादू की याद बुरी तरह सताने लगी जो देहरादून के जेल में बन्द थे। वह मुस्करा रही थी, पर ऐसा लगता था कि जैसे रो रही हो।

जब प्रातःकाल होने को आया तो माँ की आँखें थकावट के कारण बन्द हो गईं और वह सो गई। कजली की आँख खुल गई और वह उठकर बैठ गई। रात्रि के भार से उसके अंग शिथिल हो गए थे और उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि उसके पेट में उसका बच्चा हिल-डुल रहा है। तू जाग रहा है? कजली ने अपनी नाभ को छूकर शब्दहीन स्वर में कहा, मानो अपने अनजने शिशु का आलिंगन कर रही हो। उसके जीवन के सब यौवनमय मृदु सपने ख़त्म हो चुके थे; बस केवल एक यही बाकी रह गया था। कजली अब भी अपने अनजने पुत्र के विषय में तरह-तरह की कल्पनाएं करती रहती थी।

पक्षी अपने कलरव से ऊषा देवी की वन्दना कर रहे थे। उनका हर्षमय संगीत कोमल खेतों पर गूँज रहा था, जहाँ अनाज से लदे हुए हरे-भरे पौधे लहलहा रहे थे और भूख से मरने वालों की लाशें अकड़ी पड़ी थीं। कु-हू! एक आवाज आई, पर शोक में डूबी हुई कजली ने सुना नहीं। उसके मन की कोकिल मर चुकी थी।

जड़ें, जंगली बेर, यही विचार उसको सदा चिन्तित किये रहते थे,

यही उसका जीवन-संगीत था। वह सोच रही थी कि दिन चढ़ने से पहले यदि कुछ जड़ें और कुछ जंगली बेर मिल जायं तो अच्छा है। माँ को सोने दो। माँ पिछले कुछ ही दिनों में कितनी बूढ़ी लगने लगी थी; उसके क्षीण चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। साल-भर पहले उसके चेहरे पर एक भी झुर्री का चिह्न ढूँढ़े नहीं मिलता था। उसके सारे बाल सन की तरह सफेद हो गए थे। माँ को सोने दो। कजली ने बड़े उत्सुक नेत्रों से बड़े स्नेह के साथ माँ को देखा और उसके घने सफ़ेद बालों पर बड़े आहिस्ता से हाथ फेरा कि कहीं माँ जाग न जाय। फिर वह उठी और मैदान की ओर चल दी। घास पर रात की गिरी हुई ओस की बूँदें चमक रही थीं।

पर जड़ों का कहीं नाम-निशान तक नहीं था। सारे मैदान की जड़ें खोद ली गई थीं। अगर उनको खाने के लिए कहीं भी जड़ें न मिलीं तो अनर्थ हो जायगा। इससे तो अच्छा होता कि वह लोग गाँव में ही पड़े रहते, कम-से-कम अपने पूर्वजों की पुण्य धरती पर तो मरते। कजली की आँखों में आँसू छलक आए। उसने उनको पोंछ डाला। उसके पति ने उसके पास कोई सन्देश क्यों नहीं भेजा? क्या उसे रेल पर बैठने को नहीं मिला? क्या वह इसी दुर्गम मार्ग पर अकेला ही चल पड़ा था और रास्ते में कहीं बीमार होकर गिर पड़ा था? उसकी विद्रोही आत्मा के कारण लाल पगड़ी वालों ने कहीं उसे फिर जेल में तो नहीं डाल दिया? वह बस केवल इतना जानना चाहती थी कि वह अच्छा है। केवल इतना जानकर ही उसके हृदय को चैन पड़ जायगा। वह इससे अधिक और कुछ नहीं जानना चाहती थी कि उसका पति जिन्दा है और मजे में है। यदि उसे केवल इतना मालूम हो जाय तो वह हर प्रकार की विपदा को सहन कर लेगी। उसकी आँखों में और आँसू उमड़ आए, उसकी आँखों के चारों ओर गर्भ के कारण और थकावट से काला घेरा पड़ गया था।

एक कटहल के पेड़ के पास आकर वह रुक गई। उसने सोचा कि

पेड़ को चारों तरफ से देखे शायद कोई कटहल लगा रह गया हो। यद्यपि इसकी आशा नहीं के बराबर थी। इतने में उसे किसी के कराहने की आवाज सुनाई दी। वह चौंककर अलग हट गई और उसने एक अत्यन्त भयानक दृश्य देखा।

एक स्त्री पेड़ के पास पड़ी हुई कराह रही थी और एक सियार उसके शरीर को खा रहा था। सियार ने कजली को देखा और गुर्राकर बड़े सन्तोष के साथ एक तरफ़ को हट गया। वह एक क्षण के लिए रुका और फिर मुड़कर गुर्राता हुआ दूसरी तरफ को चल दिया।

कजली स्तम्भित खड़ी रह गई। उसे वह जख्म दिखाई दे रहा था जहाँ सियार ने उस स्त्री को नोचना आरम्भ किया था। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं और दोनों हाथों से अपने वक्षस्थल को दबा लिया। उसे मतली हो रही थी। उसके हृदय में से एक हल्की-सी आवाज़ आई—आगे बढ़कर उस मरती हुई स्त्री की सहायता करो। पर कजली मुड़कर भाग गई। हाँफती हुई वह अपने पेट को दोनों हाथों से पकड़े पागलों की तरह घबराई हुई भाग रही थी, मानो कोई दीवाना आदमी उसका पीछा कर रहा हो।

माँ उसे ढूँढ़ती हुई उसी तरफ आ रही थी। कजली दौड़कर उसकी बाँहों में गिर पड़ी और सिसक-सिसककर रोने लगी। वह बिलख-बिलखकर रो रही थी—बिलकुल पागलों की तरह—उसे अपने-आप पर बिलकुल काबू न रह गया था। माँ उसे धीरज बँधा रही थी, एक अज्ञात भय उसके हृदय में समाया हुआ था। "कजली, क्या हुआ? कुछ बता तो। न रो, कजली, तू रोयगी तो बच्चे को कष्ट होगा। माँ को तो बता दे क्या हुआ।"

आखिरकार कजली ने अपने-आपको वश में कर लिया। वह मुड़ी और बोली—"माँ, इधर आओ।"

जब वह कटहल के पेड़ के पास आ गए तो कजली के कदम रुकने लगे। उसने संकेत करके कहा—"वह देखो माँ, वहाँ। एक सियार उसे

खा रहा था।" और वह इस बात का प्रयत्न करने लगी कि कहीं उसे फिर दौरा न पड़ जाय। वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ी। माँ आगे चलती चली गई।

सियार ने उस स्त्री का बायाँ स्तन, बगल और पसलियों का कुछ भाग खा लिया था। वह अभी तक साँस ले रही थी; उसकी आँखें खुली हुई थीं पर बिलकुल शून्य थीं। माँ को ऐसा अनुभव होने लगा कि एक क्षण में उसका लहू जम जायगा।

थोड़ी दूर पर एक तालाब था। माँ भागकर उसके निकट गई और अपनी साड़ी का आँचल पानी में भिगो लाई और उस स्त्री के मुँह में निचोड़ दिया। वह स्त्री बड़ी देर तक दृष्टि जमाए उसको देखती रही। ऐसा प्रतीत होता था कि अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों में एक साथी पाकर उसे बड़ा सन्तोष हो रहा था। फिर उसकी आँखें बन्द हो गईं, पानी उसके मुँह से बाहर बह गया और वह मर गई।

माँ ने ऊपर देखा कि गिद्ध आकाश पर मँडला रहे हैं और किसी क्षण भी उस स्त्री की लाश पर टूट पड़ने को तैयार हैं। दैव के भेजे हुए भंगी! यदि वह न होते तो सारे बंगाल का वातावरण मनुष्य के माँस की सड़ाँद से दुर्गन्धमय हो जाता। मनुष्य जीवित मनुष्यों के लिए कुछ नहीं कर पाते थे, फिर वह मुर्दों का ध्यान किस प्रकार रख सकते थे?

इतने में माँ ने देखा कि जमीन के बिलकुल पास ही पेड़ पर एक कटहल लगा हुआ है। खुरदरी हरी छाल का कटहल काफी बड़ा था और पकने के निकट था। यद्यपि उस डरावनी सियार की खाई हुई लाश को देखकर माँ बहुत दुःखी हो गई थी, पर कटहल को देखकर मारे हर्ष के वह मूर्च्छित-सी हो गई। उस एक कटहल से उसकी और उसके बच्चों की जान दो-तीन दिन तक के लिए बच जायगी। कटहल उस लाश के बिलकुल पास ही लगा था—प्रायः उसके पैरों से लगा हुआ। शायद उस स्त्री ने उस कटहल को देखा था, और अपने इस अमूल्य भोजन

को पकाकर खाने के अभिप्राय से आग जलाने जा रही थी कि इतने में उसकी शक्ति ने जवाब दे दिया। वह लेट गई और सियार ने उसे आकर खाना शुरू कर दिया। पेड़ के पास सूखी हुई लकड़ियों पर रखी हुई हांडी मानो यह कहानी कहकर सुना रही थी।

कजली पर अभी तक उस घटना का प्रभाव था। वह जानती थी कि उस कटहल को खाकर उसे कै हो जायगी, पर फिर भी विवश होकर वह खायगी। वह और कर ही क्या सकती थी?

× × ×

बहुत ठंडी हवा चल रही थी। वर्षा हो जाने के कारण हवा में नमी और तेजी थी। कजली अपने मैले-कुचैले चीथड़ों में काँप रही थी और अपनी छातियों पर दोनों हाथ बाँधे ठिठुरी जा रही थी। उसके दोनों हाथों में किन्हीं अज्ञात पेड़ों की मोटी-मोटी विकृत जड़ें थीं। घंटों के परिश्रम के बाद बंगाल की शस्य-श्यामला भूमि से उसे केवल यही प्राप्त हो सका था। हजारों दूसरे हाथों ने सारी धरती को बिलकुल खाली कर दिया था; धरती की सारी जड़ें खोदकर, पकाकर खा ली गई थीं।

वह छः दिन जो उसने इस मार्ग पर बिताए थे उसके पाँव में असह्य वेदना की छः भारी जंजीरों की तरह लग रहे थे। पिछले दो दिन तो सबसे बुरे बीते थे। उनको खाने के लिए कमल-नाल और बरगद की गुठलियों के अतिरिक्त जो चिड़ियों का भोजन समझा जाता था। कुछ भी नहीं मिला था। मानो भूख की विपदा ही काफी नहीं थी, इसलिए आज पानी भी खूब जोरों से बरस गया था। माँ बिलकुल नहीं चल सकती थी; शीतकाल की रातों की ओस उसकी हड्डियों में प्रवेश कर गई थी और वह लँगड़ा-लँगड़ाकर किसी प्रकार अपने-आपको बड़ी कठिनाई से घसीटती थी, पर अब तो वह बिलकुल ही थककर चूर हो गई थी और एक पेड़ के नीचे पड़ी थी। पेड़ भी ऐसा था कि उसके नीचे मूसलाधार वर्षा से किसी प्रकार का बचाव नहीं हो सकता था।

पानी रुकते ही कजली जड़ें खोदने मैदान में बहुत दूर तक चली गई थी। जब वह लौट रही थी तो रात हो गई। ऐसा प्रतीत होता था कि रात्रि काले-काले मेघों में से निकलकर सहसा सारी धरती पर छा गई है। पर कजली सड़क पर आ निकली थी और वह पेड़ जिसके नीचे माँ लेटी हुई थी अब थोड़ी ही दूर पर था।

वह धीरे धीरे चल रही थी; उसकी पतली-पतली टाँगें डगमग रही थीं; उसका पेट फूला हुआ था। चलते-चलते वह यह सोचकर बहुत दुखी हो रही थी कि अगर लकड़ियाँ गीली होने के कारण आग न जल सकी तो उसकी जमा की हुई जड़ों का क्या लाभ होगा?

सहसा रात्रि के गहन अन्धकार को चीरती हुई सैकड़ों पहियों की गड़गड़ाहट वातावरण में गूँज गई, मानो कहीं दूर पर बिजली कड़क रही हो। एक फौजी लारी पास से गुजर रही थी; लारी की नाक पर एक तेज बत्ती ऐसे जल रही थी, मानो बहुत क्रुद्ध हो। कजली ने दीर्घ निश्वास लेकर मन-ही-मन सोचा, कितने भाग्यवान हैं यह लोग जो इस लारी में बैठे हैं। रोशनी में, शीत से सुरक्षित मजे से बेंचों पर बैठे होंगे—न कोई बोझ ढोना है, न रात का डर है, न एकान्त का। बिजली के वेग से चले जा रहे हैं; चार घंटे में शहर पहुँच जायंगे। चार घंटे! कजली भूखी थी और उसके पाँवों में बहुत पीड़ा हो रही थी। लारी के गुजर जाने के बहुत देर बाद तक कजली उसे ताकती रही, यद्यपि चारों ओर अन्धकार हो गया था और सन्नाटा छा गया था।

उसके सिर पर टेलीग्राफ़ के तारों का जाल बिछा हुआ था। वह एक ऊँचे से लोहे के खम्भे का सहारा लेकर खड़ी हो गई। हवा तारों को छेड़ती थी और तार झंकृत हो उठते थे। जब उसका कान खम्भे के समीप होता तो किसी स्वर की वेगमय धारा उसके कानों में प्रवाहित हो जाती। वह जानती थी कि किसी की आवाज एक स्थान से दूसरे स्थान जा रही है। क्या शब्द थे वह? कुछ भी रहे हों, पर उनमें किसानों की दयनीय भूख और विनाश के मार्ग पर उनके निस्सहाय

कूच के बारे में एक भी शब्द नहीं था।

जूँ-जूँ-जूँ ! उन दूर जाने वाले सन्देशों के साथ उसने अपने हृदय की गति को मिलाने का प्रयत्न करते हुए अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसके होंठ आश्चर्य के कारण तनिक खुल गए थे। जूँ-जूँ-जूँ !

सहसा सड़क पर भारी बूटों की चाप सुनाई दी—चर्र-चर्र-चर्र ! उसने भयभीत नेत्रों से मुड़कर देखा। खाकी वर्दी पहने एक आदमी नपे हुए कदम रखता हुआ उसी की ओर चला आ रहा था। उसके शरीर में सिहरन की एक लहर दौड़ गई, पर उसके हृदय में कोई भय न था। उसने सड़क पर पहले भी कई सिपाहियों को जाते देखा था, जो तेज लारियों में बैठकर सर्र-से निकल जाते थे। एक दिन उनमें से एक ने उसे एक रोटी भी फेंक दी थी। उस दिन तो बड़े ही मजे का भोजन हुआ था—रोटी और उबला हुआ कटहल। सिपाही बड़े दयालु थे। आखिर फौज में भरती होने से पहले वह भी तो किसान ही थे।

कजली ने विनीत स्वर से कहा—"मुझे भूख लगी है। मैं बहुत भूखी हूँ।"

सिपाही ने दया दिखलाते हुए अपनी जबान से कुछ स्वर पैदा किया। उसे अपनी बीवी और बच्चे की याद आ गई जो यहाँ से हजार मील दूर पंजाब में रहते थे। उसे यह सोचकर बड़ा सन्तोष हुआ कि वह नियमित रूप से हर माह उनको अपनी तनख्वाह भेजता रहा था। उसके प्रियजन घर पर भूख से पीड़ित न होंगे और उसकी बेटी चाँद बड़ी हो गई थी। उसकी शादी भी एक नौजवान के साथ कर दी गई थी, जो स्वयं फौज में भरती हो गया था। अब चाँद को भी किसी चीज की कमी नहीं रहेगी। कितनी अच्छी बात थी कि उसके सब सगे-सम्बन्धी भूख से सुरक्षित थे। युद्ध बड़ी अच्छी चीज है; फौजी भरती भी अच्छी चीज है। शान्ति के दिनों में तो कभी भर-पेट भोजन भी नहीं मिलता था। जो-कुछ होता था वह तो जमींदार और महाजन के पेट में चला जाता था; फसल का कुछ भी हिस्सा उनके पास न बचता

था। पर अब उसे इतनी रोटी मिलती थी कि दो आदमियों का पेट भर जाय। इस समय भी उसकी वर्दी की जेब में उसके राशन की कुछ रोटियाँ पड़ी हुई थीं, गेहूँ के पतले-पतले नान कागज में लिपटे हुए। वर्षा रुक जाने के बाद जब वह अपने कैम्प से निकला था तो उसने सोचा कि उस शीतल सुखप्रद हवा में घूमते-घूमते शायद कहीं दूर निकल जाय और इसीलिए उसने वह रोटियाँ रख ली थीं। वह स्वयं भूखा रह चुका था, इसलिए वह दूसरों की भूख को भी समझ सकता था।

उसने काग़ज़ में से रोटियाँ निकालीं। उसकी तेज़ आँखें अन्धकार को चीरकर कजली को घूर रही थीं। उसने उसकी उत्सुकता को, हर्षातिरेक से चमकते हुए उसके मुख को देखा। उसके क्षीण मुरझाए हुए चेहरे पर लावण्यता की एक लहर दौड़ गई थी। वह अपने हाथ रोककर आश्चर्यचकित उसे घूरता रहा। विनीत स्वर फिर सुनाई दिया—"मुझे बड़ी भूख लगी है।"

वह उसका भाग्य-विधाता था। कजली का सर्वस्व उसकी मुट्ठी में था—एक पतंगे की तरह जिसे वह चाहे तो छोड़ दे चाहे तो मसलकर फेंक दे। और अपनी इस अपार शक्ति से सन्तुष्ट होकर और कजली के आशाजनित असीम हर्ष को देखकर उस पर नशा-सा छा गया। उसने अपना दया का हाथ फिर रोक लिया। विनीत स्वर में फिर सुनाई दिया, इस बार वह पहले की अपेक्षा बहुत क्षीण था, "मुझे बहुत भूख लगी है।"

उसने उसे रोटी दे दी। वह फौरन रोटी को अपने दाँतों से नोचने लगी और बगैर चबाए, बगैर जिह्वा पर उसका स्वाद लिये वह रोटी के बड़े-बड़े ग्रास निगलने लगी, यद्यपि उसे निगलने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। सिपाही ने फिर दया के भाव से अपनी जबान से वही स्वर पैदा किया; उसके हृदय में समवेदना थी। वह उसे गौर से देखता रहा और फिर उसके सिर पर पड़े हुए साड़ी के पल्ले की ओर हाथ बढ़ा

दिया। लाल-किनारे की साड़ी, जो किशोर ने उसके प्रति अपने प्रेम के चिह्न-स्वरूप उसे बुनवाकर दी थी, अब बिलकुल मैली हो गई थी। सिपाही का विशाल हाथ उसके कपोलों पर होता हुआ उसके कंठ पर जा पहुँचा और उसकी कोमल त्वचा का स्पर्श करता रहा। धीरे-धीरे जब उसका हाथ उसके वक्षस्थल पर जा पहुँचा तो कजली झिझककर अलग हट गई। वह अभी तक खाने में इतनी लीन थी कि उसे इसका ध्यान ही नहीं था कि वह सिपाही क्या कर रहा है। एक मिनट में जब रोटी खत्म हो गई तो उसे सहसा ध्यान आया कि वह सारी रोटी खा गई है और माँ के लिए और उसके भाई के लिए कुछ भी नहीं बचा है। उसकी आँखों से आँसू बहकर उसके गालों पर टपकने लगे।

"और भूख लगी है ?" भाग्य-विधाता ने सहानुभूतिपूर्वक पूछा। "रोओ नहीं। यह देखो, मेरे पास अभी बहुत रोटियाँ हैं। लो, तुम यह सब ले लो। मैं तुम्हें और भी दूँगा," कहकर वह अपने कोट की जेब में ढूँढ़ने लगा। "रुपये लोगी ?" उसने दो चमकते हुए रुपये उसकी तरफ बढ़ा दिए। "लो, इससे साड़ी खरीद लेना—कितनी फट गई है तुम्हारी साड़ी !"

कजली के लिए रुपयों का कोई महत्व नहीं था, पर रोटियाँ, इतनी सारी रोटियाँ, उनसे तो उसकी माँ की और भाई की जान बच जायगी। उसने कराहते हुए वेदना-भरे स्वर में उत्तर दिया—"नहीं मुझे रोटी दे दो, हम बहुत भूखे हैं। भगवान् तुमको बहुत देगा। हम भूख से मरे जा रहे हैं···"

सिपाही ने उसकी बाँह कसकर पकड़ ली। कजली झिझककर पीछे हट गई और फटी हुई आँखों से उसके चेहरे को देखने लगी—वह चेहरा जो सहसा कठोर हो गया था। सारी दया उस चेहरे से एक क्षण में न जाने कहाँ गायब हो गई थी; अब वह चेहरा ताँबे की तरह तमतमा रहा था। वह उस चेहरे को अच्छी तरह पहचानती थी। वह उन्हीं चेहरों में से था जो सर्र-से पास होकर गुजर जाने वाली फौजी लारियों

में से झाँकते रहते थे। पर न वह चीखी और न घबराकर भागी। उसकी समस्त भावनाएं मर चुकी थीं, केवल एक क्षीण-सी कसक उसके हृदय में थी और वह इसलिए कि उसने सब रोटी खा ली थी।

वह सिपाही उसकी पतली-पतली बाँहों को और मजबूती से अपने पंजे में जकड़ता जा रहा था। वह उसको सड़क पर से घसीटकर घास से ढकी हुई ढाल पर होता हुआ मैदान की तरफ ले चला। किसी पेड़ की फुनगी पर उल्लू के बोलने की आवाज आई। एक पेड़ की झुकी हुई टहनी कजली के मुख पर कोड़े की तरह लगी। वह लड़खड़ाकर गिर पड़ी होती, पर सिपाही उसकी बाँह को मजबूती से अपने पंजे में पकड़े हुए था। ऐसा मालूम पड़ता था कि वह गहरी नींद में चल रही हो, जैसे उसे अपने तन-बदन का होश ही न हो और वह केवल उस सिपाही के इशारे पर चल रही हो। उसका शरीर केवल एक चीथड़ा था जो उसकी आत्मा को ढके हुए था और यह चीथड़ा कोई महत्त्व नहीं रखता था। वह केवल एक व्यर्थ भार बनकर रह गया था और वह अपने इस शरीर को यहाँ छोड़कर मानो भाग गई थी—अपनी माँ के पास, अपने भाई के पास, जिनको भूख लगी थी, जिनको रोटियों की जरूरत थी।

सिपाही भावुक-हृदय आदमी था। पर किसी स्त्री को पा लेने की उसे तीव्र उत्कण्ठा हो रही थी। वह साल-भर से अपनी पत्नी से नहीं मिला था और इस समय वह ऐसा अनुभव कर रहा था जैसे वह अपनी पत्नी के पास वापस घर पहुँच गया हो। अँधेरे में उसे कजली का चेहरा भी अच्छी तरह न दिखाई दे रहा था, पर उसके शरीर से जो सुगन्ध आ रही थी उससे वह समझ गया था कि वह गन्दी नहीं है। साफ औरत के शरीर से ऐसी सौंधी-सौंधी सुगन्ध आती है जैसी वर्षा से भीगी हुई धरती से, और कजली के शरीर से हमेशा ऐसी ही सुगन्ध आती रहती थी। उसने सहानुभूति के कुछ शब्द कहे; वे शब्द जो उसकी अन्तरतम भावनाओं में बहुत दिन से दबे पड़े थे, आज सहसा फूट निकले थे। सिपाही अर्धचेतना के धुँधलके में खो गया था। वह आधा यथार्थ की

दुनिया में था और आधा स्वप्नों की दुनिया में···

एक हृदय-विदारक चीख, एक दुःख भरी कराह, एक गहरी आह! सिपाही ने अनुभव किया कि उसके शरीर में खून लगा हुआ है। वह भयभीत होकर हाँपता हुआ एक झटके में अलग खड़ा हो गया और गौर से देखने लगा।

कजली निश्चल पड़ी थी—बिलकुल निर्जीव। उसके खून बह रहा था।

सिपाही झुका और यह देखने के लिए कि उसमें श्वास बाकी है कि नहीं, कजली के नथनों को टटोलने लगा। उसने उसके दिल के पास कान लगाकर उसके दिल की धड़कन सुनने का प्रयत्न किया। वह केवल बेहोश हो गई थी। जड़ें, जो वह मैदान से ढूँढकर लाई थी, उसकी शिथिल मुट्ठियों में अब तक मौजूद थीं। सिपाही ने उसके नवयौवन को देखा और यह समझने में उसे देर नहीं लगी कि वह स्त्री नहीं अभी एक बालिका ही थी और उसने यह भी देखा कि उसके पेट में गर्भ था। वह फिर कराहने लगी और गहरी लम्बी-लम्बी आहें भरने लगी। उसमें जीवन का यह प्रमाण देखकर सिपाही ने निश्चिन्तता की साँस ली। उसके पास जितनी रोटियाँ थीं वह उसने उसके हाथों में रख दीं और फिर अपनी जेब से सब पैसे निकालकर उसकी साड़ी के कोने में बाँध दिए—कुल मिलाकर तीन चाँदी के रुपये और कुछ रेजगारी थी। उसे ध्यान आया कि इस बार वह घर कम पैसे भेज पायगा पर उसे इस की कोई चिन्ता नहीं थी। निकट कहीं खड़खड़ाहट हुई और सिपाही डर के मारे उछलकर खड़ा हो गया और भागा।

कजली को कुछ-कुछ होश आ चला था और वह दर्द के कारण कराह रही थी। उसे एक परिचित-सा स्वर सुनाई दिया—हुक्का-हुआ-हुआ! और वह अपनी मूर्च्छा से जाग पड़ी। उसने आँखें खोलीं और उठकर बैठने का प्रयत्न करने लगी, पर उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके कूल्हों को काठ मार गया हो और उसकी रीढ़ की हड्डी भी अकड़ गई

हो। वह मनहूस आवाज पास आती जा रही थी—बिलकुल पास। धीरे-धीरे उसे ऐसा लगा कि वह आवाज उसके मुख पर तपती हुई हवा के झोंकों की तरह थपेड़े मार रही है। ऐसा मालूम पड़ता था कि वह सियार बहुत आनन्दित होकर दीर्घ स्वर में 'हुआ-हुआ-आ-आ' कर रहा है। सियार उसके पास खड़ा हुआ उसे ताक रहा था और उसकी ज़बान लपलपा रही थी। वह मारे भय के पसीने में नहा गई। उसने सियार के थूँथन का स्पर्श अनुभव किया और भय के मारे काँपने लगी। वह पागलों की तरह चीख उठी, पर उसकी आवाज़ उसके गले में ही गड़गड़ाकर रह गई। पागलों की तरह वह बार-बार चीखने का प्रयत्न कर रही थी, अपने जीर्ण-शीर्ण शरीर की पूरी शक्ति लगाकर चीख रही थी पर .....

सहसा उसके पेट में इतने जोर का दर्द हुआ कि उसे लगा जैसे उसका शरीर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई फौलाद के पंजों से उसका माँस नोच रहा है, जैसे एक-साथ अनेकों चाकू उसके शरीर पर चल रहे हैं। फिर वह कुछ क्षणों के लिए सिर से पाँव तक बिलकुल निष्क्रिय हो गई—ऐसा मालूम हुआ कि उसका शरीर छिन्न-भिन्न हो गया है, बिलकुल चूर-चूर हो गया है। वह बिलकुल स्वरहीन हो गई और उसे ऐसा लगा कि वह मर गई है। इन कुछ क्षणों का कोई अन्त न मालूम होता था।

सियार ने अपना सिर आकाश की ओर उठाया और एक दीर्घ रुदन के स्वर में चिल्लाने लगा। मौके की ताक में वह वहीं आसपास मँडरा रहा था। ताजे खून की महक उसकी नाक में समाई हुई थी और उस सुस्वादु भोजन के विचार से वह मारे खुशी के नाच उठा···कुछ देर बाद उसने खाना आरम्भ कर दिया। उसे कोई विशेष जल्दी नहीं थी। अभी सारी रात पड़ी थी और सियार को कुछ भूख भी अधिक नहीं लगी थी। वह इधर-उधर जमा हुआ खून चाटता रहा और गुर्राता रहा। उसे बहुत इतमीनान था।

कजली ने अपनी रही-सही शक्ति बटोरकर एक बार फिर चीख मारी। सियार दुबककर उसकी जाँघों को पार कर रहा था। उसने अनुभव किया कि वह उसके गर्भ के नवजात पुष्प को अपने दाँतों से नोच रहा है। जीवन और मृत्यु के बीच डूबती-उतराती हुई कजली में इतनी शक्ति भी न रह गई थी कि वह मर जाने की प्रार्थना भी कर सके। सियार उसकी जाँघ पर सवार था। समय बीतता जा रहा था। मालूम पड़ता था कि न जाने कितना समय इसी दशा में बीत गया है।

अनु अपनी बहन से बहुत दूर न था। उसने भी खाने योग्य कुछ जड़ें ढूँढी थीं। जिस समय वह अँधेरे में एक-दूसरे से अलग हो गए थे तो उसने दो बार उसे नाम लेकर पुकारा भी, पर जब कोई उत्तर न मिला तो उसने समझा कि वह शायद घर चली गई। घर !···वह थोड़ी देर सुस्ताने के लिए बैठ गया और फिर उठकर चलने लगा। उसने एक सिपाही को तेजी से जाते हुए देखा। सिपाही का ध्यान आकर्षित करने के लिए उसने कजली को फिर पुकारा—"दीदी, कहाँ चली गई तुम ?"

सिपाही रुक गया और मुड़कर देखने लगा। वह हाँप रहा था। "क्या हुआ, बच्चे ?" उसने जोर से पुकारकर पूछा।

"मुझे भूख लगी है," अनु ने रुँधे हुए गले से कहा।

सिपाही लौट आया और उसका हाथ पकड़कर पूछने लगा—"किस को ढूँढ़ रहे हो ?"

"अपनी बहन को। वह भी बहुत भूखी है; मैं भी भूखा हूँ; माँ भी भूखी है।" उसने दो-एक घूँट निगलकर बड़े दयनीय स्वर में कहा—"तुम बड़े बहादुर सिपाही हो, हमें कुछ रोटी दे दो···"

"तुम्हारी बहन जवान है ? उसके बच्चा होने वाला है ?" वह अटक-अटककर पूछ रहा था।

अनु ने अपना सिर हिला दिया—"हम सब भूख के मारे···"

सिपाही के स्वर में कम्पन था—"उधर भागकर जाओ, बेटे, इस सड़क पर चले जाओ। उसकी तबियत ठीक नहीं है, उसकी तबियत बहुत खराब है। वह वहाँ मैदान में अकेली पड़ी है। सड़क से कोई बीस-तीस कदम पर होगी—उधर।" उसने अपने हाथ से संकेत करके बताया।

लड़के का रंग पीला पड़ गया। उसने रोटी के लिए फिर कुछ न कहा और फौरन चल पड़ा। वह दौड़कर चलने का प्रयत्न कर रहा था पर उसके पाँव बहुत थक गए थे। मालूम होता था कि उनमें सीसा भर दिया गया है। वह कहीं सिर रखकर सो जाना चाहता था।

यकायक उसे सियार की आवाज सुनाई दी और साथ ही किसी के चीखने का क्षीण स्वर। रात को उस सन्नाटे में वह दोनों स्वर कितने भयावह लग रहे थे! अनु का दिल बुरी तरह धड़कने लगा, पर वह घास से ढकी हुई ढाल पर होकर सिपाही की बताई हुई दिशा में चलने लगा। उसे सियारों से बहुत डर लगता था। वह इतना जानता था कि भूतों के शरीर सियारों के-से होते हैं और वह भूतों से बहुत डरता था। डर के मारे उसकी आँखें बाहर को निकल आईं और उसका रोम-रोम काँप उठा। कजली घास पर लाचार और बीमार पड़ी थी और सियार उसके पास 'हुआ-हुआ' कर रहा था। कजली को भी सियारों से बहुत डर लगता था। अनु आगे बढ़ता गया। वह राम नाम जपता जा रहा था, क्योंकि उसे मालूम था कि उस नाम से भूत डरते हैं।

अँधेरे में उसे पहले तो दुबके हुए सियार की आकृति दिखाई दी और फिर कजली लेटी हुई दिखाई दी। वह बिलकुल निश्चल और शान्त पड़ी थी, मानो सो रही हो। वह ठिठक गया, पर केवल एक क्षण के लिए। और उस एक संकटमय क्षण में वह एक भीरु बालक से एक शक्तिशाली निडर पुरुष में परिवर्तित हो गया। वह धीरे-धीरे एक-एक कदम बढ़ाता हुआ आगे बढ़ा। "दीदी, डरो नहीं," उसने पुकारकर कहा। फिर उसने सियार को दुत्कारते हुए कहा—"हट शुः!"

सियार ने गुर्राकर जवाब दिया। पर ऐसा मालूम पड़ता था कि वह जाने को तैयार नहीं है। सियार लड़ने के लिए तत्पर था; उसकी आँखें चमक रही थीं।

अनु आगे बढ़ता गया। उसने देखा कि वह सियार अपने पाँव समेटकर उस पर झपटने की तैयारी कर रहा है। एक क्षण के लिए अनु को ऐसा लगा कि उसके पाँव जमीन में धँसे जा रहे हैं। वह पीछे हटता गया····और पीछे। सियार उसकी इस क्रिया को ध्यान से देख रहा था। उसने विजय-गर्व से फूलकर अपने मनहूस कण्ठ से 'हुआ-आ-आ—' की आवाज निकाली।

अनु एक कुशल रणनीतिज्ञ की तरह पीछे हटता गया। वह जानता था कि एक क्षण की भी देर करने से सारा मामला बिगड़ जायगा। पर वह खाली हाथों उस सियार का कुछ भी नहीं कर सकता था और वह उसकी दीदी के बिलकुल पास ही बैठा हुआ था। पीछे हटते-हटते वह उस पेड़ के पास पहुँच गया जिसके पास पहुँचने का वह प्रयत्न कर रहा था। उसने एक पतली-सी टहनी तोड़ ली। अपनी अपार शक्ति को बटोरकर उसने जोर की साँस ली और पत्तियोंदार टहनी को घुमाता हुआ 'हट ! हट।' करता हुआ आगे लपका। वह टहनी को अंधा-धुन्ध घुमा रहा था।

सियार डरकर भाग गया।

अनु के साहस की विजय हुई। वह घुटनों के बल बैठ गया और अपनी बहन के चेहरे को झुककर देखने लगा। "दीदी, बोलो तो," उसने क्षीण स्वर में कहा, "मेरी तरफ तो देखो, दीदी रे—"

कजली की दर्द-भरी काली-काली आँखें अपने भाई पर जमी हुई थीं। उसके व्यथित होंठ कुछ कहने के लिए हिले, पर उसके गले से स्वर ही नहीं निकल रहा था। अनु रो पड़ा—"ओ दीदी, दीदी रे—"

सहसा उसने कजली की टाँगों के बीच खून से लथपथ स्थल को देखा और उसे इतना धक्का पहुँचा कि उसका रोना बन्द हो गया।

वह बालक से फिर मर्द हो गया। वह समझ गया कि कजली मर रही है। केवल माँ ही उसके प्राण बचा सकती थी। उसने निश्चय किया कि वह दौड़कर जायगा और माँ को बुला लायगा। कजली ने उसी क्षण क्षीण निश्वास लेकर बहुत धीमे स्वर में कहा—"माँ—" मानो वह अनु के विचार को जान गई हो।

यदि उसके जाने के बाद सियार फिर लौट आया तो क्या होगा? पर इसके अलावा कोई चारा ही न था। "दीदी, डरो नहीं," अनु जल्दी-जल्दी बोल रहा था, "मैं अभी भागकर जाता हूँ और माँ को लिये आता हूँ; बहुत समय नहीं लगेगा।" उसने पेड़ की टहनी उसके शरीर पर ही रख दी। वह जानता था कि शायद उस टहनी के डर से सियार पास न आये।

जब वह सड़क पर भागकर जा रहा था तो उसने दूर पर एक मोटर के आने की आवाज सुनी। उसने सोचा—और सिपाही आ रहे होंगे। उसे उस सिपाही की याद आ गई जिसने उसे कजली की दुर्दशा की सूचना दी थी। वह सोचने लगा—यदि वह सिपाही, जो दया की मूर्ति था, चला न गया होता तो कितना अच्छा था!

सिपाही सड़क पर उस बालक से बात करने के बाद नये हवाई-अड्डे पर सीधे अपने कैम्प वापस चला गया था। पश्चात्ताप उसके हृदय को बेधे डाल रहा था। उसने यह क्या किया? वह सिपाही बहुत नेक था और अपने-आपको धोखा देना नहीं जानता था। वह भगवान् से डरता था; उसे अपनी पत्नी से बहुत लगाव था और वह अपने बच्चों को भी बहुत प्यार करता था। उसने सोचा—अगर पड़े-पड़े तो वह लड़की मर जायगी। उसके पेट में बच्चा है। मुझे उस समय न जाने क्या हो गया था! सिपाही का हृदय क्षोभ और ग्लानि से भर गया।

हवाई अड्डे के बाहर ही एक एम्बुलेन्स गाड़ी कहीं जाने को तैयार खड़ी थी। इंडियन मैडिकल सर्विस के कैप्टन बैनर्जी कलकत्ता ड्यूटी

पर जा रहे थे। सिपाही ने झट फैसला किया और उनसे बात करने के लिए आगे बढ़ा।

"सा'ब, मैं अभी उधर मैदान से आ रहा था। मैंने देखा कि एक औरत वहाँ पड़ी है। अभी लड़की-सी है। वह वहाँ मैदान में बिलकुल लाचार पड़ी है।"

"निगश्चित होगी," डॉक्टर ने कहा, "मैं क्या कर सकता हूँ?"

"हुजूर, वह खून में लथपथ है। मुझे तो कुछ गड़बड़ मालूम होता है। मालूम होता है किसी पापी हत्यारे का काम है।" सिपाही डॉक्टर पर अपनी बात का महत्व स्पष्ट करना चाहता था।

"यह मेरा काम नहीं है," डॉक्टर ने फौरन उत्तर दिया और गाड़ी चलने लगी।

"पर सा'ब, सियार उसको जिन्दा खा जायंगे," सिपाही ने चिल्लाकर कहा। उसके स्वर में बहुत करुणा थी। "सा'ब, आपके रास्ते में ही वह पड़ी है।"

"अच्छा, बैठ जाओ," कप्तान ने तेज़ी से कहा और सिपाही कूदकर ट्रक में बैठ गया। उसके दिल का बोझ हल्का हो गया था। वह अपने अफसर के स्वभाव को अच्छी तरह पहचानता था।

सिपाही के अनुभवी दिमाग में उस स्थान की निशानी के रूप में एक ताड़ के पेड़ का तना सुरक्षित था, जिसकी फुनगी पर के पत्ते आँधी में टूट गए थे। ट्रक रुक गया।

एक मिनट के बाद कप्तान ने कजली पर टार्च डाली और चौंक पड़ा। "जल्दी आओ," उसने हुक्म दिया, "जल्दी से स्ट्रेचर लाओ।"

वह कजली को उठाकर एम्बुलेन्स में ले गए। उसका खून बहुत बह चुका था। इसका भय था कि कहीं उसे ज़हरबाद न हो जाय। उसके प्राण एक कच्चे धागे से अटके हुए थे जो किसी समय भी टूट सकता था। डॉक्टर ने अपना काम आरम्भ किया।

ट्रक का ड्राइवर गाड़ी से थोड़ी दूर पर खड़ा था। उसने सिपाही

को सिगरेट देते हुए कहा, "कोई नई बात नहीं है। मैदानों में न जाने कितनी लाशें और कितने ही दम तोड़ते हुए लोग पड़े रहते हैं। मर्द, औरतें, बूढ़े, जवान—छिः छिः छिः ! किसी का श्राप लगा है। छिः-छिः ! मैंने तो एक ऐसी लड़ाई देखी जो शायद किसी ने न देखी हो। तीन-चार गिद्ध एक लाश के लिए एक सियार से लड़ रहे थे। क्या ज़ोर की लड़ाई हुई उनमें ! यह तो दो महीने पहले की बात है। अब इस प्रकार की लड़ाई नहीं होती। अब गिद्धों और सियारों—सबको खाने-भर से ज्यादा लाशें मिल जाती हैं। सारे आकाश पर गिद्ध-ही-गिद्ध मँडराते रहते हैं। मालूम होता है कि जादू से पैदा हो गए हैं इतने गिद्ध। और हर सौ गज पर सियार मिल जाते हैं; दाँत खोले देखते रहते हैं।

सिपाही को इन बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह सड़क पर थोड़ी दूर आगे चला गया; वह कुछ ढूँढ रहा था; उसकी आँखें सड़क पर लगी हुई थीं। कहाँ चला गया वह लड़का ? इसका भाई था शायद वह ? कितना छोटा-सा बालक था—बिलकुल निस्सहाय, भूखा। फौज में गेहूँ और चावल इतनी बुरी तरह फेंका जाता है फिर ये निर्दोष लोग क्यों भूख के कारण मौत का शिकार हो रहे हैं ? आखिर यह सब अन्न इन्हीं किसानों ने तो पैदा किया है; कर्नल साहब, ब्रिगेडियर साहब या जंगी लाट कमाण्डर-इन-चीफ तो अन्न उपजाने नहीं आए थे। अगर किसान मिट जायंगे तो इन सबको खाने का एक कौर भी नसीब न होगा। ज़रा सोचने की बात है—किसान भी फौज की उतनी ही सहायता कर रहे हैं जितनी वे लोग, जो बम और गोलियाँ बनाते हैं और जो इनको चलाते हैं। बगैर पेट में अन्न पहुँचे कौन लड़ सकता है ? कितने शरम की बात थी कि स्वयं किसान होते हुए उसने अपने पास की रोटी का—उस रोटी का जिसे पाने का उसे कोई अधिकार नहीं था—एक भूखी, गर्भवती किसान लड़की के साथ बलात्कार करने के लिए

प्रयोग किया था। वह कितना अभागा था! उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही थी।

यकायक अँधेरे में उसे वह लड़का आता हुआ दिखाई दिया। वह लगभग बीस गज दूर रहा होगा; उसके साथ एक स्त्री भी थी; शायद वह उसकी माँ है! सिपाही ने आखिर सन्तोष की साँस ली। वह उनसे मिलने के लिए आगे बढ़ा और जल्दी-जल्दी बोला—"माँ, उसे बहुत तकलीफ है, लेकिन घबराने की कोई बात नहीं है। वह बहुत होशियार डॉक्टर के इलाज में है। हमारे कप्तान सा'ब उसका इलाज कर रहे हैं। इधर आओ।" और वह चिल्लाता हुआ एम्बुलेन्स की तरफ लपका—"सा'ब, लड़की की माँ आ गई।"

कैप्टन बैनर्जी ट्रक के दरवाजे पर आ गए। उनको यह सुनकर सन्तोष हुआ, पर वह इस बात से चिन्तित भी थे कि उनको अभी एक अत्यन्त करुण दृश्य देखना पड़ेगा। "शोर मत मचाओ," उसने धीरे से कहा, "मैंने सुई लगाकर उसे सुला दिया है। उसे सोने दो।"

फौजी कम्बल में लिपटी हुई वह एक थके हुए बच्चे की तरह सो रही थी; उसके गाल पहले से भी ज्यादा पीले पड़ गए थे; उसकी आँखों के चारों ओर की स्याही और भी गहरी हो गई थी। माँ अपनी बेटी के पास चुपचाप बैठी उसे एकटक देख रही थी। उसने न एक शब्द कहा और न एक आँसू बहाया। वह बिलकुल निश्चल बैठी थी—एक मिट्टी की मरियल मूर्ति की तरह, जिसको बनाते समय शायद मूर्तिकार के पास मिट्टी कम पड़ गई थी और उसने मिट्टी को बहुत बचा-बचाकर प्रयोग किया था।

कैप्टन ने आश्चर्य से उसे देखा। क्या उसके हृदय को आघात पहुँचा है? या दीर्घकाल से यातनाएं सहते-सहते अब उसे कष्ट नहीं होता? या वह माँ की स्वाभाविक शक्ति का प्रदर्शन कर रही थी? डॉक्टर को सन्तोष हुआ। "घबराने की कोई बात नहीं है," उसने दबी जबान में कहा, "कुछ दिन अस्पताल में रहना पड़ेगा, बस, मैं इसे कलकत्ता

लेकर जा रहा हूँ। घंटे-भर का रास्ता है, लेकिन हमको धीरे-धीरे जाना पड़ेगा—धचके वगैरह लगने से उसे तकलीफ होगी। तुम भी चलोगी ?"

कुछ क्षण के लिए तो उसने कोई उत्तर न दिया और फिर उसकी आँखों में आँसू डबडबा आए। ऐसा मालूम पड़ता था कि इस पृथ्वी पर से सहानुभूति और सहृदयता बिलकुल उठ गई थी और सहसा, जब उसकी आशा बिलकुल टूट गई थी, किसी ने उस पर दया की वृष्टि कर दी थी। "जुग-जुग जियो, बेटा," उसने रुँधे हुए कण्ठ से कहा, "तुम्हारी बड़ी उमर हो।"

कैप्टन ड्राइवर की बगल में बैठ गया। एंजिन की गड़गड़ाहट हुई और ट्रक चल दिया। सिपाही ने बड़ी दीनता से कहा—"माँ, मुझे भूल ही गईं, मुझे आशीष नहीं दी।"

"बेटा, तेरा भी भगवान् भला करें," माँ ने जवाब दिया और मन-ही-मन उसने कहा, 'जिसके भी हृदय में दया है, भगवान् उसका भला करें।'

अनु ने पुलकित होकर माँ का हाथ जोर से पकड़ लिया। वह पहली बार मोटर में बैठा था। वह माँ की गोद में सिर रखे, लेटे-लेटे सोच रहा था—यह 'हवा गाड़ी' ज्यादा तेज चलती है या हवा। सोचते-सोचते वह सो गया। वह बहुत थक गया था।

माँ चुप्पी साधे निश्चल बैठी थी। उसकी व्यथा इतनी तीव्र थी कि वह उसे व्यक्त न कर सकती थी। उसकी आँखें अपनी बेटी पर जमी हुई थीं, पर वह वास्तव में कहीं दूर, बहुत दूर देख रही थी। वह अपने बेटे और अपने पति के चेहरे देख रही थी, जो जेलों में बन्द थे वह उन तीनों को एक साथ देख रही थी। और आश्चर्य तो यह था कि उसे इस समय इस बात की इतनी चिन्ता न थी कि कनु को लम्बी सजा हो गई थी जितनी उसके दुखते हुए कान की थी। अब भी उसके कान में दर्द होता होगा, कौन उसके कान को सेंककर उसके दर्द को

दूर करता होगा ? और उसका पति···जेल के सख्त नियमों ने तो उसे बिलकुल ही मूक बना दिया होगा। गाना उसके जीवन का आधार था···जेल में वह गाने के बिना कैसे रहता होगा ? इन व्यथाओं के साथ इस तत्कालीन व्यथा की वृद्धि हो गई थी। कजली अपने बच्चे के न रहने का दुःख कैसे सहन कर पायगी ? और अगर कजली कहीं मर गई तो ? माँ की आँखें एकटक कजली पर जमी हुई थीं। माँ सोच रही थी कि वह स्वयं तो अधिक दिन जिन्दा रहने वाली थी नहीं। उसे ऐसा आभास हो चला था कि मृत्यु उसकी हड्डी-हड्डी में समा गई है। जब वह मर जायगी तो अनु का क्या होगा ? माँ की दृष्टि सोते हुए बालक के मुख पर जम गई और वह विचार-मग्न हो गई।

सहसा उसकी आँखों से व्यथा एक अविरल धारा में फूट पड़ी। एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति की सहृदयता ने उसे इतना प्रभावित किया कि वह रो पड़ी, और निर्मम संसार की क्रूरताओं का विचार करके उसके आँसू प्रबल जल-प्रवाह की तरह उसके गालों पर बहने लगे। वह गहरी, उखड़ी-उखड़ी आहें भर रही थी।

ट्रक धीमा हो गया; अब वह गंगा के बड़े पुल पर से होकर जा रहा था—स्ट्रैण्ड रोड···डलहौजी स्क्वायर। शहर में घटाटोप अन्धकार था। चारों तरफ ब्लैक-आऊट था। इधर-उधर जो मोटरें और गाड़ियाँ आ-जा रही थीं उनकी बत्तियाँ जंगली जानवरों के आग्नेय नेत्रों की तरह चमक रही थीं। बहू बाजार स्ट्रीट···ट्रक अस्पताल के फाटक में चला गया।

जिस समय कजली को स्ट्रेचर पर लिटा कर अन्दर ले जाया जा रहा था, डॉक्टर ने माँ से कहा, "वह तुमको इस समय अन्दर नहीं जाने देंगे। मिलने के लिए जो समय नियत है उसी समय तुम मिल सकती हो। मैं बड़े डॉक्टर से कह दूँगा।" वह कुछ कहना चाहता था पर उसे शब्द नहीं मिल रहे थे। उसके हाथ में एक पाँच रुपए का नोट

था। लो इसे रख लो, तुम अब इस समय कहाँ भटकती फिरोगी, कोई स्थान तो है नहीं—"

माँ ने अपना सिर हिलाया—"बेटा, तुम्हारी कृपा ही हमारे लिए बहुत है। हम किसान हैं, भिखारी नहीं हैं। हमारे ऊपर बुरे दिन आन पड़े हैं।"

अफसर अस्पताल में चला गया। ड्राइवर ने ट्रक निकालकर अस्पताल से बाहर सड़क के किनारे खड़ा कर दिया।

"माई, अब उतर जाओ—"

"अनु," माँ ने अनु को जगाते हुए कहा, "कलकत्ता आ गया, उठो बेटा!"

अनु सोता रहा।

एक मोटर साइकिल के गुजरने के कारण सारी सड़क गूँज उठी।

ट्रक के ड्राइवर ने चिन्तित स्वर में कहा—"आम लोगों को फौजी ट्रक में बिठाने की इजाजत नहीं है, नहीं तो मैं कप्तान सा'ब के आने तक तुमको बैठा रहने देता। एम० पी० चारों तरफ घूमते रहते हैं—यही फौजी पुलिसवाले। कप्तान सा'ब तुमको बिठाकर यहाँ तक ले आए, पर यह कानून के खिलाफ बात है।"

पुलिसवाला!···माँ ने घबराकर अनु को गोद में उठाने का प्रयत्न किया पर वह हाँफने लगी। ट्रक का ड्राइवर उसकी सहायता को आ पहुँचा।

ट्रक से उतारे जाने के बाद अनु सड़क के किनारे फुटपाथ पर लेट गया था। वह अभी तक गहरी नींद में सोया हुआ था। माँ खड़ी हुई इधर-उधर देख रही थी। चारों तरफ ऊँची-ऊँची इमारतें सिर उठाए खड़ी थीं—इतनी लम्बी और ऊँची इमारतें कि सारे बरूनी के मर्द और औरतें उसमें समा जायं। उसे विश्वास हो चला कि उसके और उसके बेटे के रहने के लिए उसे स्थान तो मिल ही जायगा। वह अब जाड़े की रातों की ओस और अधिक सहन नहीं कर सकते थे। वह बड़ी

मेहनत से काम करके अपना पेट पालने-भर को तो कमा ही लेंगे। वह कोई भिखारी थोड़े ही हैं! जिस अस्पताल में कजली भरती हुई थी वह किसी राजा का महल मालूम होता था। उसे विश्वास हो गया कि इस जादू की नगरी में गरीबों की और निस्सहायों की अच्छी तरह देख-भाल होती है। और क्यों न हो, शहर में अथाह सम्पत्ति भरी पड़ी थी जो इन कामों पर खर्च की जा सकती थी। यहाँ के लोग बड़े दयावान हैं—बिलकुल उस खाकी वर्दीवाले फौजी डॉक्टर की तरह। यहाँ खाना भी मिल जायगा। अनु स्कूल में पढ़ने जायगा—शहर में लोग पढ़ने के पीछे दीवाने हैं। कुछ दिन बाद कजली अच्छी हो जायगी; उसके जीर्ण-शीर्ण शरीर पर माँस चढ़ जायगा; उसके मुरझाये हुए गालों पर लाली आ जायगी; उसे अस्पताल में अच्छी खुराक मिलेगी।

उसके हृदय में सदैव से दबी हुई आशा रह-रहकर ताजी हो जाती—यहीं कहीं, इसी शहर में वह भी है, देवता का पोता। वह उन्हें जरूर पहचानता होगा। वह उन्हें इतनी जल्दी भूल कैसे जायगा? यह नहीं सम्भव है। उसने अच्छी तरह देखा था कि उसके चेहरे से दया-भाव टपकता था। आखिर वह देवता का पोता है।

आधी रात के समय उस अजनबी शहर में माँ फुटपाथ पर अकेली खड़ी बादलों को देख रही थी। काले-काले घने बादलों के एक टुकड़े के चारों ओर चाँदी की-सी चमकदार गोट लगी हुई थी।

चौदह

लेकसाइड से आने वाली प्रातःकाल की पहली बस हावड़ा स्टेशन के सामने आकर रुकी और राहुल कुछ सोचता हुआ, हृदय में एक भय छिपाये हुए बस में से उतरा—यदि चावल न आया तो क्या होगा ? मालगोदाम का दफ्तर तो अभी घण्टे-भर तक नहीं खुलेगा, पर घर पर बैठकर कुढ़ते रहने से यह अच्छा था कि यहाँ खुली हवा में टहलकर दफ्तर के खुलने की प्रतीक्षा कर ली जाय। आधी रात-भर उसे नींद नहीं आई थी और वह बिस्तर पर पड़ा सोचता रहा था। प्रातःकाल एक डिब्बा भरकर चावल आने वाला था। बम्बई की जनता ने अकाल-पीड़ितों के लिए यह उपहार भेजा था। सारे देश से पैसे जमा करके भेजे जा रहे थे। सारा देश बंगाल को विनाश के मुख से निकालने के लिए सहायता कर रहा था। पर केवल पैसे ही से समस्या हल नहीं हो सकती थी। उसके लिए जरूरत थी अनाज की और उस अनाज को ले जाने के लिए मालगाड़ी के डिब्बों की। रास्ते में हजारों कठिनाइयाँ थीं। आम जनता के उपयोग के लिए रेल के बहुत कम डिब्बे बच गए थे—बहुत-से डिब्बे तो फौजी यातायात के लिए दे दिये गए थे। हिन्दुस्तान से कुछ डिब्बे मध्य-पूर्व के देशों को भेज दिये गए थे और उसके साथ कई सौ मील लम्बी रेल की पटरियाँ भी उखाड़कर भेज दी गई थीं। भारत के यातायात के साधनों पर बोझ बहुत बढ़ गया था और वह

थककर चूर हो गए थे। बंगाल में अनाज नहीं बल्कि बन्दूकें भेजी जा रही थीं।

अनाज तो बंगाल से बाहर जा रहा था, उन प्रदेशों से भी जिनमें अन्न का भारी संकट था। एक तरफ तो लगभग एक करोड़ किसान, जिन्होंने अपना खून-पसीना एक करके अन्न पैदा किया था, भूख से कराह रहे थे और दूसरी ओर योजना के अनुसार अन्न बंगाल के बाहर भेजा जा रहा था।

अगर चावल का यह डिब्बा न आया तो क्या होगा? रिलीफ-केन्द्र में जितना अन्न बच गया था वह सब आज समाप्त हो जायगा। कल क्या होगा और फिर न जाने कितने ऐसे कल आने वाले हैं? वह पाँच सौ निराश्रित, जिनकी जीवन-डोर इस रिलीफ़-केन्द्र के साथ बँधी हुई थी, मर जायंगे।

मरना तो उनको है ही, कुछ भी हो। कम-से-कम मालूम ऐसा ही पड़ता था। यदि वह नहीं तो उनके भाई-बन्धु मरेंगे। सार्वजनिक दान के आधार पर कई मुफ्त लंगर खुले थे, पर इतने थोड़े साधनों से एक लाख लोगों को रोज भोजन कराना कोई आसान बात न थी। और इसके ऊपर प्रतिदिन निराश्रितों के झुण्ड-के-झुण्ड ताँता बाँधे चले ही आ रहे थे।

देहातों से भूख की मारी जनता उन्मत्त जल-प्रवाह की तरह शहर की तरफ चली आ रही थी। उनमें से बहुत तो इतनी बुरी हालत में थे कि कोई ठोस चीज खा ही नहीं सकते थे। वह खाते थे और मर जाते थे; उनको चावल देना उनकी हत्या करना था—उन्हें विशेष प्रकार के भोजन की आवश्यकता थी और उनको जरूरत थी ग्लूकोज़-डी की। राहुल मन-ही-मन इस व्यंग पर हँस पड़ा। ग्लूकोज़-डी की जरूरत है उनको!

तीन हफ्ते तक, महीने-भर तक एड़ियाँ रगड़-रगड़कर और घुल-घुल कर मरने से कहीं अच्छा था कि मनुष्य एक बार भर-पेट भोजन करके एक

क्षण में मर जाय। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता था कि मनुष्य मरने से पहले कितना कष्ट सहन करता है, तब कहीं जाकर उसके प्राण निकल पाते हैं। मनुष्य को पहले कुछ दिनों में सबसे अधिक कष्ट होता है। उस समय वह भूख से पागल हो जाता है। फिर वह निष्प्राण होकर लेट जाता है। उसके मुख में इतनी शक्ति भी नहीं रह जाती कि वह कुछ खा-पी सके। उसे बस एक इच्छा होती है कि उसे अकेला छोड़ दिया जाय। उसकी आँखें प्राणहीन हो जाती हैं। सूखते-सूखते केवल उसकी ठठरी रह जाती है। शरीर पर जितना भी माँस होता है वह घुल-घुलकर नष्ट हो जाता है। राहुल की आँखों के आगे एक आदमी का चित्र घूम गया। उसके कूल्हों पर बिलकुल माँस न रह गया था। ऐसा मालूम पड़ता था कि उसका सारा माँस, जो उसके शरीर को गोल और सुडौल बनाये हुए था, किसी ने बड़ी सफाई से काट लिया है और उसकी जाँघ की हड्डियों पर उसकी खाल सी दी है। खाना तो दूर रहा वह पानी भी नहीं पी पाता था, परन्तु फिर भी वह अभी मरा नहीं था। किसी ने उसके सामने एक कटोरा चावल लाकर रख दिया था पर वह जैसे-का-तैसा रखा रहा।

राहुल को एक दूसरे आदमी की याद आई। एक बिलकुल सूखा-सा आदमी कुछ और लोगों के पीछे लड़खड़ाता हुआ चला आ रहा था। वह इस बात का प्रयत्न कर रहा था कि कहीं पीछे न रह जाय और इस प्रयत्न के कारण वह हाँफ रहा था। वह केवल अपने दृढ़ निश्चय के बल अपनी टाँगों पर टिका हुआ था। उसने राहुल को रिलीफ़-केन्द्र की रसोई के दरवाजे पर खड़ा देखा। 'बाबा, क्या यह सच है? क्या तुम सचमुच हमको चावल खाने को दोगे?' उत्तर मिला, 'हाँ, हाँ, तुमको चावल खाने को मिलेगा।' उसकी ज्योतिहीन पीली-पीली आँखों में जीवन की ज्योति जगमगा उठी। 'बहुत दूर चलकर आया हूँ। अभी-अभी गंगा मैया का पुल पार करके आया हूँ। पाँच दिन से कुछ नहीं खाया है। पाँच दिन हो गए, बाबा।' और

वह लड़खड़ाता हुआ अन्दर चला आया। वह अपने-आप से कह रहा था, 'अरे मूरख, तुझे चावल खाने को मिलेगा, चावल, अरे बेवकूफ मर-भुखे !—' और उसकी आँखों से हर्ष के आँसू निकलकर उसके चिपके हुए गालों पर बहने लगे।

पर विधाता का व्यंग ही निराला है। उसका चावल का आखिरी कौर भी उसके मुँह से छीन लिया गया। जब खाना उसके सामने आया और उसे परोसा जाने वाला था तो वह मनुष्य उत्तेजना के कारण अपने-आपको वश में न रख सका और काँपने लगा। खाना बाँटा जा रहा था। उसकी बारी आ रही थी, करीब आ रही थी। वह बैठा देख रहा था कि इतने में उसकी क्षुधा-पीड़ित आँखें तीव्र उत्कण्ठा के कारण बाहर को निकल आईं; उसके पतले-से गले से व्यथा की एक कराह निकली और वह एक ओर को लुढ़क गया। वह मर गया था।

राहुल प्लेटफ़ार्म पर और तेज चलने लगा। उसकी साँस बहुत तेज चल रही थी और वह बीच-बीच में एकाध बार अपनी आँखों के आगे हाथ इस ढंग से चलाता कि मालूम पड़ता था कि जैसे भुनगों के किसी झुण्ड को सामने से उड़ा रहा हो या उसकी आँखों के सामने कोई दृश्य घूम रहा था जिससे वह छुटकारा पाना चाहता था।

प्लेटफ़ार्म के दूसरे सिरे पर कुछ लोग झुण्ड बाँधे खड़े थे। वह क्रोध में बोल रहे थे और क्रुद्ध होकर हाथ चला रहे थे। शायद कोई झगड़ा हो गया क्या ? राहुल भीड़ की तरफ चल दिया।

इस सारे झगड़े का मुख्य पात्र एक व्यक्ति था जो एक बड़े-से चीड़ के बक्स पर हाथ में पेंसिल लिये बैठा था और एक कागज पर झुका हुआ कुछ लिख रहा था। थोड़ी ही दूर प्लेटफार्म पर एक निराश्रित औरत एक दूसरे चीड़ के बक्स के पीछे करवट के बल लेटी थी—टाँगें ऊपर को सिकोड़े, आँखें बन्द किये; एक बच्चा उसकी छाती से लगा हुआ दूध पी रहा था। औरत बिलकुल निश्चल पड़ी थी, पर वह बच्चा दूध पीते-पीते अपने होंठ कभी-कभी धीरे से हिलाता था।

माँ मर चुकी थी।

एक टिकटबाबू ने प्लेटफार्म पर चक्कर लगाते समय बक्स पर बैठे हुए उस आदमी को और उस अकाल-पीड़ित औरत को फर्श पर निश्चल पड़े देखा था। वह कौतूहलवश पास आकर उस कागज को झाँककर देखने लगा था। एक कलाकार उस छोटे-से व्यथित समूह का चित्र बना रहा था। निराश्रितों को प्लेटफार्म पर आने की इजाजत नहीं थी, पर यह औरत शायद रात को किसी समय नजर बचाकर चली आई थी और वहाँ लेटकर गहरी नींद में सो गई थी। वहाँ से निकालना पड़ेगा उसे बेचारी दुखिया को। टिकटबाबू ने दुखी होकर अपना गला साफ किया और उस स्त्री को चले जाने की आज्ञा दी। पर उसका कोई उत्तर न आया। उसने अपना स्वर और ऊँचा किया और एक बार फिर आज्ञा दी। फिर भी कुछ न हुआ। टिकटबाबू बढ़कर उसके पास चले गए और सहसा भयभीत होकर चीख पड़े। वह मरी पड़ी थी।

"वह तो मर गई है," टिकटबाबू ने कलाकार से कहा। उसका स्वर धीमा और विषादयुक्त था।

"हूँ," कलाकार ने अपने काम में व्यस्त रहकर उत्तर दिया।

"तो तुमको यह बात मालूम थी ?" उसकी आँखों में आश्चर्य था और भवें तनी हुई थीं।

हाँ, वह जानता था। वह जानता था कि बच्चा अपनी मृत माता के स्तन से दूध पी रहा है।

"बड़ी अजीब बात है। क्या तुम्हारा कर्तव्य यह नहीं था कि तुम हम लोगों को सूचना देते ? माँ मरी हुई है और उसका जीवित बच्चा उसके स्तन से दूध पी रहा है !"

कलाकार ने अपना सिर जरा-सा हिलाया और सुनी-अनसुनी कर गया। इस समय उसका पूरा ध्यान अपने चित्र के हतभाग्य पात्र पर केन्द्रित था।

"तुमने इसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया ?"

कलाकार ने फिर बहुत ही धीरे से अपना सिर हिलाया।

"तुम्हारे हृदय में दया, मनुष्यता की भावना छू भी नहीं गई है क्या ?"

कलाकार ने एक क्षण के लिए फुरती से अपनी आँखें उठाईं और बोला—"मुझे शान्ति से काम करने दीजिए।" और वह फिर रेखाएं खींचने लगा।

टिकटबाबू ने बच्चे को देखा। उसमें रोने की भी शक्ति बाकी नहीं थी, पर उसे अपनी माँ के सीने का आश्रय प्राप्त था। उस औरत को मरे कई घंटे बीत चुके होंगे।

"अगर आप में जरा भी शराफत होती, जरा-सी भी मनुष्यता की भावना होती तो आप हमको सूचना जरूर देते। और आप उलटे यहाँ खड़े-खड़े अपने अश्लील ढंग से उसे देखकर चित्र बनाने में व्यस्त हैं।" टिकटबाबू का चेहरा तिरस्कार से भरा हुआ और उदास था। उनके हृदय में भावनाओं का तूफान आ रहा था। सफेद-स्वच्छ वर्दी के चमकदार बटनों के नीचे उनके सीने की धड़कन साफ दिखाई दे रही थी।

"मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे परेशान न कीजिए," कलाकार ने विनीत स्वर में कहा और फिर सहसा उसका स्वर कटु हो गया और वह तेजी से कहने लगा, "मैं सूचना नहीं दे रहा हूँ तो और क्या कर रहा हूँ ? रेलवे के अधिकारियों को नहीं, मुझे सारे देश के लोगों को इस घटना की सूचना देनी है।"

टिकटबाबू को अपने क्रोध पर काबू न रहा—"वहशी कहीं के !" इस झगड़े से आकर्षित होकर लोग घटना-स्थल पर आ-आकर जमा होने लगे। वह उस मनुष्य को घूर रहे थे जो इस घटना का केन्द्र बना हुआ था और टिकटबाबू सारी घटना कहकर सुना रहे थे। लोगों ने कलाकार को क्रोध से घूरते हुए टिकटबाबू की इस बात का समर्थन

किया कि वह व्यक्ति बिलकुल वहशी था। उसमें मनुष्यता की भावनाओं का लेश-मात्र भी बाकी न रह गया था। ऐसे ही लोगों ने तो बंगाल में इतिहास की सबसे संकटमय परिस्थिति खड़ी की थी।

लोग पास खड़े कलाकार को देख-देखकर उसकी हँसी उड़ा रहे थे, पर उसने अपनी सफाई में एक शब्द भी नहीं कहा। ऐसा मालूम पड़ता था कि अभियोग लगाने वालों की उपस्थिति का उसे बिलकुल ज्ञान ही नही था, वह उनकी ओर कोई ध्यान ही न दे रहा था। उसकी मुखाकृति कठोर हो गई थी। वह अपने काम में रत था—कभी निराश्रितों के समूह को देखता, कभी रेखाएं खींचने लगता।

एक मोटा-ताजा, तगड़ा-सा आदमी कलाकार के पास तक गया। उसके भरे हुए चेहरे पर एक बड़ी-सी काली मूँछ फड़क रही थी, जो इस बात की सूचक थी कि उसे क्रोध आ रहा है। उसके मोटे-मोटे हाथों ने झपटकर कलाकार के हाथों से पेंसिल छीन ली और उसे दूर रेल की पटरी पर फेंक दिया। और जब उसने दुबारा आक्रमण करने के लिए हाथ उठाया तो कलाकार ने अपनी तल्लीनता से चौंककर चित्रों की कापी अपने कुरते की जेब में छिपा ली। वह चिल्ला उठा—"क्या पागलपन है!" उसने चारों ओर दृष्टि डाली, एक-एक चेहरे को देखा और हैरान रह गया।

भीड़ पागल हो उठी। वह उस पर टूट पड़ी और उसे बेरहमी से मारने लगी, और उसकी चित्रों की कापी छीनने का प्रयत्न करने लगी। कलाकार जमीन पर गिर पड़ा था और अपने शरीर से अपने बहुमूल्य संग्रह की रक्षा किये हुए था। घूँसे उसके शरीर पर निरन्तर पड़ रहे थे।

यह एकतरफा लड़ाई दो-एक मिनट तक चलती रही और आखिरकार उसका चित्र छीनकर फाड़ डाला गया और उसकी कापी भी फेंक दी गई।

कलाकार उठ बैठा; उसे बहुत चोट आई थी और वह हाँफ रहा

था। उसकी दशा दयनीय थी, उसके कुरते के सब बटन टूट गए थे और उसका बनियान दिखाई दे रहा था, पर उसकी आँखों से चिंगारियाँ निकल रही थीं। "बेवकूफो," वह चिल्लाया; वह हाँफता जाता था और महीन आवाज में कहता जाता था, "बेवकूफो, तुम समझते हो कि तुमने मेरा चित्र नष्ट कर दिया है ? पर वह चीज मेरी कल्पना में सदैव के लिए सुरक्षित है। तुम मेरी कल्पना को नष्ट नहीं कर सकते। मैं जिन लोगों को इस वेदना की सूचना देना चाहता था अब भी दूँगा। सारे भारत के लोग उस मृत माता को अपने बच्चे को दूध पिलाते हुए देखेंगे।"

इतने में एक पुलिस वाला उधर टहलता हुआ आ निकला। भीड़ अपनी सफलता पर सन्तुष्ट होकर छँटने लगी। रोज-रोज उनको यह अवसर कहाँ मिलता था कि एक जन्मजात पापी को, जिसको मनुष्यता छू भी न गई हो, उचित दण्ड दें।

राहुल उतरकर रेल की पटरी पर गया और पेंसिल और कापी लाकर कलाकार को दे दी।

उसने कलाकार से कहा—"आजकल लिखने का अच्छा काग़ज़ बड़ी मुश्किल से मिलता है। काले बाज़ार में मिलता है पर दाम इतने देने पड़ते हैं कि बस···"

कलाकार ने उसे व्याकुल नेत्रों से घूरकर देखा।

राहुल कहता रहा—"बहुत बुरा हुआ। वे लोग नहीं जानते कि उन्होंने क्या किया। उन्होंने तुम्हें नहीं बल्कि उस माँ को मारा है जो वहाँ मरी पड़ी है। पर वह चित्र तुम्हारे हृदय पर अंकित है। तुम उसे फिर से खींचकर सारे देश को दिखलाओ।"

कलाकार ने फिर भी कोई उत्तर न दिया। उसकी आँखें राहुल पर जमी हुई थीं, पर वह राहुल को नहीं देख रही थीं। उसकी आँखों के सामने उसी मृत माता का चित्र नाच रहा था जो अपने बच्चे को दूध

पिला रही थी। उसने निश्चय कर लिया था कि वह उस चित्र को जरूर बनायगा।

"मैंने तुम्हारे चित्र के लिए एक नाम भी सोच लिया है—'एक परिस्थिति जो नाटक बन गई।' तुम अपना और उस भीड़ के कुछ लोगों का चित्र भी उसमें डाल देना। तुम्हारी क्या राय है?"

उसी क्षण दोनों की आँखें माँ और बच्चे को देखने के लिए मुड़ गईं, पर एक ही क्षण बाद उन्होंने आँखें फेर लीं। कुछ देर तक दोनों चुप रहे। ऐसा लग रहा था कि कलाकार किसी आन्तरिक वेदना से संघर्ष कर रहा है। उसका मुख चिन्तित था और जब वह बोला तो उसका स्वर भावनाओं के उद्वेग के कारण भारी पड़ गया था।

"उस बच्चे का क्या होगा? यह सच है कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया; इतना समय व्यर्थ बरबाद कर दिया। उस बच्चे की ओर फौरन ध्यान देना चाहिए था।"

"माँ बड़ी भाग्यशाली थी कि रेल के प्लेटफार्म पर आकर मरी," राहुल कह रहा था, "रेल के अधिकारी उसका प्रबन्ध कर देंगे। बच्चे को किसी अनाथालय में भेज दिया जायगा। उस स्त्री के मृत शरीर को लाश ले जाने वाले लोग आकर उठा ले जायंगे और दोपहर तक वह गंगा के घाट पर जला दी जायगी। जब तक वह लोग आयं तब तक तुम थोड़ी देर शान्तिपूर्वक बैठकर थोड़ा-सा काम ही कर लो।"

कलाकार ने एक बार फिर लाश को मुड़कर देखा, पर तत्काल ही दृष्टि फेर ली। उस दृश्य को देखकर उसका चित्त खराब होने लगता था।

"मैं इस दृश्य को नहीं देख सकता; मुझे घिन आती है। क्या तुम समझते हो कि मैं बिलकुल वहशी हूँ?"

राहुल उसे घूरने लगा। कलाकार में अब उस दृश्य के प्रति वह निष्पक्षता नहीं रह गई थी और उस निष्पक्षता के जाते ही उसकी कल्पना भी चली गई। मनुष्यता की भावनाएं उसके हृदय में उमड़ी पड़ती थीं।

राहुल ने एक दुःख-भरी आह खींची। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे वह मृत माता, जो प्लेटफार्म पर अपने बच्चे को दूध पिला रही थी, अब दुबारा मर गई है।

× × ×

प्रातःकाल गाड़ियों की हलचल से किसान माँ की आँख खुल गई। उसने चकराई हुई आँखों से देखा कि उसके सिर पर पेड़ की पत्तियों का शामियाना नहीं, बल्कि एक विचित्र-सी, भोंडी-सी बालकनी है और फिर उसे ध्यान आया, बिलकुल सहसा ध्यान आया, कि वह उस सड़क को तो बहुत पीछे छोड़ आई है और जादू की नगरी में सड़क के किनारे पत्थर के फर्श पर पड़ी हुई है। उसका स्वप्न सहसा साकार हो गया था।

जिस बड़ी सड़क से होकर वह कलकत्ता आ रही थी वहाँ तो पक्षियों के कलरव से प्रातःकाल के आगमन की सूचना मिलती थी। पर यहाँ शहर में हजारों गाड़ियों की गड़गड़ाहट प्रातःकाल के आगमन की सूचना देती थी—वैसी ही गाड़ियाँ जैसी गाड़ी पर बैठकर वह कलकत्ता आई थी। इस अपरिचित वातावरण में माँ का हृदय तेजी से धड़कने लगा। उसके मन में चिन्ता और उज्ज्वल आशा की भावनाएं एक साथ उठ रही थीं। अनु को इन गाड़ियों के हत्यारे पहियों से बचाकर रखना होगा। कौन जाने कोई गाड़ी ऊपर से होकर गुज़र जाय? उसने अपना मुँह मोड़ा और उस ऊँची इमारत को देखने लगी जिसमें कजली भरती की गई थी। माँ को विश्वास था कि कजली वहाँ बिलकुल सुरक्षित है। काश कि उसका बच्चा अभी तक उसके गर्भ में ही होता तो फिर वह उस बड़े महल में पैदा होता जहाँ गर्भवती स्त्रियों की देख-भाल शहर के ढंग पर की जाती थी।

अनु जाग पड़ा था। वह उठ बैठा और बड़बड़ाने लगा—"माँ, मैं भूख से मरा जा रहा हूँ।"

माँ ने उसके उलझे हुए बालों में उँगलियाँ फेरकर उनको सुलझा

दिया और उनके बीच में माँग भी निकाल दी, क्योंकि उसका खयाल था कि शहर में आदमी को साफ-सुथरा रहना चाहिए, चाहे वह मजबूरी के कारण चीथड़े ही क्यों न पहने।

"हमें अब खूब जी भरकर खाने को मिलेगा," उसने उसे धीरज बँधाते हुए कहा और फिर आश्चर्य करने लगी—कौन देगा उनको खाना। बीसियों आदमी उधर से होकर गए थे, पर किसी ने उनकी ओर ध्यान भी न दिया था। उसने एक आदमी को लोहे के उस खम्भे के पास जाते देखा जो उससे कोई पाँच गज की दूरी पर लगा हुआ था। उस आदमी ने एक हैंडिल दबाया और उस खम्भे के मुँह में से पानी की धार बहने लगी। कैसी अचम्भे की बात थी! घर बैठे चाहे जितना पानी चाहो मिल सकता था। उस आदमी ने दातुन करके अपना हाथ-मुँह धोया। माँ और अनु उसे देखते रहे और जब वह चला गया तो माँ ने कहा—"आओ अनु, खाने से पहले आकर इस पानी की कल पर हाथ-मुँह धो लो।"

माँ नल पर हाथ-मुँह धो रही थी। उतनी देर के लिए अनु गली के नुक्कड़ पर लैम्प के खम्भे के पास जाकर खड़ा हो गया। सहसा उसका मुख उत्तेजित हो उठा। वह भागा-भागा अपनी माँ के पास गया।

"माँ उस गली में बहुत-से लोग हैं, बीसियों लोग हैं। कुछ सो रहे हैं, कुछ जाग रहे हैं।"

"कैसे लोग?"

"हमारे लोग। हमारे-जैसे लोग—भूखे, बिलकुल हमारे-जैसे चीथड़े हैं उनके भी।"

माँ हैरान होकर चल दी। शायद वह लोग भी उसी की तरह अभी हाल में ही आए हैं। शायद अभी शहर के लोगों को इस बात का समय नहीं मिल पाया कि उनकी दशा पर ध्यान दें। सहसा उसको एक जानी-पहचानी-सी शक्ल गली में आती हुई दिखाई दी—वह

उसको जानती नहीं थी, पर वह उस आकृति से भली भाँति परिचित हो चुकी थी। वही मांसहीन चेहरा, वही हड्डियों का ढाँचा, भूख के कारण पिचका हुआ वही पेट और वही लड़खड़ाती हुई चाल। वह आदमी एक घूरे की बाल्टी के पास आकर रुक गया, और उकड़ूँ बैठ गया। उसकी सूखी हुई उँगलियाँ घूरे को कुरेदने लगीं। उसे केले का एक छिलका मिल गया और वह उसे लेकर चला गया। कुछ दूर जाकर वह केले की पीली छाल को दाँतों से काटकर खाने लगा।

"क्यों बेटा, यहाँ क्या कोई तुम्हें खाने को नहीं देता?" सहानुभूति और चिन्ता से उसने आगे बढ़कर उस आदमी से पूछा। उसे उस अपरिचित से बात करने में कोई लाज नहीं लग रही थी। उसको सूरत से लग रहा था कि किसी समय वह किसान था।

उस आदमी ने डबडबाई हुई आँखें एक क्षण के लिए ऊपर उठाईं और अपना छोटा-सा सिर हिलाकर बोला—"वह हमको खाना देते हैं।" केले की छाल खाते समय उसका हलक़ तेजी से चल रहा था।

माँ का चेहरा चमक उठा। एक क्षण के लिए उसके हृदय में कितना भय समा गया था।

"हम लोग कल रात को ही यहाँ पहुँचे हैं—मैं और मेरा बेटा," माँ ने अस्फुट स्वर में कहा और अनु को अपनी छाती से लगा लिया। उसका हृदय सहसा ममता से उमड़ आया था। "इसे बड़ी भूख लगी है। क्या अभी खाने के वक्त में देर है?"

उस आदमी ने अपना सिर हिलाकर कहा—"खाने के वक्त में देर कैसी, जल्दी कैसी?"

माँ अधीर हो रही थी। वह आदमी आखिर उन तमाम बातों को समझ क्यों नहीं जाता जो वह पूछना चाहती थी। वह उसके बग़ैर पूछे ही उन सवालों का जवाब क्यों नहीं दे देता?

उस आदमी ने केले का छिलका उसकी ओर बढ़ा दिया—"लो, यह ले लो। बच्चों को तो खाना पहले मिलना चाहिए।" और उसने

फिर घूरे को कुरेदना आरम्भ कर दिया कि शायद कोई और छिलका मिल जाय।

"बेटा, हमारी हँसी न उड़ाओ। हम कोई भिखारी नहीं हैं। हमें भंगी न समझो। हमारे ऊपर बुरा वक्त पड़ा तो हम गाँव छोड़कर यहाँ चले आए।"

यह सुनकर वह आदमी मुड़ा और माँ की आँखों-में-आँखें डालकर देखने लगा। वह कुछ देर के लिए रुका और फिर कहने लगा—"माँ, मेरे पास भी जमीन थी, पूरी दो पट्टी जमीन। मेरे भी बच्चे थे। वे सब रास्ते में मर गए—चारों-के-चारों। हम बहुत दूर चलकर आए हैं। बच्चों की माँ भी रास्ते में ही मर गई। मैं अभी तक जिन्दा हूँ—विधाता को हमारे ऊपर तरस भी नहीं आता, न जाने क्यों मेरी मुर्दा हड्डियों में अभी तक प्राण अटके हैं। यहाँ शहर में तो हमारे साथ कुत्तों से भी बदतर व्यवहार किया जाता है।" उसका सिर झुक गया, उसका किसानों का-सा चेहरा बिलकुल सूखा और सिकुड़ा हुआ था, बिलकुल तम्बाकू की पत्ती की तरह।

माँ काँप उठी। उससे खड़ा भी न हुआ जाता था। वह वहीं फुट-पाथ पर बैठ गई। वह कुछ कहना चाहती थी, पर उसे शब्द न मिलते थे और उसकी आवाज भर्राई हुई थी।

"कलकत्ते में हमारे ऊपर दया करने वाला कोई नहीं है, हम भूख के मारों पर?"

"दया करने वाले बहुत हैं। कई लंगरखाने खुले हैं जहाँ खिचड़ी मुफ्त बँटती है। पर सबको हर दिन नहीं मिल पाती। अन्न बहुत कम है, खाने वाले बहुत हैं। माँ, तुम मेरे साथ आओ, हम मिलकर कुछ प्रबन्ध कर लेंगे।"

"कितनी देर में चलोगे बेटा," माँ को थोड़ा-सा ढाढ़स बँध चला था।

"दोपहर में चलेंगे। अभी तो कई घंटे की देर है। बच्चा भूखा होगा, इसे केले का छिलका खिला दो; इससे पेट भर जायगा।"

अनु ने छिलके को नल पर धोकर खा लिया। माँ इस दृश्य को न देख सकी। वह मुँह फेरकर दूसरी तरफ देखने लगी। दूसरे निराश्रित भी उसी कूड़े की बाल्टी के पास कुछ खाने की चीजें ढूँढ़ने आ रहे थे। माँ वहाँ से हट आई। मारे कमजोरी के उसे मूर्च्छा-सी आ रही थी, पर वह जूठे छिलके किस प्रकार खा सकती थी। वह इसकी अपेक्षा भूख से मर जाना अधिक पसन्द करती थी।

"तुम हमारे साथ गली में आकर रहो," उस निराश्रित ने सलाह दी। "वह यहाँ इस सड़क पर तुमको नहीं रहने देंगे। वह हमारी सूरत भी नहीं देखना चाहते, हमको देखकर किसी को खुशी तो हो नहीं सकती। पीछे वाली गली में हम बीसियों ही लोग रहते हैं। वह गली एक खाली जमीन में निकलती है, जिसके चारों ओर ऊँचे-ऊँचे मकान बने हैं। बिलकुल ऐसा मालूम पड़ता है कि सारा गाँव गाना सुनने के लिए जमा हो गया है।"

माँ के दिमाग में एक चित्र घूम गया। उसका पति बरगद के घने पेड़ के नीचे पालथी मारे बैठा है और एक भजन गा रहा है। सारा गाँव चारों तरफ बैठा सुन रहा है। बच्चे भी खेल-कूद, लड़ाई-झगड़ा और रोना-धोना भूलकर बैठे बड़े ध्यान से सुन रहे हैं।

"बस, बात इतनी है कि गाना नहीं है," निराश्रित ने कहा।

"गाना नहीं है?" माँ ने उसकी बात दुहराई।

वह गली में चले गए। सड़े हुए पसीने और गन्दगी की दुर्गन्ध से घबराकर माँ ने अपनी नाक हाथ से कसकर बन्द कर ली। कोई आदमी पड़ा हुआ लगातार कराह रहा था। "इसे पेचिश हो गई है," उस मित्र निराश्रित ने कहा, "उसके लिए अच्छा ही है। वह उसे उठाकर रोगियों के अस्पताल ले जायंगे।" पर वह सोचने लगा—"वह उसे उठाकर ले जायंगे या नहीं? कौन जाने उसके भाग्य में यह लिखा भी है या नहीं?"

माँ को अपनी बेटी का ध्यान आया जो उस बड़े-से महल में पड़ी

थी। वह इस कल्पना से काँप गई कि कजली अपनी प्रसव-वेदना में उस गली में पड़ी होती। उसके हृदय में उसकी बेटी के गर्भपात के कारण जो पीड़ा थी उसको इस कल्पना से कुछ सान्त्वना मिली। उसे इस नरक में तो नहीं रहना पड़ेगा, कुछ समय के लिए रहना भी पड़े तो कई हफ्ते तो नहीं काटने पड़ेंगे। उस बच्चे का ध्यान करके, जिसे कजली ने इतने समय तक अपने गर्भ में रखा था, माँ का हृदय स्नेह और ममता से भर गया। वह सब-कुछ जानता था। अपनी माँ की कोख में ही उस अनजाने बालक को सब-कुछ मालूम था। वह अपने भावी जीवन के बारे में सब-कुछ जानता था। वह अपनी स्वेच्छा से मर गया था ताकि उसकी माँ को शहर के अस्पताल में जाकर शरण मिल सके। कितना देवतुल्य बालक था वह!···माँ का हृदय भावनाओं के आवेग से भर उठा। उसने अपनी हथेलियों से अपनी आँखें पोंछ डालीं।

सड़क के नुक्कड़ पर खड़े वह थोड़ी देर तक शहर की विचित्रता को देखते रहे। सैकड़ों रूप और आकार की मोटरें, ट्रामें, छोटी-सी साइकिल जो तीर की तरह तेज चलती थी और इतनी आवाज करती थी कि कान के पर्दे फटने लगते थे। गाड़ियों का कोलाहल उनको पागल किये दे रहा था। वह फिर गली के सन्नाटे में लौट आए—वह गली जो आने वाले महीनों में उनके लिए शरण का स्थान बनने वाली थी, जिस खोल में छिपकर वे रहने जा रहे थे।

एक नीली मोटर आकर गली के नुक्कड़ पर रुकी। उस पर एक मोटी-सी लाल लकीर खड़ी-खड़ी खिंची हुई थी और वैसी ही एक दूसरी लकीर उसको काटती हुई। कुछ आदमी एक स्ट्रेचर लेकर मोटर में से उतरे और उस आदमी को उठाकर मोटर में लिटा दिया जिसे पेचिश थी। बड़ा भाग्यवान है! कुछ दिन तो राजाओं की तरह रहेगा।

दिन बहुत धीरे-धीरे बीत रहा था। दोपहर से एक घण्टा पहले ऐसा

मालूम हुआ कि जैसे बस्ती में यकायक जान पड़ गई है। चेहरे चमक उठे। बुझी हुई धँसी हुई आँखों में छिपी हुई चिंगारियाँ भड़कने लगीं और थोड़ी देर में सारी बस्ती के मर्द, औरतें और बच्चे एक तरफ को चल पड़े। खाने का वक्त हो गया था।

"जल्दी करो, माँ," उस मित्र निराश्रित ने कहा, "चार सौ आदमियों को खाना मिलता है बस। *हिन्दुस्तान* अखबार के अहाते में खाना बँटता है। हमारे इलाके का लंगरखाना वही है। अगर तुम वक्त से पहले लोहे के फाटक के अन्दर न पहुँच गईं तो तुमको खाने को नहीं मिलेगा।"

दूसरी बस्तियों के लोग भी लड़खड़ाते हुए लंगरखाने की ओर जा रहे थे। लोगों की संख्या को तेजी से बढ़ते हुए देखकर माँ ने अपने गाँव के बरगद के पास वाले मन्दिर की शिव-मूर्ति का ध्यान करके प्रार्थना की—"हे तीनों लोक के स्वामी, दया करो। परम पिता हमें भोजन दिलवा देना। हे प्रभु, हमें किसी तरह लोहे के फाटक के अन्दर पहुँचा देना।"

"आज तो तुम थक गई थीं, इसलिए तुमने आराम कर लिया सो अच्छा किया," वह निराश्रित माँ को समझा रहा था, "पर कल से तुम सबेरे ही अपने बेटे को लेकर निकल जाना और कूड़े की बाल्टियों में से खाने के लिए कुछ ढूँढ लेना।"

उसने रूखे स्वर से पूछा—"क्या, फलों के छिलके?"

उस आदमी ने अपना सिर हिलाया। "नहीं, और भी बहुत-कुछ मिल जाता है—तरकारियों के छिलके, जूठन आदि। धीरे-धीरे तुम जान जाओगी कि क्या-क्या चीज मिल जाती है। इस खिचड़ी में कुछ ताक़त नहीं होती। शाम होते-होते फिर पेट खाली हो जाता है। उस समय छिलकों, डण्ठलों और सड़ी हुई तरकारियों को एक साथ उबालकर खा लेना," वह कुछ देर के लिए रुका और फिर कहने लगा, "गली में मोटे-मोटे चूहे हैं; दर्जनों हैं। हम में से कुछ तो चूहों को पकड़-

पकड़कर खा जाते हैं।"

माँ को घिन आ रही थी। उसने कुछ कहने के लिए अपना गला साफ किया, पर वह एक शब्द भी न कह सकी।

"यह घूरे की बाल्टियाँ, यही तो हमारे भोजन का भण्डार है, माँ! म्युनिसिपैलिटी के भंगियों की गाड़ी आने से पहले ही हम उनमें से खाने-पीने की चीज़ें ढूँढ लेते हैं। कभी-कभी हम रात को ही खाने की चीज़ें ढूँढ लेते हैं। उस वक्त कम लोग होते हैं, इसलिए आसानी होती है। अभी कल ही की बात है कि मैंने दो औरतों को एक घूरे की बाल्टी के लिए जानवरों की तरह लड़ते देखा था।"

माँ ने एक शब्द भी नहीं कहा। उसका हृदय रो-रोकर प्रार्थना कर रहा था—"हे तीनों लोकों के स्वामी, हमें भूल न जाना, हम पर दया रखना। भगवन्, किसी तरह लोहे के फाटक के पार पहुँचा देना।"

आखिरकार गरम-गरम चावल की खिचड़ी की सुगन्ध आने लगी। निराश्रितों के पास मिट्टी के प्याले या नारियल के आधे-आधे खोल थे, जिनमें वे खाना लेते थे। सबको तीन-तीन सिगरेट के डिब्बे भरकर खाना दिया जाता था। माँ के पास कोई भी बरतन न था। उसके पास जो-कुछ थोड़ा-बहुत था भी वह तो आते समय रास्ते में ही छूट गया था। उसने अपनी साड़ी का कोना फैलाकर उसमें अपना और अपने बेटे का हिस्सा ले लिया। उसकी साड़ी इतनी लम्बी तो थी नहीं इसलिए उसकी छाती थोड़ी-सी खुल गई। पर निराश्रित माँ को धीरे-धीरे लोक-लाज का ध्यान कम रहने लगा था।

वह बहुत धीरे-धीरे चबा-चबाकर खा रही थी ताकि हर कौर मुँह में अधिक देर तक रहे। उसका बेटा इतना भूखा था कि वह अकेले ही दोनों का हिस्सा खा सकता था। माँ बहुत-थोड़ा खा रही थी।

जब सबने चावल का आखिरी दाना तक खा लिया और मिट्टी के प्याले चाटकर साफ कर दिए तो निराश्रितों ने शहर के उन धनिकों को आशीर्वाद दिया जिन्होंने उनको सुफ्त भोजन दिलाने की व्यवस्था की

थी—"बाबा, जुग-जुग जियो ! भगवान् तुमको और धन दे। लच्मी तुमको इसका दस गुना धन दें।"

उनको इस बात का ध्यान ही नहीं था कि भोजन पाना उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है। वह तो यह जानते थे कि उनको वहाँ शहर में सड़क के किनारे फुटपाथों पर सोने की इजाज़त देकर और उनको मुफ्त खाना देकर उन पर बड़ी कृपा की जा रही है। नहीं तो शहर के धनवानों को क्या पड़ी थी कि वह अकाल-पीड़ितों की सहायता करें। वे ऐसा केवल इसलिए करते थे कि वह दिल के धनी थे, उनकी आत्मा भी धनी थी। "जुग-जुग जियो, बाबा ! भगवान तुम्हें और धन दे।"

जब निराश्रित लौटकर अपनी गली में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वह आदमी, जिसे अभी अस्पताल की मोटर में उठाकर लोग ले गए थे, फिर वहीं लेटा हुआ था।

वह मित्र निराश्रित, जिसे शहर के हर मामले की पूरी जानकारी मालूम पड़ती थी, माँ को बता रहा था—"उन लोगों को उसे मजबूर होकर वापस लाना पड़ा। शहर के अस्पताल खचाखच भरे हुए हैं। वह हर अस्पताल में चक्कर लगा आए, किसी में भी जगह नहीं थी। किस्मत ही खराब है इसकी, कोई क्या करे ?"

माँ को कजली का ध्यान करके बड़ी तसल्ली हुई और उसने दसवीं बार मन-ही-मन वह शब्द एक बार फिर दुहराए जो वह कजली से कहेगी, जब वह तीसरे पहर अस्पताल के मुलाकात के समय में कजली से मिलने जायगी।

कजली पूछेगी—'माँ, तुम्हें रहने को कोई अच्छी जगह मिल गई कि नहीं ? और खाने का क्या प्रबन्ध किया है ?'

वह उत्तर देगी—'हाँ बेटी, अच्छी जगह मिल गई है। खाने को भी मिल जाता है। काम भी मिल गया है और मजूरी भी अच्छी मिलती है। शहर के लोग हमारा भी उसी तरह ध्यान रखते हैं जैसे वह तुम्हारा रखते हैं।"

'और अनु, माँ ? वह तो मजे में है ?'

'वह बहुत मजे में है। अनु ने शहर के रंग-ढंग सीख लिए हैं। वह बिलकुल शहर का लड़का हो गया है। नई धोती पहन ली है उसने।'

'और तुमने ? तुमने नई साड़ी नहीं पहनी, माँ···'

इस प्रश्न से वह बहुत घबराती थी। इसका कोई उत्तर अभी तक उसकी समझ में नहीं आया था। वह सोच ही रही थी कि ऐसा मालूम हुआ कि शहर के बीच में से एक जोर की चीखने की आवाज आई और गली-गली में गूँज गई। अनु माँ से चिपट गया।

"डरने की कोई बात नहीं है," उस निराश्रित ने अपना छोटा-सा सिर हिलाते हुए कहा, "सिरेन है, इस बात की चेतावनी दे रहा है कि जापानी हवाई जहाज बम बरसाने आ रहे हैं। लोगों से कहा जा रहा है कि वह जाकर खाइयों में छिप जायं।"

बस्ती में एक भी आदमी नहीं हिला। कुछ लोग सिर उठाकर आसमान की तरफ ताकने लगे। वह निराश्रित कहता रहा—"जापानियों को हमारे ऐसे गरीब लोगों से कोई बैर नहीं है। हमें किस बात का डर ? और अगर हमारे ऊपर बम गिरा भी तो क्या ? हमारा जीवन है ही किस लायक़ ? मर भी जायंगे तो कौनसा नुकसान हो जायगा ?"

जापानी ?···आकाश में उनके जहाज उड़ रहे हैं ? तो वे समुद्र के रास्ते नहीं आ रहे हैं ? तो क्या अब वे बरूनी के पास आकर अपनी फौजें नहीं उतारेंगे, उस स्थान पर जिसका रास्ता बरूनी के बड़े बरगद से बैलगाड़ी पर सिर्फ तीन घण्टे का था ? तो वे सब बातें झूठ थीं, केवल किसानों की आँखों में धूल झोंककर और उनको डराकर उनका चावल खरीद लेने की चाल थी ?

माँ का चेहरा क्रोध और तिरस्कार से कठोर हो गया। उसकी आँखों के आगे चमकदार अन्न के ढेर नाच रहे थे।

माँ को अपने बेटे की चिन्ता लगी थी। वह चाहती थी कि उसे

ले जाकर किसी खाई में छिपा दे। पर वह खाई मिलेगी कहाँ ? वह निराश्रित अपनी जगह से नहीं हिला और वहीं लेटकर सोने का प्रयत्न करने लगा।

अनु ने आश्चर्य से पूछा—"ये लोग इतने जोर की जंगी चीख कैसे पैदा करते हैं ?"

उस आदमी ने उत्तर दिया, जो अपनी बातों से सर्वज्ञानी मालूम होता था, "तुम नहीं जानते, वहाँ किले में एक ताड़ का इतना लम्बा भोंपू लगा है जिसमें सौ नलियाँ हैं। हर नली के सिरे पर एक गोरा सिपाही खड़ा होकर उसमें हवा फूँकता है। भोंपू की चोटी पर एक बहुत बड़ा-सा छेद है, उसमें से जब इन सौ नलियों की हवा निकलती है तो यह जोरदार आवाज पैदा होती है।"

उस दिन शहर पर दुश्मन के कोई जहाज आने वाले नहीं थे। केवल लोगों की परीक्षा करने के लिए सिरेन बजाया गया था कि वह खाइयों में शरण लेते हैं कि नहीं। सिरेन दस मिनट तक बजता रहा और फिर यकायक बन्द हो गया।

शहर में फिर जिन्दगी की चहल-पहल शुरू हो गई। होटलों में खाने-पीने की चीजें भरी पड़ी थीं। सिनेमा-घरों में लोग ठसाठस भरे हुए थे और टैंकों को लादकर ले जाने वाली ट्रकें अपने भीमकाय बोझों से लदी सड़क पर मन्द गति से लुढ़कती चली जा रही थीं।

रात के समय जब गली के सब लोग सो गए थे, वह आदमी, जिसे पेचिश थी, दुःसह पीड़ा से कराह रहा था। वह मल-मूत्र की गन्दगी में लेटा हुआ था; उसे नींद नहीं आ रही थी। बड़े-बड़े काले चूहे इधर-से-उधर कूद-फाँद मचा रहे थे। जूँओं का एक झुण्ड नए आने वालों की सुगन्ध पाकर अपने पुराने निवास-स्थान से निकला और माँ और बेटी के बालों में जा घुसा। उनकी नाक दुर्गन्ध के मारे सड़ी जा रही थी ! उनके सिर में असंख्य जूँएं थीं और वह बड़ी सड़क वाले निराश्रित अब शहर के निराश्रितों की पंक्ति में सम्मिलित हो गए थे।

पन्द्रह

मंजु चौंककर उठ बैठी और कान लगाकर सुनने लगी। वह अपने दोनों हाथों से अपना सीना मजबूती से दबाए हुए थी। कोई बहुत भयानक ढंग से कराह रहा था जैसे कोई जानवर किसी तीव्र पीड़ा से छटपटाता है। एक क्षण के लिए कराहना बन्द हो जाता, पर तुरन्त ही फिर शुरू हो जाता और कराह देर तक गूँजती रहती। मंजु उसे सुनकर सहन न कर सकी। वह अपने पति के ऊपर झुकी और उसको जगाने लगी—"उठो, सुनते हो, उठो जरा!"

उसने आँख खोलकर अँगड़ाई ली। वह दर्दनाक चीख उसे भी सुनाई दी।

"कोई बेचारा भूखा होगा," उसने बिस्तर पर से उठते हुए कहा।

"मेरा तो दिल बैठा जा रहा है। इतनी रात गये न जाने कौन हमारे दरवाजे पर इतनी बुरी तरह चीख रहा है!"

"हमारे दरवाजे पर नहीं चीखेगा तो किसी और के दरवाजे पर जाकर चीखेगा, क्या फर्क है," राहुल ने बत्ती जलाते हुए कहा, "कौन जाने, शायद रात को भूख ज्यादा सताती हो।"

उसने खिड़की में से झाँककर सड़क पर देखा। सड़क पर बत्ती की रोशनी में किसी का शरीर दिखाई दिया। वह देर तक बड़े गौर से देखता रहा।

"कोई औरत है," वह मुड़ा और दरवाजे की तरफ चल दिया। "भूखी नहीं है। जब भूख बहुत सताती है तब कोई इस तरह नहीं चिल्लाता, चुपचाप पड़ा रहता है।"

मंजु पसीने में नहाई बैठी थी। छत पर बिजली का पंखा लटका हुआ नियमित क्रम से घूम रहा था, और रात की घुटी हुई दुःखदायी गरमी को सारे कमरे में फैला रहा था। मंजु ने अपनी बाँह से अपने ऊपर वाले होंठ का पसीना पोंछा। सड़क पर क्या हो रहा है? उसकी तीव्र इच्छा हो रही थी कि वह खिड़की से झाँककर देखे। पर लाशों से उसे बहुत डर लगना था। और मरते हुए लोगों से भी उसे बहुत डर लगता था। उसे ऐसा लग रहा था कि उसके पति को गये बहुत देर हो गई है। जाते समय वह जल्दी में दरवाजा खुला ही छोड़ गया था। मंजु को बरामदे में काली-काली परछाइयाँ दिखाई दे रही थीं। उसे अन्धेरे से बहुत डर लगता था। उसे लगता था कि अन्धेरे में भयावह मृत्यु वास करती है। चारों तरफ मृत्यु का ही राज्य था। सारी पृथ्वी मृत्यु के जाल में फँसी हुई थी। मंजु बहुत दिन से सोच रही थी कि यहाँ से कहीं चली जाय, पर उसका पति उन अकाल-पीड़ितों को छोड़कर जाना नहीं चाहता था, जिनकी सेवा का भार उसने अपने सिर पर ले रखा था। उसने मंजु को उसके माता-पिता के पास शिमला भेज देना चाहा। पर वह उसे उस विनाश के बीच छोड़कर जाने को तैयार न हुई। ऐसा नहीं था कि केवल उसको ही वहाँ से कहीं भाग जाने की आवश्यकता थी। राहुल के लिए शायद उससे भी ज्यादा, कहीं ज्यादा, इस बात की जरूरत थी कि वह कहीं चला जाये। उसका मन अपने अन्वेषण के कार्य में तनिक भी न लगता था। वह इतना बेचैन था, इतना दुःखी था कि कभी-कभी वह बड़ी देर तक बैठा हुआ खाने को घूरता रहता और फिर धीरे-से एक कौर उठाकर खा लेता और खाते ही उसका चेहरा विषाद से भर जाता, और वह खाना छोड़कर उठ जाता। उसकी आँखों में कभी-कभी घोर उदासी छा जाती और यदि

कोई उसे देख लेता तो वह उसे छिपाने के लिए बनावटी हँसी हँसने लगता। मंजु को उसकी उन आँखों और उसकी उस मुस्कराहट को देखकर रोना आ जाता था। उसने निश्चय कर लिया था कि वह अपने पति के फैसले को बदलने का प्रयत्न करेगी। उसने कई बार कोशिश की कि वह बीमार पड़ जाय और डॉक्टर उसे समुद्र-तट पर जाने के लिए कह दे। फिर तो राहुल को उसे लेकर जाना ही पड़ेगा। अब और अधिक समय नष्ट करने का अवकाश न था। मृत्यु का प्रबल तूफान कलकत्ता में दिन-प्रतिदिन चढ़ता ही जाता था।

निरन्तर कराहने की आवाज़ आ रही थी। एक खोखला करुण रुदन, जो हलक के बहुत नीचे कहीं पेट में से आता हुआ प्रतीत होता था, "माँ! माँ-गो-ओ! एक दाना चावल, माँ, दया करो माँ, माँ-गो-ओ!" सारे दिन यही स्वर सुनाई देता था और जी न जाने कैसा-कैसा होने लगता था, खाना गले के नीचे नहीं उतरता था; गले में ही लेई की तरह चिपककर रह जाता था। सारा दिन, सारी रात, प्रति क्षण, प्रति पल घर के दरवाजे पर, पड़ोसियों के दरवाजे पर यही स्वर सुनाई देता और धीरे-धीरे कान इस स्वर के इतने आदी हो चले थे कि अब उसको सुनकर वह पहले-सी सहानुभूति, वह पहले-सी समवेदना नहीं होती थी। अब इस स्वर से बस उतनी ही तकलीफ होती थी जितनी किसी जानवर के मरते समय की चीख सुनकर। प्रतिदिन वही रोना वही चिल्लाना सुनते-सुनते उस स्वर से घृणा-सी हो जाती थी। अब वह करुण क्रन्दन हृदय को प्रभावित नहीं करता था। निराश्रितों को मनुष्य नहीं समझा जाता था, मानो उनकी जाति ही अलग थी, जिनको किसी पीड़ा का अनुभव नहीं होता था, जो मनुष्यों से निम्न स्तर के प्राणी थे। और उन प्राणियों के प्रति समवेदना की कोई जरूरत ही नहीं थी जिनकी भावनाएं कुण्ठित हो गई थीं। ये लोग बड़े कृतघ्न होते हैं। एक निराश्रित स्त्री को उसके गोद के बालक के लिए एक कटोरा चावल का पानी दिया गया। सहसा वह चीख-चीखकर रोने

लगी, "माँ-गो-ओ ! यह तुमने क्या दे दिया ? मेरा बच्चा तो इसे ीकर मर गया। देखो तो। माँ-गो-ओ, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ा कि तुमने मेरे लाल को मार डाला ?" जिन लोगों ने उसके प्रति दया दिखाई थी वह बहुत लज्जित हुए और घबराकर उन्होंने उसे दो रुपये दिए कि वह ज्यादा शोर न मचाए। वह क्या जानते थे कि वह औरत इस मरे हुए बच्चे को लिये इसी तरह घर-घर जाती थी और लोगों को बेवकूफ बनाकर पैसे ऐंठती थी। ये लोग इस लायक थे ही नहीं कि इनके प्रति दया-भाव दिखाया जाय; इनके हृदय कुत्सित हो गए थे।

मंजु और उसके प्रकार के न जाने कितने ही और लोग अपनी आत्मा को इसी प्रकार की बातों से सन्तुष्ट रखते थे और उस युग की सबसे बड़ी दुर्घटना के प्रभाव से अपने हृदय को सुरक्षित रखते थे कि कहीं यह दुर्घटना उनके हृदय में घुसकर उसके टुकड़े-टुकड़े न कर दे।

राहुल कमरे में लौट आया। वह जल्दी से अपने बिस्तर के पास गया और टेलीफोन उठाकर कोई नम्बर बताने लगा। उत्तर की प्रतीक्षा करते हुए उसने मंजु से कहा—"एक औरत है, उसके बच्चा होने वाला है। वह बच्चा जनने का प्रयत्न कर रही है।" उसका स्वर बहुत धीमा और गम्भीर था।

वह घूरती रही। उसे अपने कानों पर विश्वास न होता था। वह बड़बड़ाई—"बच्चा हो रहा है?" पर राहुल का ध्यान कहीं और था; वह उसकी बात नहीं सुन रहा था। वह टेलीफोन पर कुछ कह रहा था। वह झुँझलाया हुआ मालूम पड़ता था और उसने आखिरकार टेलीफोन पटक दिया। फिर उसने टेलीफ़ोन उठाकर दूसरा नम्बर माँगा। उसकी आँखें टेलीफोन-डायरेक्टरी के पृष्ठ पर जमी हुई थीं। उसका क्रोध बढ़ता जा रहा था। मंजु ने उसे किसी को टेलीफोन पर डाँटते हुए सुना, 'भाड़ में जायं आपके कानून। अगर कोई पलंग खाली नहीं है तो उसे फ़र्श पर क्यों नहीं लिटाया जा सकता ? आपको डॉक्टर होकर इतनी-

सी बात समझ में नहीं आती कि वह औरत सड़क पर बच्चे को कैसे जन्म देगी।" उसने टेलीफोन रख दिया और फिर एक तीसरा नम्बर माँगा।

आखिरकार जब उसने अन्तिम बार टेलीफोन रखा तो उसका चेहरा तमतमाया हुआ था।

"मंजु, जरा इधर आओ। हम उसे सड़क पर इस तरह नहीं पड़ा रहने दे सकते। सब अस्पतालों ने जवाब दे दिया है कि उनमें जगह खाली नहीं है; वे उसे नहीं रख सकते।" उसकी आँखों में खून उतर आया था—"बदमाश! पाजी कहीं के!"

"मैं माँ को नीचे बुला लाऊँ?" मंजु ने धीरे से कहा। उसकी आँखें फटी हुई थीं। पर राहुल ने अधीर होकर उसकी बात काटते हुए कहा, "नहीं, बाद में। पहले उस औरत को चलकर अन्दर तो ले आयं।" उसने लपककर एक चादर उठा ली और उसे लेकर नीचे भागा।

मंजु भी उसके पीछे-पीछे गई। उसके हृदय में भय और उत्तेजना थी। वह घर की चौखट पर रुक गई, और घबराकर बाहर देखने लगी। अब वह स्त्री कराह नहीं रही थी। वह पीठ के बल लेटी थी, उसकी टाँगें फैली हुई थीं और उसकी आँखें बन्द थीं। उसके जीर्ण-शीर्ण दुर्बल शरीर की ठठरी में, जो एक गज-भर के चीथड़े से ढकी हुई थी, उसका फूला हुआ पेट बहुत ही बड़ा मालूम पड़ता था। राहुल ने उसे धीरे से उठाकर चादर पर लिटा दिया। उसने आँखें खोल दीं; उनमें अथाह वेदना भरी हुई थी। उसके होंठ धीरे से हिले और एक हल्की-सी कराह निकल गई। किसी ने उसे धीरज बँधाया—"माँ, डरो नहीं, सब ठीक हो जायगा," राहुल ने यह कहते हुए मंजु की तरफ देखा और उसे संकेत से बुलाया। वह जल्दी से चौखट के नीचे उतर आई। दोनों ने मिलकर उस स्त्री को उठा लिया और बैठक में ले जाकर एक दीवान पर लिटा दिया। उसके धूलि-धूसरित केश जरी की गद्दी पर बिखरे हुए थे।

"मैं डॉक्टर को टेलीफोन करता हूँ," राहुल ने कहा। स्त्री ने आँखें बन्द कर लीं और चुप लेटी रही। वह शान्त हो गई थी. ऐसा लगता था कि उसकी पीड़ा और लज्जा का अन्त हो गया है। वह मूर्च्छा में पड़ी थी। "मंजु तुम इसके पास रहो, मैं ऊपर से जाकर माँ को भेजता हूँ।"

मंजु दीवान के पास खड़ी रही और उसके निर्जीव शरीर को देखती रही। उस किसान स्त्री के सूखे हुए चेहरे की कनपटियों और गालों में गहरे-गहरे गढ़े पड़े हुए थे और सारा चेहरा दर्द में डूबा हुआ मालूम पड़ता था। उसका दर्द इतना साकार था कि ऐसा लगता था कि उसको हाथ से छुआ जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है। पर उस पीड़ा में घृणा नहीं होती थी, क्योंकि उसमें एक गर्भवती माता की कोमलता मिली हुई थी, एक ऐसी आभा मिली हुई थी जो मनुष्य के अन्दर से उत्पन्न होती है। इसीलिए उस पीड़ा के प्रति तिरस्कारमय समवेदना नहीं बल्कि एक व्यथित कर देने वाली सहानुभूति होती थी। विवश होकर अनायास ही उस निस्सहाय का शिथिल हाथ अपने हाथों में थाम लेने को जी चाहता था; उसे कोमल शब्दों में सान्त्वना देने को जी चाहता था; उसकी आँखों की गहराई में उतरकर देखने को जी चाहता था, जिनमें विवशता के भय की आड़ में सुखद सपने छिपे हुए थे, कम-से-कम प्रतीत ऐसा ही होता था।

मनुष्य का हृदय पीड़ा को देखकर उस समय सबसे अधिक समवेदना से भर उठता है जब वह अपने को भी उसी प्रकार की पीड़ा सहन करते हुए कल्पना कर सकता है। यह एक अटूट नियम है। जब मंजु ने उस स्त्री के क्षीण शरीर को देखा और जब उसके कूल्हों पर दृष्टि पड़ी, जो भूख के कारण बिलकुल सूख गए थे, तो अनायास ही उसके हृदय में अपनी प्रसव-वेदना की याद ताजी हो गई, यद्यपि वह याद अब बहुत धुँधली पड़ चुकी थी और बात बहुत पुरानी हो चुकी थी। इतना क्षीण मनुष्य किस प्रकार अपने जीवन की अन्तिम लड़ाई लड़

सकता है ? वह वहाँ सड़क की धूल में पड़ी आधी रात को प्रसव-वेदना से चीख रही थी। न उसका पति उसके पास था और न कोई सगा-सम्बन्धी। बच्चे को जनने के समय कोई उसकी सहायता करने वाला भी न था। वह बिलकुल अकेली पड़ी थी। मंजु इस विचार-मात्र से घबरा सी गई। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए। इतने में वह औरत थोड़ी-सी हिली-डुली और कराहकर फिर पीड़ा से व्यथित होकर बिलकुल निर्जीव हो गई। मंजु ने अपनी साँस साध ली। वह लगातार जीने की तरफ कान लगाए कदमों की आहट सुनने का प्रयत्न कर रही थी और सोच रही थी कि माँ जल्दी से क्यों नहीं आ जाती। वह निराश्रित स्त्री उसको आँखें फाड़-फाड़कर घूरने लगी और उसके निःशब्द धीरज को तोड़कर एक दबी हुई चीख निकल पड़ी। उसके शरीर में भीषण द्वन्द्व चल रहा था। उसके पतले-पतले शिथिल हाथ सख्त पड़ गए और उसने अपनी उँगलियों से दीवान की चादर को कसकर पकड़ लिया और अपनी जबान को दाँतों से इतनी जोर से काट लिया कि खून की एक धार उसके विकृत मुख से निकलकर बहने लगी।

मंजु दरवाजे की ओर भागी। भय से उसका स्वर कर्कश हो गया था और वह चिल्लाई—"माँ, माँ, जल्दी आओ!" और लौटकर वह जल्दी से उस औरत के पास भागी। रक्त की धारा से उसका मुँह लाल हो गया था और उसकी आँखों की ज्योति बुझ गई थी। "माँ!" उसने दरवाजे से चिल्लाकर पुकारा।

कुछ ही क्षण बाद वह दोनों जीने पर से जल्दी-जल्दी उतरते हुए दिखाई दिए—माँ और राहुल।

राहुल शान्त खड़ा था और माँ भी। फिर माँ ने झुककर उस स्त्री की खुली हुई आँखों को धीरे-से बन्द कर दिया जो लगातार किसी अज्ञात लक्ष्य को घूर रही थीं।

"मर गई," राहुल ने दूर शून्य में देखते हुए कहा।

मर गई ? इतनी जल्दी और इतनी आसानी से ? मालूम होता है

कि सो गई है। मंजु उसके चेहरे पर से अपनी दृष्टि न हटा सकी। मंजु ने उस एक क्षण में बहुत-कुछ सीखा, क्योंकि उसके हृदय पर से एक भय का बोझ उतर गया था।

तो यह थी वह घटना। हेमन्त की उस रात्रि में मंजु को जीवन के बारे में एक नया ज्ञान प्राप्त हुआ। वह अब तक जीवन की विपदाओं से दूर रही थी, उनसे डरती थी, उनको घृणित और गन्दा समझती थी, पर सहसा वही जीवन उस पर एक उद्वेग का तूफान बनकर छा गया। शुरू में तो उसने एक विपदाग्रस्त को अपनी शक्ति देकर उसकी सहायता की थी और सेवा का गौरव उसके लिए एक नया अनुभव था, एक ऐसा उल्लास था जिससे वह अब तक अनभिज्ञ थी। फिर उसने उस निराश्रित स्त्री को मानव की पृष्ठभूमि में देखा। अब उसे उस स्त्री में वह कंगाल नहीं दिखाई देता था जो सदा भीख के लिए गिड़गिड़ाया करता है, जो अपने ध्वस्त जीवन को मजबूती के साथ अपने सीने से लगाए रहता है, एक ऐसा निरर्थक जीवन जो मौत से बदतर है। अब उसे वह स्त्री एक गन्दी, अस्वच्छ, मैले-कुचैले जूँ-भरे बालों वाली भिखारिन के रूप में नहीं, बल्कि एक गर्भवती माता के रूप में दिखाई दे रही थी जो एक नये जीवन की रचना करने वाली थी, पर उससे यह सौभाग्य छीन लिया गया था; उसे सड़क पर ठोकरें खाने के लिए डाल दिया गया था। आखिर वह इस संघर्ष को सहन न कर सकी और अपने अनजने बालक को गर्भ में ही लिये हुए मर गई और उसके अस्तित्व का कुछ भी महत्त्व न रह गया। वह केवल एक लाश थी जिसे लाश उठाने वाले कुछ देर में उठा ले जायंगे।

यातना की उस ज्वाला ने, जिसमें एक स्त्री बलि चढ़ गई, एक दूसरी स्त्री में एक ज्योति, एक ज्ञान, एक मानव बना देने वाली कोमलता को जन्म दिया और फलस्वरूप जो लोग दुःख के मारे हुए थे वे अब एक दूसरी जाति के लोग न रह गए, जिनके आत्मा न थी, जो जीवित

न थे, बल्कि सब एक हो गए—सब मर्द और औरतें एक समान हो गईं।

जब रात खत्म होने को थी और लाश उठाने वाले जा चुके थे, राहुल ने खिन्न होकर कहा—"एक्मोलेन्सी और आनरेबिल, इन्हीं लोगों ने मिलकर हमारी एक और स्त्री को मार डाला। उनसे उनके एक-एक पाप का बदला लिया जायगा, गिन-गिनकर बदला लिया जायगा। बदमाश! पाजी कहीं के!"

मंजु उसे घूर रही थी। उसके नीलवर्ण उत्तेजित चेहरे में आज मंजु ने एक ऐसा सौन्दर्य देखा जो उसने आज से पहले इतने वर्षों में कभी नहीं देखा था। उसने अपने पति के सच्चे रूप को देखा, उसकी सच्ची भावना को देखा और पहली बार उसकी समझ में आया कि उसका पति जन-साधारण के जीवन को सुखी बनाने का भूखा है। उस समय उसकी समझ में आया कि विश्व-परिस्थिति की क्रूर यथार्थताओं के बीच, विस्तृत रूप से फैली हुई पशुता के बीच, उसकी यह उमंग उसे सदा व्यर्थ ही बेचैन और दुखी क्यों बनाए रहती है।

वह प्यार-भरी दृष्टि से उसे और ध्यानपूर्वक देखने लगी और उसके हृदय में कोमल भावनाओं की जो कसक थी उसके कारण उसका हृदय इतने वेग से धड़कने लगा कि वह थोड़ा-थोड़ा हाँफने लगी।

× × ×

चौरंगी रोड के एक नुक्कड़ पर, जहाँ बड़ी भीड़-भाड़ रहती थी, एक छोटा-सा लड़का फुटपाथ पर अपनी ही तरह के दूसरे लड़कों के साथ जूतों पर पालिश करके खूब पैसे कमा रहा था। अनु पास खड़ा उसे बड़े ध्यान से देख रहा था; उसका चार फुट लम्बा शरीर एक लैम्प के खम्भे के सहारे टिका हुआ था।

उसने उसे बीसियों आदमियों के जूतों पर पालिश करते देखा था और अब वह पूरी क्रिया अच्छी तरह उसकी समझ में आ गई थी। पहले दाहिने पैर का जूता लिया, उसकी गर्द साफ की। फिर उस पर

जोर से ब्रुश रगड़ा और पालिश लगाकर छोड़ दिया। फिर बाँए पैर का जूता लिया, ब्रुश रगड़ा, पालिश लगाकर छोड़ दिया। फिर दुबारा दाहिने पैर का जूता लिया उसे एक कपड़े से रगड़कर आइने की तरह चमका दिया, फिर लाल रंग में भीगे हुए रुई के टुकड़े को लेकर तले के किनारे-किनारे रंग लगाकर काम पूरा कर दिया; और इस काम के दो आने मिलते थे। अनु इस धन का विचार करके दंग रह गया, इतनी-सी मेहनत के दो आने, सिर्फ लड़के ही नहीं जवान मर्द भी इसी काम के द्वारा अपनी रोजी कमाने का प्रयत्न करते थे। फिर भी दिन-भर में चार गाहक ढूँढ लेना और आठ आने कमा लेना कोई मुश्किल बात न थी।

अठन्नी! अनु अपनी कल्पना में देख रहा था कि उसके पास एक अठन्नी है। अगर उसे कहीं से पैसा मिल जाय तो वह एक ब्रुश, एक जूता रखने का स्टैंड और दो पालिश की डिबियाँ खरीद ले—एक लाल और एक काली, और काम शुरू कर दे। फिर वह मेहनत करके, अमीर लोगों के जूतों पर पालिश करके इतने पैसे कमाने लगे कि अपने लिए और अपनी माँ के लिए खाना खरीद सके ताकि उनको निराश्रितों की तरह खैराती लंगरखाने पर जाकर भीख माँगकर न खाना पड़े। और फिर आज शाम को तो कजली भी अस्पताल से आ जायगी। लगभग पूरे एक महीने बाद उसके लौटकर आने की माँ को बहुत खुशी थी, पर खुशी से कहीं ज्यादा उसको दुःख था। क्योंकि अब कजली भी निराश्रित हो जायगी, खैराती लंगरखाने में खाना खायगी और सैकड़ों दूसरे लोगों की तरह सड़क पर सोयगी और उसके लम्बे-लम्बे काले बालों में जूँएं चढ़ जायंगी। माँ ने उससे कह रखा था कि वह कलकत्ते में बहुत मजे में हैं। कजली जब आकर वास्तविक दशा देखेगी तो उसे कितना दुःख होगा? माँ के हृदय को यह चिन्ता खाए जा रही थी।

बस, उसे कहीं से केवल इतनी पूँजी मिल जाय कि वह फुटपाथ पर बैठकर जूतों पर पालिश करने का काम करने लगे! अनु को ऐसा

प्रतीत हुआ कि उसके हृदय में इस अभिलाषा को पूरा करने की एक तीव्र ज्वाला भड़क रही थी, पर इस अभिलाषा के पूरा होने की कोई आशा न थी। उसका सिर भूख के मारे चकराने लगा। उसे खाना खाए बहुत देर हो चुकी थी और इन दिनों खिचड़ी में कुछ पेट भी नहीं भरता था। पास ही एक घूरे की बाल्टी थी। अनु उस ढेर में खाने की चीजें ढूँढ़ने के लिए उधर को सरक गया। वह अब इस काम में काफ़ी अभ्यस्त हो गया था।

उसे कूड़े के ढेर में एक बहुत सुन्दर रंग-बिरंगी तस्वीर मिल गई। तस्वीर बिलकुल साफ थी और एक कोने पर थोड़ी-सी मुड़ी होने के अतिरिक्त उसमें कोई विकार नहीं था। अनु ने बड़ी उत्सुकता से उसको उठा लिया और उसे अपने हाथ से पोंछकर साफ किया। चित्र में एक बड़ा-सा जहाज बना था जिसमें उँगलियों की तरह तोपें लगी हुई थीं और बिलकुल वैसे ही हवाई जहाजों का एक झुण्ड आकाश पर उड़ रहा था जैसे उसने उस दिन शहर में उड़ते हुए देखे थे—सात, आठ, नौ। जहाज के सिरे पर लगी हुई तोप में से लपटें और धुआँ निकल रहा था। कजली को वह चित्र बहुत पसन्द आयगा, वह इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित रह जायगी। पर इधर कुछ दिनों से चित्रों के प्रति उसकी रुचि कम हो चली थी। एक जमाने में वह तस्वीर पाकर कितनी खुश होती थी! कूड़े के ढेरों में बहुधा अच्छी-अच्छी तस्वीरें मिल जाती थीं और अनु ने अपनी बहन के लिए बहुत-सी तस्वीरें जमा कर ली थीं—लगभग बीस से ज्यादा। दो-तीन तस्वीरें तो वह कजली के पास अस्पताल भी ले गया था, बाकी उसने उसे अस्पताल से वापस आने के बाद देने के लिए रख छोड़ी थीं। वह उन्हें पाकर चकित रह जायगी। कजली ने अस्पताल में तस्वीरों को ठीक से देखा भी नहीं था जैसे उसे उनसे कोई रुचि ही न हो और उसने कहा था, "अनु भैया, तू मेरी इतनी फिक्र क्यों करता है?" अनु उसके मन की बात समझ गया था। जब उनको लगाने के लिए दीवार ही

न हो अच्छी-अच्छी तस्वीरों के होने न होने से फायदा? पर वह जीवन-भर इसी तरह निराश्रित थोड़े ही रहेंगे? कभी तो लौटकर वह घर जायंगे और खेतों में नई फसल काटेंगे? और घर लौटकर कच्ची दीवारों पर लगाने के लिए कजली के पास बहुत-सी तस्वीरें होंगी।

कैसी अजीब बात है! अनु अपना मुँह सिकोड़कर सोचने लगा—जब तस्वीरों की जरूरत थी तब तो एक भी न मिलती थी और अब जब कि उनकी कोई जरूरत नहीं है वह दर्जनों की संख्या में मिलती हैं। अजीब बात है न!

उसने एक हल्की-सी आह भरी और कूड़े को और कुरेदने लगा। एक जैम का डिब्बा उसे दिखाई पड़ा। उसका दिल बल्लियों उछलने लगा। डिब्बे की बगल में थोड़ा-बहुत जैम तो लगा ही होगा और अगर तकदीर अच्छी हुई तो शायद तली में कुछ ठोस पदार्थ भी लगा हो। पर जैसे ही उसने डिब्बा उठाया, एक कुत्ता गुर्राता हुआ आया और उस डिब्बे पर अपना हक जताने लगा। अनु ने डर के मारे डिब्बा वहीं छोड़ दिया और पीछे हट गया। उसके भूख से पीड़ित शरीर में इतनी भी शक्ति नहीं थी कि वह कुत्ते के साथ लड़ता।

एक बड़ा लड़का जो उधर से गुजर रहा था पलक मारते ही सारी बात समझ गया। वह झपटा हुआ आया और कुत्ते को एक ठोकर मारकर उसने जैम का डिब्बा उसके मुँह से छीन लिया और खड़ा होकर कुत्ते के प्रत्याक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा।

कुत्ते ने प्रत्याक्रमण किया। वह बहुत कमजोर और भूखा था, उसके शरीर के सब बाल गिर गए थे और वह कुछ ऐसा अजीब-सा लगता था कि मानो वह नंगा हो। पर वह लड़ा बहुत भयानक ढंग से, क्योंकि भूख उसे बहुत सता रही थी और उसने उचककर अपने शत्रु को काट लिया। यह देखकर अनु ने एक पत्थर उठाकर कुत्ते के सिर पर दे मारा।

कुत्ता अपना सिर झुकाए, पिपियाता हुआ दुम दबाकर एक ओर को भाग गया।

बड़ा लड़का उत्तेजना और कमजोरी के कारण हाँफ रहा था। उसकी बाँह में खून निकल रहा था, पर उसे इस बात का संतोष था कि उसकी विजय का फल उसके पास सुरक्षित था। वह अपने हर्ष और संतोष में इतना मग्न था कि उसे अब तक उस छोटे बालक का ध्यान ही न आया था जो ललचाए हुए कातर नेत्रों से उसे खड़ा देख रहा था।

बड़ा लड़का थोड़ी देर तो झिझका और जैम का टीन अपने हाथों में मजबूती से पकड़े उसे ध्यान से देखता रहा, फिर एक गहरी साँस लेकर उसने ऊपर देखा और अपना बहुमूल्य धन उसके सामने बढ़ा दिया—"लो तुम इधर से थोड़ा-सा चाट लो; दूसरी तरफ का मेरे लिए छोड़ देना। लो चाट लो!"

सचमुच यह बहुत बड़ा त्याग था। और सही माने में यह उसकी दूसरी विजय थी।

अनु चाटने लगा।

उन दिनों निराश्रित और कुत्ते उस समृद्धिशाली नगर के दस हजार घूरों में पड़ी हुई खाने-पीने की चीजों के ऊपर अक्सर लड़ बैठते थे; और ऐसा नहीं था कि हर बार निराश्रितों की ही जीत होती हो। वह सड़क के कुत्तों को और अपने अन्दर छिपे हुए श्वान-स्वभाव को हमेशा नहीं हरा पाते थे।

सोलह

"चलो, चलो मेरे अड़ियल घोड़े !" खुक्खू अपने बाबा की पीठ पर बैठी जोर-जोर से चिल्लाकर कह रही थी और बाबा घुटनों के बल घोड़ा बने हुए कमरे के कालीन पर चल रहे थे। "सरपट चलो !" खुक्खू ने बाबा की पसलियों में एड़ लगाकर कहा।

बाबा के एक घुटने में गठिया थी, पर वह बड़ी वीरता से कमरे के एक कोने से दूसरे कोने तक अपना स्थूल शरीर लिये घोड़े की तरह चल रहे थे। "मेरा घोड़ा कितना अच्छा है," खुक्खू ने उल्लासपूर्वक कहा और घोड़ा भी खुश होकर हिनहिना दिया। उसी समय खुक्खू की माँ मंजु दरवाजे पर आई।

"बाबूजी, शहर की किसी दूकान में एडेक्सोलीन नहीं मिली···"

पर वह उनको कालीन पर घोड़ा बने हुए देखकर यकायक बीच में ही रुक गई। समरेन्द्रबाबू ने एक हाथ से अपने सवार को पीठ पर से उतारने का प्रयत्न किया, पर वह उनकी पीठ पर दृढ़ता से बैठी रही। "चलो !" उसने जोर की एड़ लगाकर फिर आज्ञा दी, "चल, अड़ियल टट्टू !"

"खुक्खू, उतर जा, बुरी बात है। चार बरस की हो गई है और ऐसी बच्ची बनती है कि जैसे छः महीने की हो। जल्दी उतर।"

"मेरे घोड़े, जरा माँ को भी तो दिखा दे कि तू कैसे हिनहिनाता

है," खुक्खू ने प्रार्थना की; पर माँ ने आगे बढ़कर उसे घसीटकर नीचे उतार दिया और एक चाँटा रसीद कर दिया। खुक्खू रूठकर खड़ी हो गई। वह अक्सर ऐसा करती थी कि मुँह फुलाकर खड़ी हो जाती थी, पर फौरन रोती नहीं थी और थोड़ी देर बाद जब यह प्रतीत होता कि अब उसका क्रोध शान्त हो गया है और वह अब नहीं रोयगी, वह सहसा फूट-फूटकर रोने लगती। समरेन्द्रबाबू उसकी इस आदत से भली भाँति परिचित थे, इसलिए उन्होंने उस परिस्थिति को रोकने के लिए पहले से ही प्रबन्ध कर लिया। उन्होंने बच्ची को अपनी गोद में उठा लिया। "माँ बहुत बुरी है, मेरी खुक्खू तो रानी बेटी है। अच्छा अपनी आँखें तो बन्द कर—नहीं ऐसे नहीं, दोनों आँखें···"

खुक्खू ने अपनी आँखें बन्द कर लीं, पहले एक और फिर दोनों। वह जानती थी इसके बाद क्या होने वाला है और उसके गदबदे गालों पर खुशी के कारण गढ़े पड़ गए। एक क्षण बाद उसने एक आँख खोली और फिर दूसरी भी। बाबा के हाथ में हमेशा की तरह चाकलेट रखी हुई थी। खुक्खू ने झपटकर चाकलेट उठा ली और चिल्लाती हुई भाग गई।

"बाबूजी, आप उसे लाड में खराब कर देंगे।"

वह मुस्करा दिए। "यह बच्ची उम्र को देखते हुए बहुत होशियार है। भला तुमने भी कभी इस बात पर ध्यान दिया? मैं उसे तीस तक की गिनती सिखा रहा हूँ पर वह एक गिनती हमेशा भूल जाती है—पन्द्रह! हमेशा गिनते-गिनते कहती है तेरह, चौदह, सोलह···" और उनका चेहरा प्यार से खिल उठा।

"डॉक्टर ने कहा है इसे एडेक्सोलीन देना चाहिए, पर किसी दवाखाने में यह दवा मिलती ही नहीं है। दवाओं की कीमतों पर अभी हाल में जो कंट्रोल लगा दिया गया है उसके कारण सब दवाएं ब्लैक मार्केट में पहुँच गई हैं।"

"अच्छा मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा, तुम चिन्ता मत करो," इतना

कहकर समरेन्द्रबाबू अपनी लिखने की मेज.की तरफ चल दिए। अगर खुक्खू को एडेक्सोलीन की जरूरत है तो उसके लिए कहीं-न-कहीं से एडेक्सोलीन आयगी।

"और बाबूजी, वह चैक ?"

"अरे हाँ, वह चैक ? इस बार मुझे कितना जुरमाना देना पड़ेगा ?" और उन्होंने एक आह भरकर चैक-बुक उठा ली।

"बाबू जी, देखिए बात यह है कि चावलों की वैगन अभी तक नहीं आई और हमारे पास स्टाक बहुत थोड़ा रह गया है, बहुत ही थोड़ा। इसीलिए इस बार भी हमको चावल ब्लैक मार्केट से खरीदना पड़ेगा।" वह खड़ी-खड़ी उनको चैक भरते देखती रही। "बाबूजी, काफी बड़ी रकम लिखिएगा," उसने प्रार्थना की।

वह आजकल अकाल-पीड़ितों की सहायता के काम में जुटी हुई थी। वह खैराती लंगरखाने को चलाने में अपने पति का हाथ बँटाती थी। इसके अलावा वह एक दूध की कैण्टीन में भी काम करती थी जहाँ चार बरस से कम उम्र वाले बच्चों को दूध बाँटा जाता था—हर बच्चे को दिन में एक बार एक कटोरा दूध। और फिर अनाथ बच्चों के लिए एक अनाथालय भी शीघ्र ही खोला जाने वाला था।

"यह लो ! देखो ठीक है न, काफी होगा ?"

उसकी आँखें चमकने लगीं—"बहुत काफी है, बाबूजी !"

वह मारे खुशी के फूले न समा रहे थे। मन-ही-मन वह भले ही यह समझ रहे हों कि इस रकम का एक हिस्सा तो उनके पास ब्लैक मार्केट और बंगाल राइस लिमिटेड के द्वारा लौट ही आयगा, पर इस समय वह इस प्रकार के संकीर्ण विचारों से सर्वथा मुक्त मालूम पड़ते थे। उनके हृदय को इस बात से खुशी हो रही थी कि उनके इस दान से कई सौ लोगों की जान बच जायगी। और उनकी यह धारणा सर्वथा उचित थी।

मंजु चैक लेकर फौरन चली गई। वह उतनी ही खुश मालूम होती

थी जितनी उसकी छोटी-सी बेबी चाकलेट पाकर हुई थी।

एडेक्सोलीन ! समरेन्द्रबाबू कुरसी के तकिए पर आराम से टिककर सोचने लगे और उनके चेहरे पर मुस्कराहट खेलने लगी। इसके बारे में सर लक्ष्मीनाथ से बात करना ठीक होगा। वही इस समय ब्लैक मार्केट के सम्राट् थे।

विचित्र आदमी थे सर लक्ष्मीनाथ भी। समरेन्द्रबाबू के हृदय में उनके लिए बड़ी प्रशंसा थी। उनसे उनको ईर्ष्या भी थी पर वह उनके प्रति घोर तिरस्कार की भावना रखते थे। सर लक्ष्मीनाथ बंगाल राइस लिमिटेड के मुख्य हिस्सेदार थे और उसकी जान थे। यह उन्हीं का काम था कि उन्होंने खूब घूस खिला-खिलाकर कम्पनी के लिए अनेकों सुविधाएं प्राप्त कर ली थीं। इससे बड़ी बात यह थी कि उन्हीं की संगठन करने की क्षमता और कुशलता के कारण इतने बड़े परिमाण में अन्न को छिपाकर जमा करने की जटिल समस्या को हल करना सम्भव हो सका था। अन्न के यह गुप्त भण्डार ठीक उन्हीं स्थानों पर थे जहाँ अकाल का भयंकर प्रकोप था। (समरेन्द्रबाबू ने अपने मस्तिष्क से चित्र के इस अरुचिकर भाग को निकाल दिया। वह ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के उस मन्त्री से सहमत थे जिसने इस अकाल को दैवी प्रकोप कहकर अपनी आँखें इस वास्तविकता के प्रति बिलकुल बन्द कर ली थीं कि किन्हीं निश्चित कारणों के फलस्वरूप यह अकाल आया है। यदि किन्हीं नैतिक तर्कों के अधीन वह स्वयं यह व्यापार न भी करें तो क्या बीसियों और लोग ऐसे नहीं थे जो उनकी जगह लेने को दौड़ पड़ेंगे ?) सर लक्ष्मीनाथ किसी पश्चिमी प्रान्त से बंगाल में आकर बस गए थे और उन्होंने वहाँ अपार धन-राशि जमा कर ली थी। शासक-वर्ग ने उनकी सेवाओं का उनको उचित पुरस्कार दिया था। धन और सम्मान, दोनों ही लक्ष्मीनाथ को प्रचुर मात्रा में मिले थे और इन्हीं दो अभिलाषाओं को हृदय में लिये समरेन्द्रबाबू अभी तक संघर्ष कर रहे थे। फिर भी सर लक्ष्मीनाथ घृणा के पात्र थे। वह अत्यन्त कलुषित

स्वभाव के निर्लज्ज आदमी थे। उन्हें किसी साहब को काम-वासना-सम्बन्धी किस्से सुनाने में एक अजीब मजा आता था। वह उन किस्सों को 'मेरे एक दोस्त' के नाम से सुनाते थे, पर समरेन्द्र बाबू और दूसरे लोग भली भाँति जानते थे कि 'मेरे एक दोस्त' की आड़ लेकर वह अपनी ही कुत्सित भावनाओं और अपने घृणित व्यभिचारी स्वभाव का परिचय देते थे। अपने-आपको प्रदर्शित करने की उनकी यह भावना भी विचित्र थी।

"हाँ, तो मैं कह रहा था, कि उस दलाल ने उस निराश्रित लड़की के मुँह में कपड़ा ठूँस दिया," बोर्ड की मीटिंग के बाद बातों का क्रम जारी था, "हाँ तो हुआ यह कि मेरे दोस्त सोने के कमरे के बाहर खड़े इन्तजार कर रहे थे। दलाल ने उसके मुँह में कपड़ा ठूँसकर उसे मारना शुरू किया। मेरे दोस्त को बाहर से घूँसों की आवाज सुनाई दे रही थी। वह उसे मार रहा था पर इस बात का ध्यान रखकर कि उसके मुँह पर किसी प्रकार की चोट न आने पाय। जिस मूर्ति को वह बेचना चाहता था उसे भला वह खराब क्यों करता? जब वह उसे जी भरकर मार चुका तो वह दलाल बाहर आकर कहने लगा, 'सब ठीक हो गया हजूर! बेवकूफ है वह लड़की। मैंने भी उसे ऐसा सबक दिया है कि याद रखेगी। बात यह है कि इससे पहले वह किसी मर्द के पास गई नहीं है। पहला ही मौका है।' मेरे दोस्त अन्दर चले गए पर उन्हें 'पहले मौके' वाली बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। उनको देखते ही वह लड़की फूट-फूटकर रोने लगी। उसका चेहरा उदास था और गाल अन्दर को धँसे हुए थे। वह लड़की मेरे दोस्त के जूतों पर सिर पटक-पटककर रो रही थी और कह रही थी, 'आप मेरे पिता के समान हैं। आप मेरी लाज की रक्षा कीजिए।' मेरे दोस्त कुछ नरम दिल आदमी हैं, उनको तरस आ गया। उन्होंने उस लड़की को गोद में बिठा लिया और उसके सिर पर हाथ फेरकर उसे कोमल शब्दों में धीरज बँधाने लगे। उनके दया दिखलाने के कारण वह लड़की और भी फूट-

फूटकर रोने लगी। फिर मेरे दोस्त ने अपनी वासना को तृप्त किया। आप यकीन जानिए कि वह उस लड़की के लिए पहला ही मौका था।"

समरेन्द्रबाबू आश्चर्यचकित बैठे थे। उनको क्रोध आ रहा था और उस व्यक्ति से घृणा भी हो रही थी। इस समय उनको भी, समरेन्द्र-बाबू जैसे नम्र स्वभाव वाले आदमी को भी, इतना क्रोध आ रहा था कि वह उस निर्लज्ज के मुँह पर थप्पड़ मार देते, पर वह अपना गुस्सा रोक गए। वह बिलकुल अवाक् बैठे, सर झुकाए अपनी उँगलियाँ चट-काते रहे।

सर लक्ष्मीनाथ यद्यपि पचास वर्ष के हो गए थे, पर देखने में इससे बहुत कम उम्र के मालूम होते थे। उनकी हमेशा कोशिश यही रहती थी कि जवान बने रहें। एक चीनी नाई उनके काले बालों को काटता और सँवारता था। उनके रेशमी सूट एक अंग्रेज दर्जी के यहाँ सिलते थे, और वह हर वक्त बने-सँवरे रहते थे। वह व्यवहार में बहुत शिष्ट, बहुत मृदुभाषी थे, अपने दोस्तों से बड़े तपाक से मिलते और हर प्रकार से उनकी सहायता के लिए तैयार रहते। अगर आपको पेट्रोल की जरूरत हो और आपके पास पेट्रोल के कूपन न हों तो उनके पास चले जाइए। आपको ऐसे सिगारों की जरूरत हो, जो बाजार में न मिलते हों, तो आपको उनसे मिल सकते थे। आपकी बेटी को बुनाई के लिए अंग्रेजी ऊन की जरूरत हो, जर्मनी की बनी हुई नींद लाने वाली गोलियों की जरूरत हो, किसी चीज की भी जरूरत हो, सर लक्ष्मीनाथ आपको दिला सकते थे। बस उनका इशारा काफी था। "मेरे भाई," वह बहुत पछताकर कहते, "आपने मुझसे अब तक क्यों नहीं कहा? आपको बड़ी परेशानी हुई होगी। मुझे इस बात का बड़ा दुःख है।"

फिर इसमें आश्चर्य की क्या बात थी कि बोर्ड के सब डाइरेक्टर उनकी बातों को बैठे चुपचाप सुनते रहते थे। सर लक्ष्मीनाथ को इस किस्म की बातों में स्पष्ट रूप से बहुत मजा आता था। वह जताते तो यही थे कि उनको यह बात नहीं मालूम है कि उनकी इस निर्लज्ज,

पाशविक बर्बरता से उनके दोस्तों को बहुत दुःख होता था। पर वास्तव में वह इस बात को अच्छी तरह जानते थे। उनको ऐसी बातों में रुचि थी। यह भी उनका एक प्रकार का मानसिक विकार था।

"क्या आपके दोस्त के लिए उस असहाय स्त्री की लाचारी का फायदा उठाना उचित था," एक डाइरेक्टर ने उनसे पूछने का साहस किया।

सर लक्ष्मीनाथ को सचमुच इस प्रश्न से बहुत आश्चर्य हुआ।

"मेरे भाई, आपकी समझ में इतनी-सी बात नहीं आती? यदि वह ऐसा न करते तो वह लड़की भूखी मर जाती। भूख से घुल-घुलकर ठठरी रह जाती और फिर मर जाती। मेरे दोस्त ने तो उसके साथ बड़ी दया और सहानुभूति दिखाई। उन्होंने उसको बदले में बहुत पैसे दिये। मैं तो आप से कहता हूँ कि इतने पैसे मिलने का उसे कोई अधिकार नहीं था।" वह केक का टुकड़ा मुँह में रखने के लिए एक क्षण के लिए रुके और फिर कहना शुरू किया, "उन्होंने उसे भयानक मृत्यु के पंजे से छुड़ा लिया। आपने कभी मोटर पर जाते समय सड़क के किनारे फुटपाथों पर पड़े हुए लोगों को नहीं देखा? बूढ़े और जवान मर्दों और औरतों के घिनौने शरीर चारों तरफ पड़े रहते हैं। कितना गन्दा दृश्य होता है! जरा सोचिए तो, उनको कई-कई दिन तक खाने के लिए एक दाना भी नहीं मिलता। आप जरा एक वक्त तो भूखे रहकर देखिए। बस एक दिन दोपहर का खाना न खाइए, फिर देखिए क्या हालत होती है।" और वह फिर रुककर केक चबाने लगे। फिर वह सहसा कहकहा लगाकर हँस पड़े, मानो बड़ी देर से वह इस हँसी को अपने अन्दर इकट्ठा कर रहे थे। वह अट्टहास उनकी दूषित मनोवृत्ति के अन्ध-कूप का एक छींटा था। वह उस प्रकार की हँसी थी जो एक भारी-भरकम साकार वस्तु के समान प्रतीत होती है। दो कहकहों के बीच उन्होंने जोर से कहा—"भाई साहब, दिन-भर मुँह में अन्न का दाना न डालिए तब मालूम पड़ेगा।"

उनमें सामाजिक चेतना छू भी न गई थी, फिर भी लोग उनको बड़ा दानी आदमी समझते थे। उन्होंने वार-फंड में जो बड़ी-बड़ी रकमें चन्दे में दी थीं उनके बारे में कौन नहीं जानता था। मुँह में सिगार लगाए हुए उनकी तस्वीर सचित्र समाचार-पत्रों में छपी थी। एक समाचार-फिल्म में भी वह अपनी मोटी-मोटी उँगलियों से विजय-सूचक V चिह्न बनाते हुए दिखाई पड़ते थे। गवर्नर साहब ने उनसे भेंट करना स्वीकार किया था। गवर्नर साहब की पत्नी ने एक दिन उनको दोपहर के खाने पर बुलाया था। वह अपना प्रचार बड़ी चालाकी से और बड़ी आसानी से करवाते रहते थे।

और उस दिन अपनी बातों का क्रम जारी रखते हुए उन्होंने कहा—"चकलों से आजकल बहुत पैसा कमाया जा सकता है। इससे पहले इस काम के लिए परिस्थिति कभी इतनी अनुकूल न थी। इस व्यापार में माँग भी बहुत है और माल भी बहुत है। खरीदने वालों और बेचने वालों दोनों को इस लड़ाई से बहुत फ़ायदा हुआ है। देखिए बात यह है कि पैसे वाले बहुत-से ऐसे लोग हैं जिनको गाँव से ताजी-ताजी आई हुई यह दुबली-पतली छोकरियाँ बहुत पसन्द हैं।" और एक बहुत बारीक फ़र्क को समझाते हुए उन्होंने अपनी ऊँगली उठाकर कहा, "देखिए, मैं दुबली-पतली कह रहा हूँ, बिलकुल सूखी हुई लड़कियाँ नहीं जिनके शरीर पर हड्डी और खाल के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं। जो अब तक भूखों मरती रही हैं उनको कुछ दिन खिला-पिलाकर मोटा करना पड़ता है तब कहीं वह सौदे के लायक़ होती हैं। उनको घी, चावल और दूध खिलाना पड़ता है ताकि उनकी हड्डियों पर मांस चढ़ जाय। उनके बालों से जूँएं साफ़ करनी पड़ती हैं और सैकड़ों बातें करनी पड़ती हैं; पर बाद में मुनाफ़ा भी बहुत होता है। आज बाजार-भर में इससे ज्यादा मुनाफे वाला कोई व्यापार नहीं है।" उनकी दूषित मनोवृत्ति के अंध कूप में पैशाचिक हँसी फिर इकट्ठा हो रही थी। "मेरे भाई, आप लोगों को तो अपने शहर के बारे में कुछ मालूम ही

नहीं है और अगर आप मुझे कहने की इजाजत दें, तो मैं कहूँगा कि आप मनुष्य के स्वभाव के बारे में भी कुछ नहीं जानते।" यह कहकर उनकी फूली हुई पलकें मारे खुशी के फड़कने लगीं।

समरेन्द्रबाबू को यह तो विश्वास हो गया कि और कोई जानता हो या न जानता हो, पर सर लक्ष्मीनाथ तो मनुष्य के स्वभाव के बारे में कुछ भी नहीं जानते। ऐसे आदमी का क्या किया जाय? बीवी है, बच्चे हैं; पर उनकी कोई भावना, कोई विचार साधारण आदमियों-जैसा नहीं। शरम तो नाम को भी छू नहीं गई। यक़ीन नहीं आता था।

जो डाइरेक्टर साहब पहले बोले थे उन्होंने ही फिर बनावटी ढंग से पूछा—"आजकल प्रायः हर चीज के लिए एक कंट्रोलर है तो फिर एक नई जगह क्यों नहीं बना दी जाती—'चकलों का कंट्रोलर'?"

"क्या बात सूझी है!" उस घृणित मुख से फौरन निकला और खुश होकर सर लक्ष्मीनाथ ने अपने होंठ भींचे और बोले, "जरा उस पद को सम्मानित बनाने के लिए 'चकलों के कंट्रोलर' की बजाय सामाजिक कुप्रवृत्तियों का कंट्रोलर' कहना पड़ेगा।"

"आपके दोस्त इस पद के लिए बहुत उचित होंगे, ठीक है न?"

"हाँ, उनसे अच्छा तो कोई आदमी मिल ही नहीं सकता," और उनका कहकहा गूँजने लगा।

सर लक्ष्मीनाथ का वह एक घण्टा बहुत मजे में बीता था।

उनकी बातों से घृणा होती थी, उनके साथ बैठना कष्टदायक था; फिर भी उनकी मित्रता एक ऐसा बहुमूल्य खज़ाना थी जिसे छोड़ा भी नहीं जा सकता था। वह कई बड़ी-बड़ी कम्पनियों के डाइरेक्टर थे और इससे पहले कि उन कम्पनियों के बारे में रिपोर्टें आम लोगों तक पहुँचें अगर आपको उनकी हालत के बारे में सर लक्ष्मीनाथ से कोई इशारा भी मिल जाय तो शेयर मार्केट में आप लाखों कमा सकते थे। उन्होंने ही तो 'बंगाल राइस लिमिटेड' में जान फूँक दी थी। समरेन्द्र बाबू के हृदय में उनके प्रति जो घृणा पैदा हो रही थी उसे वह इसी

प्रकार के विचारों से शान्त कर रहे थे। उनके पास बहुत धन था, पर वह और धन प्राप्त करने के लिए लालायित थे। इसके लिए उनको इस कलुषित मनोवृत्ति वाले व्यक्ति की सहायता की सख्त जरूरत थी।

वह कलुषित मनोवृत्ति वाला व्यक्ति पवित्र आत्मा वालों के इन विचारों को समझ रहा था और इस चित्र का ध्यान करके वह एक बार फिर कहकहा मारकर हँस पड़ा।

समरेन्द्र बाबू ने चैक-बुक अलग रख दी। उन्होंने निराश्रितों के लिए जो धन दान किया था उसका उनको तुरन्त फल मिल गया। उनकी आत्मा पर जो एक बोझ-सा था वह उतर गया।

एडेक्सोलीन ? निश्चय ही सर लक्ष्मीनाथ अपने कहकहों और 'मेरे भाई' के जोर से खुक्खू के लिए जितनी भी एडेक्सोलीन की जरूरत होगी दिलवा देंगे।

× × ×

जब कजली अस्पताल के फाटक से बाहर निकली तो वह यह देखकर चौंक पड़ी कि माँ के चेहरे पर हर्ष का कोई चिह्न नहीं था, केवल विषाद-ही-विषाद टपकता था। उसकी आँखें सूजी हुई थीं, मानो वह बहुत रोई हो और उसका स्वर धीमा और भर्राया हुआ था। वह चुपचाप गली की ओर चले और वहाँ पहुँचकर माँ सिर झुकाकर चुपचाप खड़ी हो गई। उसके मुरझाए हुए गालों पर आँसू यकायक निकलकर बह रहे थे। कजली घबराकर चीख उठी—"यह क्या है, माँ ?"

उसने एक क्षण बाद उत्तर दिया, "बेटी, मैं तुझसे योंही सारी बातें झूठ-मूठ कहती रहती थी कि कहीं तू हम लोगों की चिन्ता से परेशान न हो। हम बिलकुल बेघरबार कंगाल हैं। हमारे पास कोई काम नहीं है। हम सड़क पर सोते हैं। हमें कोई आशा भी नहीं है, कोई नहीं।"

कजली के मन में भय समा गया, पर केवल एक क्षण के लिए। उसने कहा—"माँ, मैं जानती थी।" कजली झूठ बोल रही थी। अपनी समझदारी के कारण उसने देख लिया कि माँ का धीरज बँधाए रखने

की, उसकी लज्जा और दुःख की भावना को दूर करने की बहुत आवश्यकता है।

"तुझे सब मालूम था ?" माँ ने विस्मय से अपना हाथ मुँह पर रख लिया।

उसने स्वीकृति के स्वर में कहा—"हाँ, मैं सब जानती थी।"

माँ ने अनुभव किया कि जैसे उसके सीने पर से बहुत भारी बोझ हट गया है।

"यही हमारा घर है," उसने गली की ओर इशारा करते हुए कहा। यह तो उस बड़ी सड़क से भी बहुत बुरा है। हम यहाँ जानवरों से बदतर हालत में रहते हैं। शहर के धनी लोग हमको जानवरों से, कीड़ों-मकौड़ों से बदतर समझते हैं।"

कजली गली में चली गई। उसकी आँखें भय के कारण फैल गईं। उसके पाँव कमजोर पड़ गए और ऐसा लगता था कि वह जमीन में धँसे जा रहे हैं, पर अपने आत्म-बल से वह खड़ी रही। माँ और अनु इस घृणित नरक में रहते थे और मैं ठाठ से अस्पताल में पड़ी थी। कजली इस बात से लज्जित थी कि उनके दुःख और व्यथा में वह उनके साथ नहीं रही थी।

वहाँ से कुछ दूर गली के नुक्कड़ वाले कोने पर एक मोटी, अधेड़ उम्र की औरत पान बेचती थी। उसने कजली को बड़ी दिलचस्पी से देखा था और उसकी बातें बड़े ध्यान से सुनी थीं। जवान लड़की, इतना खूबसूरत नाक-नक्श, और साड़ी भी नई पहने है। कितनी सुन्दर है, मालूम होता है खाने-पीने को अच्छा मिला है। मगर फिर यह निराश्रित की बेटी कैसे हो सकती है जब तक···। उसी समय कजली उधर से निकली। वह माँ से थोड़ी दूर आगे चल रही थी। पान वाली ने अवसर का लाभ उठाया।

"माँ, पान खाओ, तुम्हारे लिए ही लगाया है," उसने पुकारकर कहा और अपने बड़े-बड़े दाँत निकालकर मुस्कराने लगी।

माँ उत्सुक होकर उसके पास चली गई। बहुत दिन हो गए थे उसने पान चखा तक नहीं था। पहले तो वह पान खाने की इतनी आदी थी कि दिन-भर में दस बीड़े चबा जाती थी। पर उस समय को बीते एक युग हो गया था।

पान वाली ने बातों-बातों में उससे सब-कुछ पूछ लिया। माँ ने बताया लड़की अस्पताल में थी, वहीं उसकी खूब अच्छी तरह देख-भाल की गई, इसीलिए उसके गाल जरा भर आए थे। डॉक्टर बड़ा नेक था, उसने उसे एक नई साड़ी लाकर दी थी और पुरानी साड़ी उसने उतरवाकर फिंकवा दी थी। कजली के बारे में उसे जो कौतूहल था उसका निवारण हो गया। पान वाली बड़ी दिलचस्पी से कजली को देखती रही। उसकी आँखों में एक कठोरता की चमक थी।

"माँ, दो पान रोज खा जाया करो। पैसे देने की जरूरत नहीं है। जब हों तो अदा कर देना। जब अच्छे दिन लौटकर आयंगे तो तुम एक के दस भी दे सकती हो। और अच्छे दिन लौटकर कभी-न-कभी तो आयंगे ही। मैं सब जानती हूँ, तुम्हारे घर है, जमीन है, सब है।"

कजली कुछ आगे निकल गई थी, वह लौटकर आई और चिल्लाकर बोली—"माँ, चलो न।" उसके होंठ भिंचे हुए थे, मानो उसे मतली हो रही हो और वह क़ै को रोक रही हो।

"बिलकुल सोने की मूरत है," पान वाली ने ठण्डी आह भरकर कहा, "हे भगवन्! बेटा एक पान तुम भी खाओ।" उसने खूब मसालेदार पान कजली की तरफ़ बढ़ा दिया और फिर मुड़कर माँ से बोली, "माँ थोड़ी-सी मुरमुरे की लैया लेती जाओ। मेरे पास बहुत है। और मुँह मीठा करने के लिए थोड़ा-सा गुड़ भी। ताजा गुड़ है, ताड़ के रस का बना हुआ गुड़।"

कैसी उदार है! माँ अहसान के बोझ से दबी जा रही थी। मुरमुरे और गुड़! न जाने कितने दिन बीत गए थे कि कजली और अनु को कोई अच्छी चीज खाने को नहीं मिली थी।

माँ को याद आई कि उसकी जमीन पर भी एक ताड़ का पेड़ था। पूरब की तरफ वाले खेत में था वह पेड़ और उसमें इतने फल लगते थे कि बस! और उसकी सुगन्ध तो लाजवाब थी। बच्चों को उसके रस का बना हुआ गुड़ बहुत ही अच्छा लगता था और उसके पति को भी और देवता को भी। देवता कहा करते थे कि वह पेड़ बहुत पुण्यात्मा है इसीलिए तो उसमें इतनी सुगन्ध आती थी। कुछ पेड़ बहुत दुरात्मा होते हैं और बहुत कड़वे होते हैं और कुछ पुण्यात्मा होते हैं और मीठे होते हैं।

"वह देखो आ रहा है," कजली ने दूर फुटपाथ की तरफ देखते हुए कहा और पुकारा—"अनु!"

अनु अपने तकली-जैसे पैरों पर तेजी से चलता हुआ आ रहा था। उसके हाथ में सुतली से बँधा हुआ कागज का एक बंडल था।

"तस्वीरें हैं," उसने बंडल दिखाते हुए कहा और उसका दुबला-पतला चेहरा खुशी से चमक उठा, "हर दीवार के लिए तस्वीरें हैं। उस बरामदे के लिए भी जहाँ हमारी मंगला रहती थी। दीदी, देखो तो। सच बताना पहले कभी ऐसी तस्वीरें देखी थीं।"

कजली ने शहर में एक निराश्रित के नए जीवन में पदार्पण किया।

पान वाली से, जिसकी बोली में शहद घुला हुआ था, रोज शाम को गली से बाहर जाते समय कजली को बड़ा डर लगता था। उसे न जाने क्यों वह पान वाली बिलकुल शहर वाली उसी औरत की तरह लगती थी जो उसके गाँव में अपना मनहूस प्रस्ताव लेकर आई थी। वह औरत नहीं थी सियार थी, जो दया का दूत बनकर उसके घर पर आई थी। कजली के दिमाग में विभिन्न चित्र इसी प्रकार घुल-मिलकर एक अजीब-सा चित्र बन जाता था। वह उस औरत को हमेशा 'सियार-दूत' ही कहती थी।

उसके दिमाग पर सियार का भय सवार था, उसका भयानक चित्र उसके दिमाग से कभी दूर ही नहीं होता था। जीवन में जिस चीज से

भी उसे घृणा होती वह उसे सियार कह देती। उसके कटु अनुभव ने उसमें एक विचित्र ढंग से दो परस्पर-विरोधी भावनाओं को मिला दिया था। उसका हृदय पत्थर की तरह कठोर हो गया था और साथ ही वह बहुत ही भावुक भी हो गई थी। वह अन्धकार की तरह निर्जीव भी और दीप-शिखा की तरह जीवनमय भी थी।

पान वाली मनुष्य के स्वभाव को खूब पहचानती थी। वह मौके की ताक में रही। उसने कजली को अपनी दुकान में बैठने के लिए जगह देने को कहा।

दुकान के दूसरे कोने पर एक काबुक ऐसी बनी थी जिस पर किरमिच का परदा डालकर उसे दुकान का-सा रूप दे दिया गया था। उसके दरवाजे पर लाइन-की-लाइन तस्वीरें लगी थीं। हर तस्वीर में दो लोग होते थे, एक तो कोई गोरा सिपाही, जो दाँत खोले हँसता होता था और दूसरी मुस्कराती हुई कोई छिनाल औरत, जो उसकी जाँघों पर बैठी होती थी। सिपाही दुकान के अन्दर जाते और थोड़ी देर बाद प्रसन्न चित्त हाथ में अपनी तस्वीर लिये मुस्कराते हुए बाहर निकल आते। आखिर यह तमाशा था क्या? कजली की कुछ समझ में न आता था। पान वाली ने उसे बताया उस किरमिच के परदों से घिरी हुई दुकान में कोई भी जाकर एक लड़की के साथ अपनी तस्वीर खिंचवा सकता था। पन्द्रह मिनट में तस्वीर तैयार होकर मिल जाती थी। विदेशों से आने वाले सिपाही उस तस्वीर को हिन्दुस्तान की यादगार की तरह अपने साथ ले जाते थे और इसे वह मनोरंजन का साधन भी समझते थे। लड़कियाँ सब वहीं की थीं। उनको खाकी वर्दी वाले सिपाहियों की जाँघ पर बैठकर थोड़ी देर के लिए मुस्कराकर तस्वीर खिंचवाने के दो रुपए रोज मिलते थे।

पान वाली ने जल्दी से कजली पर एक नज़र डाली। "पर वह तुमको दुकान में नहीं रखेंगे। वह सिर्फ एंग्लो इंडियन लड़कियों को रखते हैं, जो अंग्रेजी ढंग की फ्रॉक पहनती हैं।" इतना कहकर वह मन-ही-

मन प्रसन्न होकर दुकान की दीवार का सहारा लेकर बैठ गई। दुकान के पलस्तर में उसके चमकदार जूड़े का थोड़ा-सा तेल सोख गया।

"अखबार! *हिन्दुस्तान* अखबार!" एक अखबार वाला चिल्लाता हुआ पास से भागकर जा रहा था। "कलकत्ता के पास जापानी हवाई जहाज मार गिराया गया। ताजी खबर। *हिन्दुस्तान* अखबार।"

कजली ध्यान से सुनती रही और एक क्षण के लिए उसके मानस-पट पर एक साथ न जाने कितने चित्र घूम गए। *हिन्दुस्तान* अखबार के दफ्तर वाले रिलीफ केन्द्र पर निराश्रितों की भीड़ लगी है·····बरूनी गाँव पर हवाई जहाज उड़ रहे हैं और उसकी ओर झपटकर आ रहे हैं·····एक स्त्री और उसकी बेटी एक ही कटोरे में चावल खा रहे हैं और दोनों इस प्रयत्न में कि दूसरा ज्यादा न खा ले जल्दी-जल्दी बगैर चबाये हुए बड़े-बड़े कौर निगल रहे हैं ·····।

दो अमरीकन हब्शी सिपाही सड़क पर आ रहे थे। कजली ने दम साध लिया, सड़क पर का एक छोटा-सा ढीठ छोकरा उनसे टूटी-फूटी अंग्रेजी में कह रहा था, "हेइ, जिम, वाण्ट मी शो यू वर्जिन?" (ओ जिम, कुआँरी लड़की देखना चाहते हो?) उन विदेशी सिपाहियों ने झुककर उस छोटे-से लड़के को देखा और अपना सिर हिलाकर मुस्कराने लगे। वह लड़का बहुत ढीठ था। उसने हाथ उठाकर एक सिपाही की पीठ थपकते हुए कहा—"यू नो गुड, जॉनी। नो कम? ह्वाई नो कम?" (जॉनी, तुम अच्छे आदमी नहीं हो। नहीं आओगे? आते क्यों नहीं?) और जब वह आगे निकल गए तब उसे याद आया कि वह कुछ वाक्य तो भूल ही गया था जो उसने इस धन्धे के लिए सीख रखे थे। उसने पुकारकर कहा—"स्माल कैश, गुड फेयर वर्जिन, टू स्माल कैश।" (बहुत कम पैसों में; खूबसूरत, अच्छी, कुआँरी लड़की, बहुत ही थोड़े पैसों में।)

पान वाली पूरी बत्तीसी खोलकर हँस पड़ी और उस मासूम किसान-बालिका को उन शब्दों का अर्थ समझाने लगी। नुक्कड़ के पास ही

एक चकला था जो अभी नया ही खुला था। उसमें सिर्फ देहात से आई हुई निराश्रित औरतें ही थीं। वह चैन से रहती थीं। जिन्हें एक समय खाने तक को नहीं मिलता था वे अब हर प्रकार का आराम उठाती थीं। काफी आमदनी थी उनकी। शहर-भर की सड़कों पर दलाल घूमते रहते थे और अच्छी सूरत वाली लड़कियों को साठ-साठ सत्तर-सत्तर रुपया पेशगी देकर ले आते थे। इस चकले की हर औरत अपनी कमाई का आधा तो खुद रख लेती थी और बाकी आधा चकले के मालिक को मलता था। दोनों का फायदा होता था। औरतें अपनी गोल बाँहों पर सोने के कड़े पहने थीं, पर उनमें से कोई कजली से आधी भी सुन्दर नहीं थी। कैसी तकदीर है! हे भगवान्! ऐसा सुन्दर कमल कीचड़ में पड़ा सड़ रहा है। ऐसा अन्याय देखकर जी जल उठता था।

कजली की समझ में आ गया कि वह औरत सचमुच सियार-दूत है। वह उसकी सूरत से काँपने लगी और उससे कतराने लगी, पर वह औरत भी अपने हठ की पक्की थी। उसने गली के अन्दर भी उसका पीछा न छोड़ा। दलाल कजली को देख गया था और देखते ही उस पर लट्टू हो गया था। 'सत्तर रुपये पेशगी मिलेंगे—भाग्य खुल जायंगे! अगर पहले उससे इनकार कर दिया जाय और बाद में मंजूर कर लिया जाय तो शायद वह मरियल आदमी दस रुपये और भी दे दे। फिर इस नरक में सड़ने से क्या फायदा! इससे छुटकारा पाने का तो कोई रास्ता है नहीं,' पान वाली कजली को फुसला रही थी! 'जीते जी मुर्दों की तरह जीवन क्यों बिता रही हो? और फिर तुम सिर्फ अपनी ही बात क्यों सोचती हो? तुम्हारा छोटा भाई है, माँ है, आखिर वह क्या करेंगे? सूखकर काँटा हो गए हैं। उदास न हो, हिम्मत करो। हाँ, हिम्मत से काम लो। सत्तर रुपये—जरा सोचो उनका जीवन बन जायगा; और नहीं तो यह इसी तरह एक दिन मर जायंगे····

कजली को इस सियार-दूत की पैशाचिक परछाईं से भी नफरत थी।

सत्रह

एक ही तारीख में समाचार वाले पृष्ठ पर दो खबरें प्रायः एक दूसरे की बगल में छपी हुई थीं। यह असंभव था कि यह बात जान-बूझकर की गई हो। मिदनापुर से एक सम्वाददाता ने खबर भेजी थी—'आज एक निराश्रित स्त्री ने यहाँ अपने तीन बच्चों को इसलिए गंगा में डुबोकर मार डालने का प्रयत्न किया कि वह उनको भोजन न दे सकती थी।' रायटर के सम्वाददाता ने आस्ट्रेलिया से समाचार भेजा था—'आज यहाँ की खानों में काम करने वाले मजदूरों ने इस बात के प्रतिरोध में हड़ताल कर दी कि उनको राशन में मक्खन कम मिलता है।'

एक ही दुनिया! एक ही कामनवेल्थ के दो देश! सच्चे मानों में यही कामनवेल्थ है, राहुल ने अपने-आपको इस बात की याद दिलाई। पृष्ठ के सबसे ऊपर ब्रिटिश मन्त्रि-मंडल के एक मन्त्री का व्यंग्य-चित्र था जो अकाल की जिम्मेदारी से हाथ धो रहे थे और उनके स्वामी, ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री, एक जग से उनके हाथों पर पानी डाल रहे थे।

तिरस्कार से होंठ सिकोड़ते हुए राहुल ने पृष्ठ उलट दिया। आगे निराश्रितों की कुछ तस्वीरें थीं···एक औरत फुटपाथ पर बैठी कटोरे में कुछ रखे खा रही है और उसका भूख का मारा बच्चा पास बैठा ताक रहा है।

कैमरे ने अपना काम बड़े अच्छे ढंग से किया था। चित्र में लड़के

की ठठरी साफ दिखाई दे रही थी और वह आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। शायद वह इतना दुर्बल हो गया था कि रो भी न सकता था। उसकी माँ भूख से पागल होकर बड़े-बड़े कौर निगल रही थी।

उन दिनों राहुल बहुधा जब इस बात का अन्दाजा लगाने का प्रयत्न करता कि इस अकाल का क्या गूढ़ महत्त्व है, उसका व्यापक प्रभाव क्या पड़ा है, तो उसके हृदय में एक भय समा जाता; ऐसा मालूम होता था कि इस चित्र को देखकर उसका भय और भी बढ़ गया था। इस चित्र का एक भौतिक रूप था और एक नैतिक। बीस लाख आदमी मौत का शिकार हो जायंगे, शायद यह संख्या तीस लाख तक भी पहुँच जाय। कई लाख लोग ऐसे होंगे जो बाल-बाल बच जायंगे, पर उनमें वह खोई हुई शक्ति फिर कभी वापस न आयगी। विशेष रूप से बालकों में और उन बच्चों में, जिनकी हड्डियाँ नरम पड़ गई थीं, और जिनमें वैसे ही बहुत कम शक्ति पैदा हुई थी, और जो हमेशा से सूरज की धूप में या वर्षा के जल में पलकर बड़े थे। बंगाल के नब्बे हजार गाँवों में एक ऐसी नस्ल बढ़ेगी जिसका स्वास्थ्य बिलकुल नष्ट हो चुका होगा, जिसके शरीर का सारा रस सूख गया होगा, जो बिलकुल अध-मरी होगी और यह नस्ल अपनी दुर्दशा को अपनी सन्तान को सौंप जायगी और यह क्रम इसी तरह आगे बढ़ता जायगा। इससे बचने का केवल एक उपाय है कि कोई अधिक सभ्य सरकार देश को इस भया-नक दुर्भाग्य से बचाने का महान् प्रयत्न करे। यह तो था इस कहानी का भौतिक रूप।

इसके अतिरिक्त एक नैतिक पतन भी आया था। शुरू-शुरू में तो माता-पिता जो-कुछ भोजन बटोरकर लाते थे वह अपने बच्चों को खिला देते थे, क्योंकि इतना तो होता नहीं था कि सबको खिलाया जा सके। पर जैसे-जैसे भूख बढ़ती गई उनकी कोमल भावनाएं शिथिल होती गईं और धीरे-धीरे बिलकुल मर गईं। नीचे गिरते-गिरते पुरुष और स्त्रियाँ पशुओं के स्तर पर पहुँच गए। राहुल को एक घटना याद आ गई जो

उसने एक समाचार-पत्र में पढ़ी थी—'एक स्त्री को जिसकी गोद में दुध-मुँहा बच्चा था, किसी लंगरखाने में खाना दिया गया। जब वह खा रही थी, उसका बच्चा उसकी गोद में मर गया। पर वह स्त्री खाती रही। भोजन समाप्त करके वह अपने मरे हुए बच्चे को लिये हुए उठकर चली गई।' इसी प्रकार की एक घटना और थी—'एक निराश्रित स्त्री को दिन-भर के कठिन परिश्रम के बाद कुछ मुट्ठी चावल मिले। उसके तीन बच्चे थे। शाम के वक्त जब वह आग जला रही थी एक भूखा आदमी उधर से गुजरा और चावल छीनकर भाग गया।'

राहुल रिलीफ-केन्द्र में अपनी मेज पर बैठा सोच रहा था कि मनुष्य की भावनाएं कठोर होती जा रही हैं, मनुष्य अपनी मनुष्यता को छोड़ता जा रहा है। इस विचार से उसके हृदय में एक भय समाया जा रहा था और अखबार के चित्र को देखकर उसका यह भय और भी बढ़ गया था।

क्या यह कुछ ही दिनों की बात है? क्या जब साधारण परिस्थितियाँ फिर लौट आयंगी तब बङ्गाल की जनता की आन्तरिक मनुष्यता फिर जागृत हो जायगी? राहुल को इस बात का बिलकुल विश्वास न था। इस बात की आशा करना बेकार था कि यह कठोर अनुभव उनकी आत्मा पर कोई चिह्न नहीं छोड़ेगा, उनकी आत्माओं को कई पीढ़ियों के लिए, एक युग के लिए, विकृत न बना देगा।

पर यह माँ क्या करेगी? क्या वह फिर एक स्नेहमयी, ममतापूर्ण माँ नहीं हो जायगी? राहुल बड़े ध्यान से उस चित्र को देखता रहा। अपनी कल्पना के संसार में वह एक साल आगे की बात सोचने लगा··· 'अकाल दूर हो गया है। माँ जिन्दा बच गई है। वह वापस अपने गाँव चली गई है।

'प्रायः गोधूलि वेला का समय है। माँ अपने हाथ में बनिए की दुकान से एक पैसे की नमक की पुड़िया लेकर गाँव के मार्ग पर जा रही है। आज घर पर लाल शकरकन्द और चावल पकेंगे। उनको स्वादमय बनाने के लिए थोड़ा-सा नमक चाहिए।

'घर पहुँचकर वह पुड़िया खोलती है और नमक को मिट्टी की एक हाँडी में रख देती है। वह आग जलाने के लिए अखबार को चूल्हे में डालने लगती है। सहसा उसकी दृष्टि एक चित्र पर पड़ती है। यह क्या चित्र है? वह कागज को सीधा करती है और उसके होंठों से एक चीख निकल जाती है। उसने अपने मरे हुए बच्चे को पहचान लिया, क्योंकि वह हरदम उसकी आँखों के आगे घूमता रहता है। वह यह नहीं पहचान पा रही है कि चित्र में, जो एक निर्दयी स्त्री का चित्र है, वह वही है, पर वह अच्छी तरह जानती है कि वह स्त्री उसके अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकती। वह देखती है कि वह, माँ होकर, बैठी अपना पेट भर रही है और उसका बच्चा, जिसका शरीर सूखकर ठठरी रह गया है, बैठा याचक नेत्रों से ताक रहा है। वह बच्चा मर गया। यदि उसे उस समय दो-एक कौर खाने को मिल जाते तो शायद वह बच जाता। वह माँ नहीं, डायन है—बिलकुल डायन जिसने अपने बच्चे को खा लिया।

'शाम बीत गई है और रात हो चली है, पर वह चूल्हा जलाकर चावल पकाने के लिए नहीं उठ रही है। वह अपनी गोद में अखबार फैलाए बैठी है और लज्जा और व्यथा के कारण पागल-सी हो गई है···।'

राहुल ने अखबार एक तरफ डाल दिया।

एक और माँ भी थी जो आजकल उसके विचारों में हरदम आती रहती थी और वह भी बरूनी की वह क्रिश्चियन-माता। वह और उसकी बेटी कजली···और किशोर···और अनु···राहुल को उसके जूतों की चर्र-मर्र अब तक याद थी। उसे यही चिन्ता लगी रहती कि वह उनका पता लगाने का क्या उपाय करे। कहीं वह भूख के इस तूफान में बह तो नहीं गए? एक दिन रात को उसने कितना भयानक स्वप्न देखा था—'माँ और उसका बेटा अनु एक सड़क पर मरे पड़े हैं। वह स्थान कलकत्ते से दूर नहीं है। एक गिद्ध उनका मांस खाने के लिए झपटा, पर किशोर ने उसको जाल में पकड़ लिया है। उसने इस शव-भक्षक

गिद्ध को आग पर भूना है और कजली को खाने के लिए दे रहा है जो पास ही पड़ी मर रही है। किशोर कजली से कह रहा है—"कजली, खाओ। कजली यह मांस खाओ तुम्हारे प्राण बच जायंगे, कजली !" फिर राहुल सोते-सोते चीख उठा था, 'नहीं, ठहरो ! चावल लो, जितना चावल चाहो ले लो। ठहरो···' और उसी क्षण मंजु ने उसको ठेलकर जगा दिया था और उसकी आँख खुल गई थी। वह बहुत व्यथित था और सिर से पाँव तक पसीने में नहाया हुआ था।

अगर वह यहीं कहीं इन्हीं लाखों बेघरबार लोगों में हो तो ? पर यह संभव नहीं है। किशोर शहर से अच्छी तरह परिचित है, और वह मेरा पता भी जानता है। वह अगर होता तो अब तक मेरे पास आता जरूर ! राहुल बार-बार अपने मन को इसी प्रकार के तर्कों से समझाता, पर बस या ट्राम पर जाते समय या पैदल चलते समय जब वह उन झुक्कड़ों के पास से गुजरता जहाँ सैकड़ों निराश्रित दबे-सिकुड़े पड़े रहते थे, तो वह एक-एक के चेहरे को बड़े गौर से देखता, आशा के साथ और भय के साथ। कोई विशेष कारण न होते हुए भी राहुल उनको ढूँढता रहता था, हमेशा ढूँढ रहा था।

एक दिन वह एक घूरे की बाल्टी के पास से गुज़रा जिस पर कुछ कुरूप विकृत बालक झुके हुए खाने-पाने का चीजें खोज रहे थे। अनु भी उनमें था और वह भी घूरे को कुरेद रहा था। राहुल ने लड़कों के इस झुण्ड को देखा, पर उसका ध्यान कहीं और था। वह किन्हीं विचारों में मग्न था, खोया-खोया-सा वह उन बालकों के पास से होकर निकल गया

एक दिन वह सड़क पर जा रहा था। सड़क की दूसरी तरफ़ सामने से माँ आ रही थी—थोड़ी ही दूर पर। पर दोनों एक दूसरे को देखे बगैर निकल गए···

"साहब खिचड़ी तैयार है," अहीन ने दफ्तर के दरवाजे पर से पुकारकर कहा। वह भी इसी रिलीफ़-केन्द्र में काम करता था। अहीन

पहले कालेज में बी० ए० की कक्षा में पढ़ता था। रिलीफ़-केन्द्र में काम शुरू करने से पहले एक दिन दर्जे में पढ़ते-पढ़ते वह भूख के मारे बेहोश हो गया था। अब वह रिलीफ़-केन्द्र में काम करता था और उसे यहाँ से खाना दिया जाता था। मध्यम वर्ग के बहुत-से ऐसे गरीब विद्यार्थी थे, जिन्होंने उन दिनों भूख की यातना सही थी। रुपए का मूल्य निरन्तर गिरते रहने के कारण उनकी दशा बहुत खराब हो गई थी और वह लगभग कंगाल हो गए थे।

राहुल रसोई की तरफ चला। कुछ लोग बड़े-बड़े कढ़ावों में तीन प्रकार का अनाज पका रहे थे। पक जाने के बाद यह तीनों प्रकार का अन्न अच्छी तरह एक में मिला दिया जाता था। तीनों प्रकार का अनाज बहुत ही निम्न श्रेणी का था; और उसमें कंकर की मात्रा भी बहुत काफ़ी थी, क्योंकि अनाज के व्यापारी अपने काम में बहुत निपुण थे। राहुल ने अरुचि के भाव से देखा। यह 'स्टैण्डर्ड खिचड़ी' तो बहुत मुश्किल से हजम होती थी। इसमें तो उसकी तिहाई शक्ति भी नहीं होती थी जितनी कि आदमी को जिन्दा रखने के लिए आवश्यक होती है। जो लोग इस खिचड़ी को खाते थे वे कुछ समय के लिए तो मौत से बच जाते थे, पर वह दिन-बदिन भूख से घुल-घुलकर कमज़ोर होते जाते थे। रिलीफ़-केन्द्र के पास इसका कोई उपाय नहीं था।

मनुष्य की भावनाओं का हनन—नियमानुसार रसोई का निरीक्षण करते समय यह विचार सारी देर राहुल के दिमाग़ में चक्कर काटता रहा। पर उसके आन्तरिक अन्धकार में ज्योति की एक किरण फूट निकली थी। एक विचित्र घटना हो गई थी—उसके जीवन का सबसे अनोखा अनुभव! अगर वह दूसरों से सुनता तो कोरी कल्पना समझकर हँसकर टाल देता। पर वह अपनी आँखों की साक्षी को तो झूठ नहीं कह सकता था!

अँधेरा हो गया था। सड़क की बत्तियों पर शेड चढ़ाकर उनको धीमा कर दिया गया था। राहुल रेड-रोड से होकर चौरंगी के ट्राम के

जंकशन की तरफ जा रहा था। फौजी कैम्प के पास कुछ गोरे सिपाही झुण्ड-सा बनाए एक निराश्रित वयुवती लड़की को देख रहे थे जो सड़क के किनारे बत्ती के नीचे सिर झुकाए बैठी थी। राहुल का हृदय धक् से हो गया—कजली! और जब उसने ध्यान से देखा तो उसका चेहरा विस्मय से पीला पड़ गया। नहीं, कजली नहीं है; यद्यपि कजली से बहुत मिलती-जुलती है। वह लड़की एक फटा हुआ वस्त्र पहने थी, पर वह बिलकुल भूख की मारी नहीं मालूम पड़ती थी। उसके चेहरे पर अब भी कुछ रौनक थी और माँग में सिन्दूर की लाली थी। सिपाही चुप खड़े थे, मानो किसी चीज की उन्हें उत्कट प्रतीक्षा थी। राहुल भी खड़ा-खड़ा आश्चर्य कर रहा था।

उस झुण्ड में से एक सिपाही निकलकर आगे बढ़ा और उसके भिक्षा-पात्र में एक रुपया डाल दिया। उसमें चाँदी के कुछ सिक्के और पड़े थे।

उसने कुछ भी न कहा, केवल उठकर खड़ी हो गई, शक्ति-हीन, दुबली-पतली वह लड़की कजली ही जितनी लम्बी थी। वह अपने वक्षस्थल पर हाथ बाँधे सीधी खड़ी थी और आकाश के नक्षत्रों की ओर देख रही थी। उसकी गरदन का एक-एक चढ़ाव-उतार दिखाई दे रहा था। उसके होंठों पर एक मुस्कराहट आई, जो न जाने मुस्कराहट क्यों नहीं लगती थी। फिर उसने अपने हाथ छोड़ दिए और अपनी छातियों पर से वह फटा हुआ कपड़ा हटा दिया। वह नंगी खड़ी थी और सड़क की बत्ती की रोशनी उस पर पूरी पड़ रही थी। वह काँसे की एक ऐसी मूरत लग रही थी जिसकी दृष्टि सितारों पर जमी हुई थी। सिपाहियों का समूह मुँह बाए उसे देखता रहा। किसी ने एक शब्द भी न कहा, न किसी ने किसी प्रकार का हँसी-मज़ाक ही किया। कुछ क्षण इसी प्रकार बीत गए। लड़की ने अपना सिर झुका लिया और साड़ी का आँचल अपने सीने पर खींच लिया, और घुटने के बल बैठ गई। वह सिर लटकाए बैठी थी; मालूम होता था कि वह बहुत लज्जित है।

उसके कटोरे में फिर एक रुपया खनककर आ गिरा। लड़की उस रुपए को बड़ी देर तक देखती रही और फिर उसी प्रकार उठी और बत्ती की रोशनी में अपना वस्त्र हटाकर दोनों हाथ ऊपर को उठा दिए। फिर वह काँसे की मूरत मालूम हो रही थी, पर इस बार आकृति पहले से कुछ भिन्न थी। उसके शरीर से साफ मालूम पड़ता था कि वह भूख की मारी हुई है। जब वह फिर सिर झुकाकर बैठ गई तो पहले से भी ज्यादा लज्जित मालूम हो रही थी। जब उसके कटोरे में तीसरा रुपया खनककर गिरा तो वह होंठ, जो पहले मुस्करा देते थे, अबकी बार काँपने लगे और उसकी दोनों आँखों की कोरों में एक-एक आँसू चमक रहा था।

कटोरे में एक बार फिर वही क्रूर खनक हुई।

एक फौजी पुलिस वाला इत्तफाक से उधर आ निकला। उसने जल्दी से उन लोगों पर एक नज़र डाली और सिपाहियों को आज्ञा दी—"चलो, हटो यहाँ से।" एक सिपाही, जो ज़रा देर से आया था, अपने हाथ में रुपया लिये खड़ा था। परन्तु इससे पहले कि वह रुपया उसके कटोरे में फेंके, फौजी पुलिस वाले ने उसकी गरदन पकड़कर उसे सड़क पर ला खड़ा किया और डपटकर कहा—"चलो यहाँ से।"

सिपाहियों के लिए यह एक विचित्र मनोरंजन था। वह इंगलैंड और अमरीका वापस जाकर इस घटना को चटकारी ले-लेकर सुनायंगे।

निराश्रित लड़की ने अपना कटोरा उठा लिया। उसने अपनी आँखें पोंछीं और रुपयों की तरफ घूरती रही। किसी बात का विचार करके उसके होंठ काँप रहे थे और वह उठकर स्ट्रैण्ड की तरफ चल दी। एक अज्ञात भावना ने राहुल को उसके पीछे-पीछे जाने पर विवश कर दिया। वह अँधेरी सड़कों पर उसके पीछे-पीछे चला जा रहा था। थोड़ी दूर तक वह काउन्सिल-हाउस के सामने वाली सड़क पर चलते रहे। राहुल को बहुत धीरे चलना पड़ रहा था, क्योंकि वह अपने पाँव घसीट-कर चल रही थी। उसे एक-दो बार बीच में रुकना भी पड़ा था। उस

लड़की में न जाने कौनसी बात ऐसी थी, जो राहुल को परेशान किये हुए थी—उसका पीड़ा से विकृत मुख, उसका संघर्ष, जिसे उन विदेशी सिपाहियों ने नहीं देखा था या शायद देखकर भी उन्होंने यही समझा हो कि यह भी तमाशे का ही एक भाग है। उसकी बात में निर्लज्जता या मक्कारी की परछाईं तक न थी, राहुल को इस बात का पूरा विश्वास था। उसकी आँखें अब तक उन चमकते हुए बड़े-बड़े आँसुओं को भुला नहीं पाई थीं, जो उस लड़की की आँखों में छलक आए थे। वह जान-बूझकर ऐसा करती है। उसके दिल को इससे बहुत तकलीफ पहुँचती है, पर फिर वह अपने-आपको यह नीच काम करने पर इसलिए विवश करती है कि अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने का उसके पास कोई दूसरा साधन है ही नहीं। लेकिन अब तो इतना काफी धन मिल गया है कि वह कई हफ्तों तक अपना काम चला सकती है। अब तो वह अपना यह घृणित काम छोड़ देगी। यही उसकी परीक्षा का समय है।

जब वह एक सस्ती-सी खाने की दुकान पर रुकी तो राहुल भी ठिठककर खड़ा हो गया। उसने दुकान वाले से छः रुपए की सस्ते किस्म की रोटियाँ देने को कहा। राहुल को आश्चर्य हुआ कि इतनी रोटियों का यह लड़की क्या करेगी? राहुल अँधेरे में खड़ा प्रतीक्षा करता रहा।

"रोजगार अच्छा चल रहा है छोकरी का, क्यों है न ऐसी बात?" दुकानदार ने अर्थपूर्ण ढंग से आँख मारकर कहा।

रोटियों का बंडल हाथ में लिये वह आगे चल दी। थोड़ी दूर चलने के बाद वह एक अँधेरी गली में मुड़ गई। गली निराश्रितों से खचाखच भरी थी। राहुल इस प्रकार की सैकड़ों गलियों से परिचित था। वह फिर उस लड़की के पीछे जा पहुँचा।

उस अन्धकारमय, निराशापूर्ण गली में उस लड़की के जाते ही जैसे जीवन लौट आया। सब लोग उठकर बैठ गए। उनके चेहरे उत्सुकता

और हर्ष से चमक उठे और वह अपने क्षीण स्वर में कहने लगे—"माँ!" "माँ आ गई!" चारों ओर से यही आवाजें आ रही थीं—"हमारी माँ आ गई!" बड़े आश्चर्य की बात थी कि वह लोग उस नौजवान लड़की को 'माँ' कहकर कितना खुश होते थे।

वह अपने एक हाथ से रोटियों का बण्डल थामे थी और दूसरे हाथ से रोटियाँ बाँट रही थी। राहुल अपने आश्चर्य को छिपाए इस दृश्य को देखता रहा। उसके कानों में उसके मृदु शब्दों का स्वर सुनाई दे रहा था। "नहीं काका, तुम्हारा पेट खराब है; तुम ज्यादा न खाओ।" "हारू देखो बगैर चबाए रोटी निगल मत जाना।" "बेटा, चबा-चबाकर खाया करो।" "दीदी, तुम दो रोटी खाओगी, क्यों? नहीं, एक में ही काम चलाओ, काफी होगी।"

राहुल मन्त्र-मुग्ध-सा खड़ा सोच रहा था। उस समय वह लड़की उसे एक शाहजादी मालूम हो रही थी। सब लोगों को रोटियाँ बाँट चुकने के बाद वह उन लोगों के बीच बैठकर अपना हिस्सा खाने लगी।

उसकी विचित्रता, उसका अनोखापन ग़ायब हो गया था। वह एक सीधी-सादी गाँव की लड़की मालूम हो रही थी—बिलकुल दूसरी लड़कियों जैसी। अब वह नाटक का पात्र नहीं मालूम होती थी जैसा कि वह रेडरोड पर लग रही थी। अपने लोगों के बीच पहुँचकर वह असली रूप में वापस आ गई थी।

पर उसने एक संकटमय परिस्थिति का बड़े साहस से सामना किया था। उसे अपनी लाज का कोई ध्यान न रह गया था, उसे अजनबियों का, विदेशी सिपाहियों का भी कोई भय न रह गया था। उसने पैसे कमाने का यह तरीका ढूँढ़ निकाला था जिसे देखकर हृदय रो उठता था। उसके ऊपर, एक निराश्रित लड़की पर, इतने आदमियों का जीवन निर्भर था!

उसने अपनी लाज बेच दी थी। रूढ़ियों में बँधा हुआ समाज उसकी निन्दा करेगा कि उसने अपनी शरीर की पवित्रता का दुरुपयोग

किया था। पर गली से बाहर निकलते समय राहुल को ऐसा लगा कि उसने मनुष्य की आत्मा को उसके पवित्रतम रूप में देख लिया है और उसके अनन्त सौन्दर्य और विपुल वैभव को देखकर उसकी आँखें चौंधिया गई हैं।

उसके हृदय के अन्धकार को यही ज्योति की किरण प्रकाशमय बनाये हुए थी।

फिर भी उस निराश्रित लड़की को देखकर वह न जाने क्यों उदास हो गया था। न मालूम क्यों उसे देखकर उसे हमेशा कजली की याद आती रहती थी। उन दोनों में कोई समानता न थी, यदि कोई समानता थी भी तो केवल इतनी कि दोनों किसान लड़कियाँ थीं—साधारण किसान लड़कियाँ। तो फिर क्या बंगाल की सारी किसान लड़कियों में वह कजली का ही रूप देखता था? फिर कजली आखिर कहाँ गई? वह विपत्ति के किस गर्त में लीन हो गई?

वह रसोई से बाहर जा ही रहा था कि उसके नवयुवक सहकारी अहीन ने आकर कहा—"एक बूढ़ा आपसे मिलना चाहता है। वह बाहर फाटक पर खड़ा है।"

"कोई निराश्रित होगा। पर तुम जानते हो कि अब हम और कार्ड नहीं दे सकते···"

"नहीं, इस आदमी के पास टिकट है। वह अपना टिकट वापस करना चाहता है। अजीब आदमी है।"

राहुल यह सुनकर चकरा गया और दरवाजे की ओर चला।

"बाबा," बूढ़े ने अपना कार्ड बढ़ाते हुए कहा, "मैं यहाँ दो हफ्ते से खा रहा हूँ। अब मैं कुछ दिन तक बगैर यहाँ से खाना लिये भी जीवित रह सकता हूँ। अब मैं चलने-फिरने लगा हूँ और भीख माँगकर और इधर-उधर से ढूँढ़-ढाँढ़कर अपने खाने-भर को जुटा सकता हूँ। हमारा कार्ड किसी ऐसे आदमी को दे दीजिए जिसे मुझसे ज्यादा आवश्यकता हो। ऐसे सैकड़ों लाचार इधर-उधर पड़े रहते हैं।"

"नहीं, नहीं," राहुल ने जोर से कहा, "तुम अभी बहुत दुर्बल हो। तुमको खाना मिलने की जरूरत है। तुम कार्ड अभी अपने पास ही रखो। खाना अभी थोड़ी देर में बँटेगा।"

पर वह हड्डियों का ढाँचा घुटनों के बल झुक गया और सड़क की धूल में उसने अपना माथा टेक दिया।

"बाबा, तुम्हारे दिल में बड़ी अपार दया है। तुमने मेरी जान बचाई है। मैं इसके बदले में तुम्हारी कोई सेवा नहीं कर सकता। मैं अपने दूसरे भाइयों के साथ इसके अलावा और कोई भलाई नहीं कर सकता। मैं सिर्फ अपना स्थान किसी ऐसे जरूरतमन्द आदमी को दे सकता हूँ जिसे किसी लंगरखाने में खाना न मिलता हो। मुझे इससे बड़ा सन्तोष होगा; मुझसे मेरा यह सन्तोष न छीनो। मैं पाँव पड़ता हूँ तुम्हारे!" वह भावों के आवेश में बोलने के कारण थक गया था और हाँफ रहा था। वह धीरे-धीरे उठा और चुपके से एक तरफ को चल दिया।

मनुष्य की आत्मा कितनी महान् है! राहुल अब उस भय पर जी खोलकर हँस सकता था जो उसके हृदय में समाया हुआ था। वह उस बूढ़े की झुकी हुई अर्धनग्न आकृति को सड़क पर जाते हुए देख रहा था और उसे देखकर उसका हृदय एक अपार हर्ष और असीम गर्व से भर गया था। वह बूढ़ा उसके दिमाग में बंगाल की क्षुधा-पीड़ित जनता की मुक्ति की आशा के प्रतीक स्वरूप अंकित हो गया।

× × ×

"वेरी हंगरी, सा'ब, वन पाइस, सा'ब, ईट राइस, वेरी वेरी हंगरी सा'ब," (बहुत भूख लगी है, साहब! एक पैसा, साहब! चावल खायंगे, साहब, बहुत भूख लगी है, बहुत ज्यादा) चीथड़े पहने हुए वह लड़का निराश्रितों की चिरपरिचित लय में गिड़गिड़ाकर कह रहा था। एक अमरीकन सिपाही अपनी मटियाले रंग की वर्दी

पहने जैसे ही मैट्रो सिनेमा से बाहर निकला था वह लड़का उसके पीछे लग गया था।

सिपाही रुका और सिर झुकाकर उसे देखने लगा। उसकी नीली आँखों में उस बच्चे के प्रति प्यार उमड़ आया। उसने मुस्कराकर कुछ कहा, जो बच्चे की समझ में बिलकुल भी न आया। उसने उस नन्हे-से भिखारी के मैले-कुचैले बालों पर प्यार से हाथ फेरा और एक अठन्नी उसके हाथ पर रख दी।

सिपाही आगे चला गया। अनु भौंचक्का खड़ा रह गया। आज तक किसी ने उसको इतने पैसे न दिये थे और किसी अजनबी ने कभी इतने प्यार से उसके सिर पर हाथ न फेरा था। सब उससे घृणा करते थे, उससे दूर भागते थे और उससे डरते थे। अनु ने अपना हाथ अपने बालों पर फेरा जैसे उनमें उस अनोखे स्पर्श का असर अब भी बाकी था। उसकी आँखें झपकने लगीं। वह रुआसा हो गया था।

अठन्नी को मजबूती से मुट्ठी में पकड़े वह सस्ते खाने की दुकान की तरफ चला जा रहा था। वह कल्पना कर रहा था कि जाकर भात खायगा, पूरी दो प्लेट भर के चावल और उसके साथ दाल और आलू की तरकारी। आज तो उसके पास बहुत पैसे थे। अनु बहुत मगन था। उसे चावल की प्लेटें दिखाई दे रही थीं — बस जाकर उसके आर्डर करने-भर की देर थी। आँखें बन्द करके वह गरम-गरम उबले हुए भात का स्वाद अनुभव करने लगा। अभी जो कल्पना थी वह थोड़ी देर में साक्षात् हो जायगी।

खाने की दुकान थोड़ी दूर पर बेंटिंक-स्ट्रीट में थी। अनु धीरे-धीरे चला जा रहा था। उसका नन्हा-सा हाथ उसके खाली पेट पर रखा हुआ था। उसका पेट इस तरह फूला हुआ था जैसे उसने बहुत ज्यादा खाना खा लिया हो। अपने पेट पर हाथ फेरकर अनु सोचने लगा कि कैसी अजीब बात है—उसका मुख विषादयुक्त आश्चर्य से विकृत हो गया। महीनों और बरसों तक पेटुओं की तरह खाते रहने के बाद

आदमी के बड़ी-सी तोंद निकल आती है—जैसे इन मोटे-मोटे सेठों के। और महीनों भूखों मरने के बाद भी हाथ, पाँव, चेहरा, सीना और सारा शरीर तो सूखकर हड्डी रह जाता है, पर पेट गुब्बारे की तरह फूलता ही चला जाता है। कैसी अजीब बात है!

एक क्षण में उसके विचार दूसरी दिशा में प्रवाहित हो चले और वह कल रात वाली बात के बारे में सोचने लगा। भोंपू घण्टे-भर से बज रहा था और सारे शहर की सड़कों पर आतंक फैल रहा था। अनु अपनी कल्पना में सिरेन के भोंपू को देख रहा था जिसमें सौ नलियाँ थीं। हर नली के सिरे पर एक गोरा सिपाही खड़ा हुआ उसमें हवा फूँक रहा था। भोंपू की चोटी पर एक बहुत बड़ा छेद था और उसमें से जब इन सौ नलियों की हवा निकलती थी तब यह जोरदार आवाज पैदा होती थी। फिर थोड़ी ही देर में एक दूसरी भयानक आवाज हुई। बड़े-बड़े परों वाली एक चिड़िया तेजी से आकाश में उड़ रही थी और अपने वेग से आकाश के टुकड़े-टुकड़े किये डाल रही थी। अनु कई बार इस बात पर आश्चर्य कर चुका था कि अगर आकाश के टुकड़े हो जायं तो वह कैसे होंगे। वह सोचता था कि आकाश मोटे, खूबसूरत, नीले रेशम का बना हुआ है; और एक बड़ा-सा टुकड़ा आकर निराश्रितों की गली में गिर पड़े, तो फिर उनको नंगा रहने की जरूरत नहीं रह जायगी। उनके पास इतना बहुत-सा कपड़ा होगा कि सबके तन ढक जायं। पर आकाश का तो कोई टुकड़ा नहीं गिरा था, एक दिन केवल एक जापानी बम आकर फटा था और गली की बगल वाली इमारत का पिछला भाग गिर पड़ा था। दिन निकलते ही गली लोगों से खचाखच भर गई थी। चमकदार भव्य मोटरों में बैठकर सिपाही और ए० आर० पी० के अफसर आए थे और वह बड़े साहस के साथ गली की गन्दगी और बदबू की ओर कोई ध्यान दिये बगैर दनदनाते हुए अन्दर चले गए थे। गन्दे निराश्रित लोग रास्ते में केंचुओं की तरह पड़े थे। यह सब फौज-लश्कर उस दिन इसलिए आया था कि दो या तीन

कंगाल जापानी बम के फटने से घायल हो गए थे। पर इन बड़े-बड़े अफसरों में से उस वक्त कोई न आया था जब उसी स्थान पर वैसे ही अनेकों कंगाल भूख से घायल पड़े थे और कई तो मर भी गए थे, जिनमें इतनी भी शक्ति बाकी न रह गई थी कि किसी खैराती लंगर-खाने से जाकर खाना ही ले आयं, जिनको कई-कई दिन तक खाना नसीब नहीं हुआ था।

बम से घायल होने वालों को उन्होंने एक मोटर में डाल दिया था। मोटर पर एक मोटी-सी लाल लकीर बेड़ी-बेड़ी बनी थी और एक मोटी-सी लाल लकीर उसको काटती हुई खड़ी-खड़ी खिंची हुई थी। वह उनको अस्पताल ले गए थे।

इससे पहले भी इस गली के कुछ आदमी, जिनके पेट सड़ा-गला खाना खाने के कारण खराब हो गए थे, उस शानदार मोटर में बैठकर गए थे; पर वह घण्टे-भर बाद ही फिर वहीं लाकर छोड़ दिये गए थे। अस्पतालों में उनके लिए जगह नहीं थी। पर उन लोगों के लिए काफी जगह थी जो जापानी बमों से घायल हो जाते थे, उन लोगों के लिए जगह अस्पतालों में सुरक्षित रखी गई थी। बड़े-बड़े अफसर उनसे यही बातें कहते थे ताकि निराश्रित जापानी लोग बमों से कहीं डरने न लगें।

सहसा अनु को एक बात सूझी। किसी बात से उसका चेहरा चमक उठा। वह बेशिटक-स्ट्रीट वाली खाने की दुकान से थोड़ी ही दूर पर था। पर वह दुकान पर रुका नहीं, वह आगे बढ़ता चला गया। वह बहुत दूर आगे निकल गया और एक गली के मन्दिर के पास पहुँच गया। वहमन्दिर के आँगन में गया जहाँ फूल बिक रहे थे।

अनु अठन्नी मुट्ठी में दबाए बड़ी देर तक फूलों को देखता रहा, मानो वह किसी गहरे विचार में डूबा हुआ हो। थोड़ी देर बाद उसने अपनी मुट्ठी खोली और फूल वाली की तरफ अठन्नी बढ़ाकर बोला—"चमेली के फूल।" उसका मुँह सूख रहा था और उसका पेट भूख से कुलबुला रहा था।

फूल वाली ने उसे बड़े आश्चर्य से देखा। उसके पाँव दियासलाई की तीली की तरह पतले थे और उसके घुटने का जोड़ तक दिखाई पड़ता था; हड्डियाँ तक सूखी हुई लगती थीं। यह निराश्रित बालक अब अधिक दिन तक जीवित रहने वाला नहीं था। पत्थर की देवी के हृदय में ऐसे कपटहीन लोगों के लिए कोई दया नहीं थी, जिन्होंने कोई पाप न किया हो, जिन्होंने किसी के साथ कोई अपकार न किया हो।

"श्रद्धा के फूल से बढ़कर सुन्दर कौन फूल हो सकता है?" उसने बड़े स्नेह से कहा, "बेटा, देवी के सामने जाओ और उसे अपना हृदय दिखला दो।"

अनु ने सिर हिलाया—"नहीं, देवी को चमेली के सफेद फूल अच्छे लगते हैं।" और फूल लेने से पहले उसने अपने चीथड़ों से बड़ी सावधानी से अपने हाथ पोंछ लिए।

"बेटा, पैसे रहने दो। तुमको जितने फूल चाहिएं ले लो।" फूल वाली ने एक बड़े-से कमल के पत्ते का दौना बनाकर उसमें चमेली के फूल भरकर उसे दे दिए।

"माई, पैसे नहीं दूँगा तो फूल चढ़ाने का सारा महत्त्व जाता रहेगा।"

और यह बात सच भी थी। फूल वाली ने दुखी होकर अठन्नी ले ली और उसे कुछ रेजगारी लौटा दी। अनु थोड़ी देर तक सोचता रहा। फिर वह बचे हुए पैसे भी फूल वाली को लौटाकर बोला—"लो, इतने पैसों में एक बड़ा-सा घी का दिया मिल जायगा न!"

फूल वाली ने एक गहरी आह भरी। इस क्षुधा-पीड़ित बालक को क्या हो गया है कि इतनी फिजूलखर्ची कर रहा है।

एक हाथ में कमल के पत्ते का दौना और दूसरे में घी का दिया लिये अनु मन्दिर की वेदी की तरफ बढ़ा, जहाँ देवी की मूर्ति एक ऊँचे-से चबूतरे पर स्थापित थी। पंजे के बल खड़े होकर उसने देवी के चरणों में अपनी तुच्छ भेंट चढ़ा दी। चबूतरे पर रखे हुए एक दूसरे

दिये से उसने अपने दिये की बत्ती जलाई और फिर झुककर तीन बार देवी के चरणों में माथा टेका।

"हे माई, मैं तुझसे कुछ नहीं माँगता," प्रार्थना के शब्द उसके हृदय से एक धारा के रूप में निकल रहे थे, "बस केवल इतना चाहता हूँ कि जापानी बम मेरे आकर लगे, माई ! तब वह लाल लकीर वाली मोटर आकर मुझे अस्पताल ले जायगी। वहाँ मुझे लेटने के लिए लोहे का पलंग मिलेगा, माई ! ओढ़ने के लिए सफ़ेद चादर मिलेगी और शायद ठंड से बचने के लिए कम्बल भी मिले। वहाँ खाना भी मिलेगा माई, भर-पेट चावल खाने को मिलेगा। माई, मैं वहाँ जी भरकर सोऊँगा और फिर चाहे जितना पानी बरसे में भीगूँगा नहीं, क्योंकि मैं छत के नीचे लेटा रहूँगा। फिर मुझे दिन-भर मारे-मारे फिरकर घूरों से खाना नहीं ढूँढना पड़ेगा, क्रोध से पागल कुत्तों से लड़ना नहीं पड़ेगा। जापानी बम से घायल होकर मैं मजे से वहाँ लेटूँगा, एक डॉक्टर मेरी देख-भाल करेगा, डॉक्टर मेरा जख्म दवा से धोकर साफ करेगा, बगल में शीशे की नली लगाकर मेरा ताप देखेगा। और माई, देखो ऐसा करना कि घाव गहरा लगे, जल्दी अच्छा न हो। तब मैं बहुत दिन तक अस्पताल में रह सकता हूँ। बिछाने को बिस्तर, ओढ़ने को कम्बल और पेट-भर खाने को चावल ! मैं वहाँ राजा की तरह रहूँगा। माई, मैं तुझसे कुछ और नहीं माँगता। बस माई, कुछ ऐसा कर दे कि जापानी बम आकर मेरे लगे और मैं घायल हो जाऊँ।"

अनु अब वह पहले-जैसा बालक न रह गया था जिसके हृदय में दूसरों का दर्द था, जो अपने सगे-सम्बन्धियों का ध्यान रखता था, जो अपनी सारी शक्ति से उनकी रक्षा के लिए तैयार रहता था, जिसके जीवन का एक-एक क्षण उन्हीं के लिए अर्पित था। अब वह अपने-आपको जीवित रखने की समस्या में ही उलझकर रह गया था। उसकी पराजित आत्मा ने अन्य सभी भावनाओं को समेटकर हज्म

कर लिया था और हर समय मन-ही-मन कुढ़ते रहने के कारण उसकी संघर्ष करने की शक्ति को भी क्षीण बना दिया था। वह एक अजीब गोरख-धन्धे में फँस गया था, जिससे बाहर निकलने का उसे कोई रास्ता नहीं दिखाई देता था।

अठारह

कजली ने निश्चित रूप से तै कर लिया था। वह अपना सब-कुछ बेच देगी—स्वयं अपने-आपको बेच देगी। माँ मृत्यु-शय्या पर पड़ी थी। वह बीमार थी और जो-कुछ भोजन उसका बेटा और बेटी भीख माँगकर और घूरे पर से ढूँढकर लाते थे उसे वह हज्म नहीं कर पाती थी। उसे किसी सुरक्षित स्थान में रखने की जरूरत थी, क्योंकि जाड़े की कड़ाके की सरदी की वजह से उसके सीने पर भी असर पड़ा था। यदि वह दलाल से वह रुपये ले ले जो वह देने पर तैयार था तो यह सब-कुछ हो सकता था। सत्तर रुपये! उसका शरीर क्या सचमुच इतना बहुमूल्य था, कजली गम्भीर विस्मय में पड़ी हुई सोच रही थी। उसका शरीर तो गाँव से आते समय उस बड़ी सड़क पर ही कलंकित हो चुका था। फिर अब यदि उसमें और कलंक लग जाय, तो क्या हर्ज है। माँ की जान तो बच जायगी। माँ ने बहुत यातनाएं सहन की थीं, अब उसमें अधिक सहन करने की शक्ति बाकी नहीं रही थी। वह पिछले ही कुछ दिनों में बिलकुल सूखकर काँटा हो गई थी और बूढ़ी लगने लगी थी। उससे बोला भी नहीं जाता था और साँस लेने में भी उसे कष्ट होता था। कजली जब भी उसे देखती उसकी आँखें व्यथित हो जातीं और उसका हृदय रो उठता। उसने निश्चय कर लिया था कि वह अपने-आपको उस सियार-दूत के हाथों में सौंप देगी। सियार ही

उसके बच्चे को भी खा गया था। यदि उसे भी यह सियार खा जायगा तो क्या हर्ज है? इस प्रकार जो पैसा मिलेगा उससे माँ का साल-भर का तो ठिकाना हो जायगा। उसके बाद शायद अच्छे दिन फिर लौट आयं और माँ और अनु गाँव लौट जायं। वहाँ उसकी जमीन है और फिर अनु के पिता भी जेल से लौट आयंगे। पर कनु भैया लौटकर नहीं आयंगे और न उसका पति लौटकर आयगा। उन दोनों को तो फाँसी दे दी जायगी (यह धारणा उसकी खून की एक-एक बूँद में समाई हुई थी।) कौन जाने उनको फाँसी दे भी दी गई हो! पान वाली कहती थी कि कई लोगों को फाँसी दी जा चुकी है। उसको यह बात अपने गाहकों से और अखबार बेचने वाले लड़कों की जुबानी मालूम हुई थी। पर स्वयं वह कभी घर लौटकर नहीं जायगी। कजली कभी घर लौटकर नहीं जायगी। उसकी परछाईं जिस चीज पर पड़ेगी वह अपवित्र हो जायगी। वह प्रतिदिन रात्रि के अन्धकार में अपने शरीर को सियार के पंजों में डाल देगी और एक दिन फिर इस अन्धकार का हमेशा के लिए अन्त हो जायगा। कजली ने आत्म-हत्या की भावना से अपनी ठोड़ी को झटका। कोई भी दृढ़ निश्चय करते समय वह हमेशा ऐसा ही करती थी।

वह अपने पति की कल्पना करके बड़ी देर तक उसके विचारों में डूबी रही। वह अक्सर उसके विचारों में इस प्रकार डूब जाती थी। एक अजनबी अनन्त शून्य में से, आकाश की गहन नीलिमा में से आया और उसने उसे अपनी पत्नी बना लिया और अपनी आत्मा की आकाश की नीलिमा-जैसी पवित्रता, निर्मलता और कोमलता का साझेदार बना लिया; और फिर वह चला गया। उसे उन लोगों ने फाँसी दे दी—यह धारणा उसके हृदय में बस गई थी। सियारों की दुनिया के लोग इस बात को सहन नहीं कर सकते थे कि एक मनुष्य की आत्मा आकाश की नीलिमा की तरह स्वच्छ हो। उसने कनु को, एक ऐसे व्यक्ति को जिसका अन्त निश्चित था, बचाने का प्रयत्न किया था और

उन्होंने, सियारों की दुनिया के लोगों ने, उसे जंजीरों में जकड़ दिया था और उसे फाँसी दे दी थी। नहीं तो वह लौटकर जरूर आता। वह संसार के दूसरे छोर से भी चलकर वापस आ जाता। उसे फाँसी दे दी गई! निश्चय ही यह घटना उस दिन हुई थी जिस दिन उसने अस्पताल में स्वप्न में उसकी आवाज सुनी थी। उसने बहुत धीमी आवाज में कहा था—"कजली!" उसके स्वर में इतनी कोमलता थी कि वह सोते में रो पड़ी थी और जागने पर नर्स ने उससे पूछा था—"तुम सारी रात बड़बड़ाती रहीं—क्या तुमको तकलीफ ज्यादा है?"

उसके हृदय में केवल एक प्रार्थना थी कि आने वाले जन्म में भी वही उसका पति हो। उसे स्वर्ग में जाने की लालसा नहीं थी। वह चाहती थी कि वह बार-बार इसी पृथ्वी पर जन्म ले और हर बार वही उसका पति हो। यही उसकी एक-मात्र अभिलाषा थी।

कजली ने अपने निश्चय के बारे में पान वाली से कहा और उस स्त्री ने हर्ष से पुलकित होकर उसे नोटों की गड्डी दिखाई। साफ-सुथरे दस-दस रुपए के नोट। कजली ने देखते ही कहा—"यह मुझे पेशगी दे दो।"

"सब एकदम लोगी?" उस स्त्री ने संशय से अपनी आँखें तरेरकर कहा।

"सब," कजली ने उत्तर दिया।

"और अगर तुम न आईं तो?"

वह स्त्री को एकटक देख रही थी। उसने उत्तर दिया—"मैं आऊँगी।"

उसकी भावनाहीन, शान्त दृष्टि से वह निर्लज्ज औरत भी शरमा गई और उसने जल्दी से उत्तर दिया—"मैं जानती हूँ। तुम आओगी।"

कजली ने रुपए ले लिए और वादा किया कि जब माँ सो जायगी तब वह आधी रात के समय आयगी।

उसने नोटों की गड्डी टाट के एक टुकड़े में बाँध दी, जिसे वह ओढ़ने

की तरह इस्तैमाल करते थे और उसे तह करके माँ के सिरहाने रख दिया। उसने अपनी पतली-पतली बाँहें माँ के गले में डाल दीं और उसके सीने में सिर छिपाकर लेट गई—जैसे कोई थका हुआ बच्चा, बुरी तरह थका हुआ बच्चा माँ की गोद में सिर छिपाकर सो जाता है। जब उसकी मुँदी हुई पलकों में आँसू छलक आए और वह उनको रोकने का प्रयत्न करने लगी, तो माँ उसे दुलराने लगी और उसके उलझे हुए मैले बालों में हाथ फेरते हुए उसे प्यार-भरे शब्दों में आशीर्वाद देने लगी। ऐसा मालूम होता था कि माँ को सारी बात का पता चल गया है, मानो किसी ने उससे कह दिया है। पर वह जान ही कैसे सकती थी?

माँ दूसरे ही कारण कजली से विदा ले रही थी। वह जा रही थी। उस दिन प्रातःकाल उसने गंगा के किनारे एक आदमी को पेड़ में लटके हुए देखा था। उसकी गरदन एक फटे-पुराने चीथड़े से बँधी हुई थी। उसने फाँसी लगाकर आत्म-हत्या कर ली थी। माँ ने बड़ी देर तक खड़े होकर उसकी लाश को देखा था। उस मनुष्य ने अपनी आखिरी साँस से यह साबित कर दिया था कि वह उस समय भी एक मनुष्य था, एक अपराजित मनुष्य। एक क्षण की भी देर हो जाती तो समय बीत जाता; एक क्षण बाद ही वह जानवरों की तरह बुद्धिहीन हो जाता; उसमें अपनी मरजी से मर जाने की क्षमता बाकी न रह जाती—भला कभी किसी ने भूख से मरते हुए जानवर को डूबकर जान देते हुए भी देखा है? माँ को इस आदमी से ईर्ष्या-सी होने लगी थी और उसने अपने बारे में निश्चय कर लिया था। वह अपने बच्चों के लिए एक बोझ बन गई थी। अपना ही पेट भरना दूभर हो गया था, फिर ऊपर से एक दुर्बल माँ का भार, जो हमेशा बीमार रहती थी और जाकर खैराती लंगरखाने से खाना भी न ला सकती थी। उसने निश्चय कर लिया था कि समय हाथ से निकल जाने से पहले ही वह अपने निश्चय को पूरा कर लेगी; नहीं तो फिर उसमें सोचने और अनुभव करने की शक्ति भी न रह जायगी। वह फौरन ही कुछ कर डालेगी।

गंगा मैया उसे बुला रही थीं।

उसने मन-ही-मन अपने पुत्र को और पुत्री को आशीष दी और उनको देवताओं के सुपुर्द कर दिया—"भगवान् इन्हें अच्छे दिन जल्दी दिखाना। अगर इन्होंने पिछले जन्म में कोई पाप किये हों तो उसका दण्ड मुझे देना, मैं उनका फल भोगूँगी। मैं जन्म-जन्मान्तर तक दुःख सहूँगी, पर इन पर दया रखना।" आशीर्वाद देते समय उसने अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरा, उसे सीने से लगाया। उसे इस बात का दुःख था कि अब उसके घने काले-काले बालों को सँवारने वाला कोई न रह जायगा, उसके बालों से जूँ कौन निकालेगा? दुर्बलता के कारण उसकी पलकें झुकी जा रही थीं। वह अपने हृदय में अपनी व्यथा छिपाये हुए सो गई। उसकी बेटी का कोमल स्नेहमय चेहरा उसके सीने पर रखा हुआ था·····जब उसकी आँख खुली उस समय पौ फटने वाली थी और गली में कुछ-कुछ उजाला हो चला था। वह चिन्तित होकर उठ बैठी। कजली कहाँ गई? शायद यहीं कहीं गली में उजाला होने से पहले शौचादि से निवृत्त होने गई होगी। अनु गहरी नींद में सो रहा था। माँ ने उसके चेहरे पर कई बार हाथ फेरकर उसे आशीर्वाद दिया। उसे इस बात का दुःख था कि जाने से पहले वह अन्तिम बार कजली को न देख सकी। कुछ क्षण तक वह चुपके-चुपके रोती रही। उसके पास अधिक समय नहीं था, इसलिए वह उठकर चल दी। उसके पाँव पत्थर की तरह भारी हो गए थे।

फिर उसने सोचा—"मैं अपने साथ अपनी यह साड़ी क्यों गवाऊँ? घिस गई है, फट गई है फिर भी कजली के हजारों काम आ सकती है।" वह लौट आई और अपनी साड़ी उतारकर उसने अपने हीन-दुर्बल शरीर को उस टाट के टुकड़े में लपेट लिया। नोटों की गड्डी उसके शरीर से स्पर्श कर गई। उसने सोचा कोई रद्दी कागज होगा और लँगड़ाती हुई चल दी।

प्रातःकाल से पूर्व के धूमिल प्रकाश में अर्धनंगी माँ, उस विशाल

नगर की अंधकारमय सड़कों पर घिसटती हुई हावड़ा के पुल पर जा पहुँची। थकान से उसके पाँव काँप रहे थे, पर वह बढ़ते-बढ़ते पुल के, बीच में पहुँच गई ताकि घाट से और किनारे खड़ी हुई नावों के समूह से दूर हो जाय। इतने सबेरे भी एक स्टीमर की चिमनी से धुआँ निकल रहा था। उसकी आँखों के सामने अनेकों शक्लें नाच रही थीं—उसका पति, उसके तीन बच्चे, उसके दामाद सब उसकी आँखों में घूम रहे थे। उसके कानों में गाने की आवाज आ रही थी। ऐसा लगता था जैसे कोई भजन गा रहा है—वही भजन जो उसका पति केवल उसको गाकर सुनाया करता था। इस घोर विपदा के आगमन से पहले उसने अपने जीवन में काफी सुख देखा था। उसने नदी के स्याह पानी पर नजर डाली और उसका दिल सहसा डर से काँप गया। उसकी गढ़ों में धँसी हुई आँखें स्थिर थीं और उनमें आँसू भरे हुए थे। उसकी साँस फूलने लगी और उसका दम घुटने लगा। उसने पुल के किनारे लगी हुई छड़ को खूब मजबूती से पकड़ लिया। छड़ उसके सीने-जितनी ऊँचाई पर लगी हुई थी। इतने में उसने एक मोटर आने की आवाज सुनी और वह मुड़कर उसकी चमकती हुई बत्तियों को देखने लगी। उसने जल्दी से अपने पाँव उठाकर अपनी पूरी शक्ति से अपने शरीर को ऊपर की ओर उछाल दिया···

× × ×

कजली का मुँह लटका हुआ था। उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे, और वह उनको सड़क पर घसीटती हुई चली जा रही थी। पान वाली पहले उसे एक घण्टे-भर के लिए अपनी दुकान में ले गई थी। "देखो, पहले कुल्ली करो और फिर, लो यह अंग्रेजी मंजन है, इससे अपने दाँत माँजो, ताकि बिलकुल चमकने लगें। फिर साबुन से अपना मुँह धो लो। और हाँ, लो यह खुशबूदार तेल हथेली में लेकर अपने बालों में लगा लो। अपने नए सुखमय जीवन में प्रवेश करने से पहले इतना कर लेना बहुत जरूरी है।" कजली यन्त्रवत् उसके आदेशों का पालन

करती रही। और सुबह तड़के ही जब वह सड़क पर होकर वापस आ रही थी उस समय भी वह यन्त्रवत् चल रही थी। न उसमें सोचने की शक्ति थी और न अनुभव करने की; वह अन्दर से बिलकुल पत्थर की तरह निर्जीव हो गई थी। एक ट्राम खड़खड़ाती हुई पास से निकल गई। शहर अपनी नींद से धीरे-धीरे जाग रहा था। सड़क के एक कोने पर एक अखबार बेचने वाला लड़का अखबारों का बंडल बगल में दबाए इधर-से-उधर भाग रहा था और ट्राम में बैठे हुए इक्के-दुक्के यात्रियों का ध्यान आकर्षित कर रहा था—"अखबार *हिन्दुस्तान* अखबार! देहरादून के राजबन्दियों ने भूख-हड़ताल शुरू कर दी।"

उसने कुछ-कुछ सुना पर वह आगे निकल गई। वह अखबार वालों की आवाज सुनने की आदी हो गई थी, इसलिए उसने कोई ध्यान नहीं दिया। दस कदम चलने के बाद फिर वही आवाज उसके कानों में आई। कोई उसके पीछे बिलकुल पास ही चिल्ला रहा था—"देहरादून के राजबन्दियों ने भूख-हड़ताल शुरू कर दी।" प्रातःकाल के निस्तब्ध सन्नाटे में यह शब्द गूँज गए।

बड़े आश्चर्य की बात थी कि सहसा उसकी स्मृति के तार झनझना उठे। दादू भी तो देहरादून जेल में ही बन्द हैं। भूख-हड़ताल! उसका चेहरा सिकुड़ गया, मानो उन शब्दों का पूरा अर्थ समझने का प्रयत्न कर रही हो। भूख-हड़ताल! दादू! दादू भूखे हैं! उसकी आँखें आश्चर्य से तनिक फैल गईं।

पर वह चलती रही।

"भूख-हड़ताल!" पान वाली ने तिरस्कार के भाव से कहा, "हमारे कलकत्ते शहर में वैसे ही बहुत भूख है। जब खाने को मिलता है तो क्यों छोड़ते हैं? हर जेल में, जिधर देखो उसी जेल में, क्या उत्तर, क्या दक्खिन, क्या पूरब, क्या पश्चिम सभी जगह भूख-हड़ताल है। रोज अखबार वाले यही चिल्लाते रहते हैं। सुनते-सुनते कान पक गए। हे भगवान्! इन उल्लू के पट्ठों को जेल की शान्त, शीतल, सुखमय छाया

से निकाल कर यहाँ इन भिखारियों की गलियों में क्यों नहीं डाल देते ? उनके लिए भी अच्छा हो जायगा।" और वह अपनी बत्तीसी खोलकर हँसने लगी।

एक अखबार वाला फिर उधर से निकला—"पेपर ! *भारत* अखबार ! कांग्रेसी नेता का मरण-व्रत !"

"अच्छा वह !" पान वाली ने इस गर्व से कहा कि वह भी राजनीति के बारे में बहुत कुछ जानती है। "सत्तर बरस से ऊपर हो गया है और इस बुढ़ापे में चला है अनशन करने। उसकी बूढ़ी हड्डियों में तो दम भी नहीं रह गया है। पागल हो गया है !"

"क्या नाम है ?" कजली ने दबी जबान से पूछा, और उसका हृदय सहसा बड़ी तेजी से धड़कने लगा।

"अरे वही एक लम्बी दाढ़ी वाला आदमी है। मैंने उसकी तस्वीर देखी थी। देवेश, हाँ-हाँ देवेश बसु, यही नाम है उसका !"

और पलक मारते में कजली की आँखों के सामने दादू का चित्र घूम गया।

देवता वहाँ खड़ा था—सफेद वस्त्रों में आभूषित वह दिव्य मूर्ति, दोनों हाथ ऊपर को उठाये हुए। उसके चाँदी की तरह चमकते हुए बाल और लम्बी श्वेत दाढ़ी एक विचित्र ज्योति से चमक रहे थे, जो केवल सूर्य की ही ज्योति नहीं थी।

"दोस्तो और साथियो, इस झण्डे को धोखा मत देना; अपने-आपको धोखा न देना। अन्तिम परीक्षा का समय आ गया है; दृढ़ रहो, सत्य को न छोड़ो और मौत से न डरो। बन्देमातरम् !"

....और फिर उसने उनको जेलखाने में एक कैदी की पोशाक पहने हुए देखा। वह अपनी भूख को एक तलवार की तरह प्रयोग कर रहे थे। वह उस समय भी हमेशा की तरह सत्य के उपासक थे और मौत का उनको कोई भय नहीं था।

और वह, दादू की पोती; उसकी यह दुर्दशा ? भूख से पीड़ित

होकर उसने अपने-आपको बेच दिया। दादू सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?

किसी दिन जब दादू को मालूम होगा तो क्या होगा ? उसके जीवन की इस अन्तिम अवस्था से उनको जितना दुःख होगा वह जेल की सारी यातनाओं से और भूख-हड़ताल की पीड़ाओं से कहीं अधिक दुःखदायी होगा...

उसके दिल की धड़कन इतनी तेज़ होती जा रही थी कि वह उसे अपनी पसलियों पर अनुभव कर रही थी। उसने अपने दोनों हाथों से अपना सीना दबा लिया।

"कजली, तूने झण्डे को प्रणाम करके शपथ ली थी, तू सैनिक है," उसके पिता ने उसे उस समय कहा था जब लाल पगड़ी वाले उन्हें हथकड़ी पहनाकर ले जा रहे थे। और उस समय कोई नहीं रोया था—न माँ, न कनु, न अनु। सबने झण्डे को प्रणाम करके शपथ ली थी; सब सैनिक थे।

जब उसकी शिथिल चेतना मूर्छा से जागृत हुई तो भूले हुए चेहरे फिर याद आने लगे; भूली हुई स्मृतियाँ, जो राख में दबी हुई थीं फिर चिंगारियों की तरह भड़क उठीं। उसके बाबा, उसके कनु भैया, वह राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए लड़े थे। उसका पति मज़दूरों के लिए लड़ा था। और उनमें से किसी ने पराजय स्वीकार नहीं की थी। कोई जेल-खाना उनके विश्वास को, उनके साहस को डिगा नहीं सका था। और एक वह थी कि बिलकुल पतन के गर्त में गिर गई थी, बिलकुल ही पतित हो गई थी, अपने-आपको उसने बेच दिया था।

वह और कर भी क्या सकती थी ? माँ मर रही थी, उसे भोजन की जरूरत थी, शरण की जरूरत थी। माँ और अधिक विपदा सहन नहीं कर सकती थी; और न अनु। अब वह अपने-आपको मिटाकर कम-से-कम उनको तो जीवित रख सकेगी।

सहसा एक धमाके की तरह वह अपने पतन का वास्तविक रूप समझ गई। उसकी साँस रुकने लगी। उसकी आँखों में आँसू भर

आए। न जाने कब से वह रोई नहीं थी। आँसू उसके गालों पर बह रहे थे। उसने उनको अपनी उँगलियों से पोंछा और एक कदम आगे चलने लगी कि कहीं पान वाली देख न ले।

वह सड़क पर चली जा रही थी और वह शब्द उसके कानों में निरन्तर गूँज रहे थे—"कजली, तुम अब सैनिक हो।" वह स्वर तेज होता गया। वह स्वर उसके रक्त के साथ प्रवाहित होने लगा और उसके कानों में रह-रहकर गूँजने लगा।

सैनिक! क्या उसने बिना संघर्ष के ही अपने को भाग्य के सहारे नहीं छोड़ दिया था? क्या वह भी दूसरे बुद्धिहीन, तर्कहीन निराश्रितों की तरह नहीं हो गई थी? खैराती लंगरखाने से भोजन ले आना, कूड़े के ढेरों में से ढूँढ़-ढूँढ़कर खाना खोज निकालना; वह बिलकुल कायर थी। भिखारियों में और उसमें क्या अन्तर था? और इसी तरह मर जाना, जीते-जी हजार बार मर जाना।

दादू, जिनको एक साम्राज्य की शक्ति भी विचलित न कर सकी, उसकी दुर्दशा देखकर दुखी हो जायंगे।

दादू को यदि निराश्रितों के बीच भी रहना पड़ता, तो भी वह दृढ़ बने रहते और सत्य को न छोड़ते।

और यह डाइन पान वाली! उस दुःसह आघात से मुक्त होकर, जिसके आधीन वह सहज ही आत्म-समर्पण करके उसके जाल में फँस गई थी, कजली में फिर वही पहले की-सी चेतनशीलता और जागृति आ गई। उसने अनुभव किया कि वह एक महान् अपमान के बोझ से दबी जा रही है। उसका रोम-रोम काँप उठा और उसकी हथेलियाँ पसीजने लगीं। उस स्त्री के कहे हुए सैकड़ों शब्द जब उसे याद आए तो एक-एक शब्द बिच्छू की तरह उसके शरीर पर डंक मारने लगा।

भाग जाओ, कजली, किसी प्रकार इस जाल से निकल जाओ! और उसने दृढ़ निश्चय के भाव से अपनी ठोड़ी को झटका दिया। वह बार-बार अपनी मुट्ठियाँ खोलती और फिर बाँध लेती।

उसी समय पान वाली ने अपने निस्सहाय शिकार के साथ एक बहुत बड़ा उपकार किया—उसी पान वाली ने जिसने आज तक किसी के साथ कोई उपकार नहीं किया था। अनजाने में उसने कजली को भाग निकलने का एक उपाय सुझा दिया।

"ऐसी सनसनीदार खबरों से इन अखबार वालों की बन आती है। अखबार बाजार में हाथों-हाथ बिक जाते हैं। एक दर्जन अखबार बेचने पर दो आने कमीशन मिलता है।"

"मैं तो ऐसे-ऐसे न जाने कितने अखबार बेच सकती हूँ," कजली ने अस्पष्ट रूप से कहा, मानो अपने-आपसे बातें कर रही हो। उसके होंठ खुले हुए थे और वह किसी बात पर आश्चर्य कर रही थी।

पान वाली हँसी। वह इस कारण बहुत प्रसन्न थी कि कजली की वजह से उसे बहुत पैसे मिलने वाले थे।

"क्यों नहीं, अगर तुम अखबार देने के साथ उसकी तरफ देखकर एक बार मुस्करा दोगी तो सब भले लोग तुम्हीं से अखबार खरीदा करेंगे।"

कजली चुप हो गई। उसे एक तरकीब सूझी थी जिसके कारण उसकी मुद्रा गम्भीर हो गई। उसकी आँखों में एक चमक थी।

"उधर नहीं," पान वाली ने दस मिनट बाद एक चौराहे पर पहुँचकर कहा, "हमें सीधे जाना है।"

"नहीं इधर," कजली ने कहा और जल्दी-जल्दी उसी दिशा में चलने लगी।

"किधर ?" औरत ने कड़ककर पूछा।

"*हिन्दुस्तान* अखबार," कजली ने संक्षेप में उत्तर दिया।

पान वाली के चेहरे पर फिर वही मुस्कराहट आ गई। वह जानती थी कि *हिन्दुस्तान* अखबार वालों की तरफ से एक लंगरखाना खुला हुआ था।

"क्यों क्या तुम उस जगह को अन्तिम बार देखना चाहती हो

जहाँ तुमने इतने दिनों तक खाना खाया है ? कैसी अजीब लड़की है, भगवान् !" और उसने इस बात पर सिर हिलाया कि इन कंगालों की भी अक्ल अजब होती है। बिलकुल जानवर होते हैं।

"धीरे चलो ! धीरे !" उसने पुकारकर कहा। वह हाँफ रही थी क्योंकि कजली काफी तेजी से आगे चली जा रही थी। "कोई जल्दी नहीं है।"

पर कजली और तेज चलने लगी। उसके पाँवों में नई शक्ति आ गई थी, उसके हृदय में नई उमंग थी और वह कल्पना करने लगी कि वह *हिन्दुस्तान* अखबार का बड़ा-सा बंडल लिये सड़क के नुक्कड़ पर खड़ी बेच रही है और अखबार हाथों-हाथ बिक रहे हैं। उसे अपनी आवाज भी सुनाई देने लगी—"कांग्रेस के महान् नेता की भूख-हड़ताल" और अनु भी उसके साथ है, वह भी भाग-भागकर अखबार बेच रहा है, "पेपर ! *हिन्दुस्तान* अखबार !"

वह लोहे के बड़े फाटक पर आकर रुक गई।

"तुझे तेरी एक-एक पाई लौटा दूँगी। हालाँकि, भगवान् जानता है, तेरे साथ ऐसी दया दिखाने की कोई जरूरत नहीं है।" फिर कुछ सोचकर बोली, "बस थोड़े से पैसे अखबारों की पेशगी के लिए मैं रख लूँगी। वह भी मेरे ऊपर तेरे कर्ज रहेंगे।"

पान वाली एक क्षण के लिए अवाक् रह गई। उसकी आँखें बाहर को निकल आईं। "कैसी पागलपन की बातें कर रही हो ?" उसने भर्राई हुई आवाज में चीखकर कहा।

कजली ने उसकी तरफ ग़ौर से देखा। एक प्यारी-सी मुस्कराहट के कारण, जो सहसा उसके होंठों पर खेल गई थी, उसका मुखड़ा और भी सुन्दर लगने लगा था।

"देखो। मेरी बगल में *हिन्दुस्तान* अख़बार हैं—साठ अखबार। तुमको दिखाई नहीं देता ? पेपर ! ताज़ी खबर ! कांग्रेस के महान् नेता ने भूख-हड़ताल शुरू कर दी ! यही बात है, समझीं ?"

"पागल है ! तू बिलकुल पागल है," पान वाली के गले से बरबस एक चीख निकल गई।

फाटक के अन्दर प्रवेश करते समय कजली ने एक बार मुड़कर देखा और उसके नष्ट जीवन के सैकड़ों अपमान उसके मुख पर प्रतिबिम्बित हो उठे। उसका चेहरा तमतमा रहा था।

"सियार-स्त्री !" उसने घोर तिरस्कार के भाव से कहा और उसके हाथ का तमाचा उस पापिनी के मुख पर जाकर तड़ से लगा।

× × ×

यह आल इंडिया रेडियो है। अब आप खबरें सुनिए।

समरेन्द्र बाबू को इस सपाट आवाज से नफरत थी, जो धीरे-धीरे घिसटती रहती थी। पर उनमें इतनी शक्ति भी नहीं थी कि बिस्तर से उतरकर रेडियो को बन्द कर दें। नौकर रोज की तरह आकर रेडियो को खोल गया था, क्योंकि सुबह की खबरें आने का समय हो गया था। समरेन्द्रबाबू देर में सोकर उठते थे और इसीलिए वह बिस्तर पर लेटे-लेटे ही खबरें सुन लेते थे। वह नौकर से रेडियो खोलने को मना करना चाहते थे, पर उनके कहने से पहले ही वह जा चुका था।

समरेन्द्रबाबू ने आह भरकर अपने-आपको इस यातना के सहने के लिए तत्पर कर लिया। वह बहुत परेशान थे। ऐसा मालूम होता था कि उस एक रात में उनके जीवन के कई वर्ष बीत गए हैं। वह मानो किसी बम की तरह फटकर चकनाचूर हो गए थे।

अर्ध रात्रि के समय उनको पहला आघात पहुँचा था। कहीं से तार आया था। व्यापार के सम्बन्ध में तार तो समय-कुसमय आते ही रहते थे। समरेन्द्रबाबू ने ऊँघते-ऊँघते तार का पीला लिफाफा खोला और पढ़कर स्तब्ध रह गए। उनके मुख पर मौत की-सी मुर्दनी छा गई।

सरकार के सेना-विभाग से यह तार आया था और उसमें बड़े खेद के साथ इस बात की सूचना दी गई थी कि हिन्दुस्तानी तोपचियों की

सेना के कैप्टन कुणाल बसु का नाम उन सैनिकों की सूची में दर्ज कर लिया गया था जिनका कोई पता न चलता था।

"क्या है ? आखिर बताते क्यों नहीं क्या है ?" उनकी पत्नी दौड़ी-दौड़ी कमरे में आई और घबराकर बार-बार यही प्रश्न करना शुरू किया। उसके चेहरे पर भय और स्वर में पीड़ा थी।

समरेन्द्रबाबू ने अपना सिर हिलाकर गला साफ करते हुए सोचा कि माँ को इस बात की सूचना देना उचित न होगा। वह इस समाचार को सुनकर मर जायगी। भाग्यवश वह अंग्रेजी पढ़ना भी नहीं जानती थी।

"कुछ नहीं, यों ही व्यापार के बारे में है।"

"तो फिर ऐसा मुँह क्यों बनाते हो ?"

"कैसा मुँह ? यों ही खबर अच्छी नहीं है। तुम तो जानती ही हो। व्यापार में कुछ घाटा हो गया है।"

"व्यापार में," वह उनके चेहरे को घूरकर देख रही थी, मानो जानना चाहती हो कि तार वास्तव में व्यापार से ही सम्बन्ध रखता था। व्यापार चौपट भी हो जाता तो उसे कोई परवाह न होती। उसे दौलत का कोई मोह नहीं था। वह अपने पुराने सीधे-सादे जीवन से बहुत सन्तुष्ट थी। उसने हाथ जोड़कर माथे से लगाए और प्रार्थना करने लगी—"हे काली माई, हमारे बेटों पर दया रखना, उन पर कोई विपत्ति न आने पाए।"

जब वह चली गई तो वह बिस्तर में लेट गए और एक क्षण बाद उनके ऊपर का कम्बल बुरी तरह हिलने लगा। वह लेटे हुए बच्चे की तरह सिसक-सिसककर रो रहे थे; पर अपनी सिसकियों को दबाये हुए थे कि कहीं कोई सुन न ले।

सारी रात वह लेटे-लेटे अपने बेटे की याद करते रहे। वह बच्चा था, फिर बड़ा होकर स्कूल जाने लगा; उसे स्कूल में इनाम मिले। फिर कालेज गया; वहाँ खेल-कूद में कई कप इनाम में मिले; माँ इन

सबको सजाकर एक काँच की आलमारी में रखती थी। फिर वह फौज में भरती हो गया। फौजी वर्दी पहनकर वह कितना रौबदार लगता था! और फिर वह दुःखदायी दिन आया जब वह छुट्टी लेकर घर आया और कहने लगा उसे विदेश जाना पड़ेगा। फिर वह करुण विदा! माँ का दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। दो साल बीत गए और अब···पता नहीं चलता···जिनका पता नहीं चलता···

पता नहीं चलता! आखिर इसका क्या मतलब है? क्या वह दुश्मन के हाथ में पड़ गया है? वहाँ उसे बड़ी तकलीफ होगी, पर फिर भी वह सुरक्षित तो रहेगा। उसे गोलों का सामना तो नहीं करना पड़ेगा। समरेन्द्रबाबू हमेशा के आशावादी थे, वह यही आशा लगाए रहे। इस आशा के पीछे अनेकों निराशाजनक सम्भावनाएं छिपी हुई थीं। पर उनकी ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। वह अपना दिमाग इस प्रकार की निराशाजनक सम्भावनाओं से दूर रखना चाहते थे। आत्म-विश्वास पैदा करने के लिए, आत्म-शक्ति प्राप्त करने के लिए वह राहुल से बातें करना चाहते थे, पर राहुल घर में नहीं था। शायद वहीं रिलीफ़-केन्द्र के दफ्तर में सो गया था। कभी-कभी जब उसे काम में देर हो जाती थी और लेकसाइड आने वाली आखिरी बस या ट्राम छूट जाती थी, तो वह शहर में अपने दफ्तर में ही एक कैम्प-बैड पर सो जाता था।

पता नहीं चलता···पता नहीं चलता···वह कल्पना कर रहे थे कि तोपचियों की सेना का कप्तान दुश्मन पर गोलों की वर्षा कर रहा है। दुश्मन भी भीषण गोला-बारी कर रहा है। कप्तान आखिरी गोला रहने तक लड़ता रहा। पर वह अपनी फौज से कटकर अलग हो गया था। उसके सामने वापस जाने का या भाग निकलने का कोई रास्ता न था। शान्त-चित्त से और बहुत निश्चिन्ततापूर्वक वह शत्रु की प्रतीक्षा करने लगा, मानो वह रण-क्षेत्र में नहीं, खेल के मैदान में हो। और आखिर में

उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर इतालवी भाषा में आत्म-समर्पण का पर्यायवाची शब्द कह दिया।

इस असह्य वेदना के समय भी पिता के हृदय में अपने पुत्र को वीरता के प्रति एक गर्व की भावना थी।

एल अलामीन में शत्रु की फौजों को तोड़कर शानदार तरह से आगे बढ़ना, फिर त्रिपोली तक एक हजार मील लम्बी विजय-यात्रा, फिर आठवीं सेना के साथ ट्यूनीशिया की पहाड़ियों पर आक्रमण— पिता को एक-एक करके अपने पुत्र की सब सफलताएं याद आने लगीं। कुणाल हमेशा घमासान लड़ाई के क्षेत्र में ही रहता था। दो बार वह कम्पनी-कमांडर भी रह चुका था···और फिर सिसली···फिर सालेर्नो के बन्दरगाह पर फौजों का उतरना···। कुणाल ने आखिरी खत नेपल्स से लिखा था। समरेन्द्रबाबू को सहसा उस पत्र को पढ़ने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। वह उसका एक-एक शब्द दुबारा पढ़ना चाहते थे। पर माँ उसके सब पत्र बहुमूल्य सम्पत्ति की तरह अपनी गहनों की सन्दूकची में रखती थी।

वह निराशाजनक सम्भावनाएं भूतों की-सी डरावनी सूरत लिये आगे बढ़ती ही चली आ रही थीं····

दूसरा आघात तीन घण्टे बाद पहुँचा। बिस्तर के पास ही जब टेलीफोन की घण्टी बजी उनके हृदय की गति एक क्षण के लिए रुक गई। उन्होंने बड़ी आशा से टेलीफोन की तरफ देखा और सोचने लगे, दिल्ली से आया होगा। यही खबर होगी कि हिन्दुस्तानी तोपचियों की सेना के कैप्टन कुणाल बसु, जिनके बारे में पहले यह सूचना दी गई थी कि उनका पता नहीं चलता है, अब सुरक्षापूर्वक अपनी सेना में वापस पहुँच गए हैं। टेलीफोन उठाते समय उनका हाथ काँप रहा था।

राहुल ने टेलीफोन किया था।

"पिताजी, मैं आपसे विदा माँगता हूँ। मुझे गिरफ्तार कर लिया गया है।"

टेलीफोन का रिसीवर रखकर समरेन्द्रबाबू एक बार फिर बच्चों की तरह सिसक-सिसककर रोने लगे।

उन्हें व्यापार में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी। उन्होंने इतनी बड़ी दौलत किसके लिए पैदा की थी; अपने उन्हीं दोनों बेटों के लिए। उन्हें याद था कि अपनी युवावस्था के दिनों में उन्होंने बड़ी कठिन परिस्थितियों में दिन काटे थे। उन्होंने तिरस्कार सहे थे, अपमानित हुए थे, मानो वह जीवन के किसी निम्न स्तर से सम्बन्ध रखते थे, मानो वह किसी तुच्छ घृणित संसार के वासी थे। उन्हें अपनी दरिद्रता से घृणा थी। धीरे-धीरे इनमें यह धारणा उत्पन्न हुई कि उनके पुत्रों को वे यातनाएं न सहन करनी पड़ें। उन्होंने निश्चय किया कि उनके पुत्रों को जीवन की सबसे उत्तम वस्तुएं प्राप्य होंगी। उनके पुत्र उस शान से, उस घमण्ड के साथ पलेंगे जो धन के कारण मनुष्य को प्राप्त होता है। पर जिनके लिए उन्होंने सारी योजना बनाई थी, जिनके लिए उन्होंने इतना परिश्रम किया था वही उसकी भावनाओं को नहीं समझते थे। वह भी अपने पुत्रों की भावनाओं को कभी नहीं समझ पाए। ऐसा मालूम होता था कि उनके पुत्र किसी दूसरे देश के रहने वाले हैं, जिनकी भाषा उनकी समझ में नहीं आती थी। कुणाल को फौज में भरती होने की क्या जरूरत थी? और राहुल···क्या वह एक वैज्ञानिक के रूप में अपने देश की अधिक सेवा नहीं कर सकता था; विशेष रूप से जब कि वह एक महान् अनुसंधान कार्य को लगभग पूरा कर चुका था? यह प्रश्न उनके हृदय में विशाल रूप धारण करके हरदम उठते रहते थे। आश्चर्य की बात यह थी कि उनके पिता अपने पौत्रों को अच्छी तरह समझते थे और वह स्वयं अपने पुत्र को समझने में सर्वथा असमर्थ थे। वह तीनों यद्यपि स्वभाव में एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न थे फिर भी जैसे वह एक ही संसार के वासी थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके वृद्ध पिता ने अपने पौत्रों में अपनी आत्मा का पुनर्जन्म होते देख लिया था; और उन दोनों ने भी उनकी वृद्धावस्था में जेल की

यातनाओं में उनको सान्त्वना पहुँचाई थी (और इस समय तो अन्य यातनाओं के अतिरिक्त राजबन्दियों के अधिकार मनवाने के लिए उन्होंने अपने ऊपर स्वेच्छा से भूख-हड़ताल की यातना का भार भी ले लिया था।) देहरादून में एक घण्टे की मुलाकात में उन्होंने लोहे के सीखचों के पीछे खड़े हुए उस बन्दी के हृदय की भावनाओं को भली भाँति समझ लिया था।

आल इंडिया रेडियो से समाचारों का क्रम उसी सपाट आवाज में जारी था। समरेन्द्रबाबू को उलझन हो रही थी···

नये वर्ष के पहले दिन का प्रभात था। पर उनके लिए यह नया वर्ष कितना मनहूस था! हर साल की तरह इस साल भी सम्राट् की तरफ से लोगों को पदवियाँ बाँटी गई थीं और रेडियो पर पदवियाँ पाने वालों के नाम सुनाए जा रहे थे। के० सी० आई० ई०···सी० एस० आई०। जाने-पहचाने हुए नामों की सूची जल्दी-जल्दी पढ़ी जा रही थी। सर लक्ष्मीनाथ के हिस्से में एक और उच्च पदवी आई थी, मानो उनके पास वैसे ही काफी पदवियाँ नहीं थीं। सर की पदवी पाने वालों के नाम। सी० आई० ई० की पदवी पाने वालों के नाम। समरेन्द्रबाबू चौंक पड़े। उनका नाम! उनको सी० आई० ई० की पदवी मिल गई!

कम्पेनियन आफ दी इंडियन एम्पायर। वही एम्पायर जिसने उनके दोनों बेटे उनसे छीन लिए थे। समरेन्द्रबाबू उठे, लड़खड़ाते हुए बिस्तर से उतरे और एक झटके के साथ रेडियो को बन्द कर दिया। "हाय, हाय, हाय!" उनके गले से सिसकियों की आवाज उनकी हर साँस के साथ निकल रही थी। "हाय, हाय, हाय!"

जिस वरदान के लिए वह बरसों से तरस रहे थे वह आखिरकार उनको मिल गया था, पर इस समय वह उनको एक श्राप के समान मालूम हो रहा था—एक मनहूस श्राप के समान!

टेलीफोन की घण्टी फिर बजी। कितना कर्कश और भयानक था

उसका स्वर। घण्टी आधे मिनट तक बजती रही फिर समरेन्द्रबाबू ने अपने निर्जीव हाथों से टेलीफोन उठा लिया और किसी नई विपदा की सूचना की प्रतीक्षा करने लगे। अब और कौनसी नई मुसीबत आने वाली है?

बंगाल राइस लिमिटेड का मैनेजर बात कर रहा था। वह बहुत बड़ा सौदा, जिसका बहुत दिनों से इन्तजार था, किसी क्षण भी तै होने वाला था। वह फौरन आदेश चाहता था। सर लक्ष्मीनाथ शहर में नहीं थे···

जो निर्जीव हाथ रिसीवर को थामे हुए था उसमें फिर जीवन का संचार होने लगा। जो आँखें आँसू बहने के कारण मन्द पड़ गई थीं उनमें जीवन की एक किरण दिखाई पड़ने लगी। ऐसा मालूम पड़ता था कि समरेन्द्रबाबू अपने व्यथित व्यक्तित्व से निकल भागेंगे और अपनी आत्मा को एक बृहत्तर शक्ति में विलीन कर देंगे और अपने वर्ग के सामाजिक यन्त्र-विधान में एक छोटा-सा पुर्जा बनकर रह जायंगे।

पर यह एक क्षणिक चिंगारी थी। उनकी शिथिल आँखें बन्द हो गईं और रिसीवर उनके बेजान हाथ से गिरकर बिस्तर पर गिर पड़ा। वह खनकती हुई आवाज लगातार तेज होती जा रही थी और उसमें चिन्ता का अंश बढ़ता जा रहा था—"हैलो! क्या आप वहाँ नहीं हैं? हैलो! हैलो!"

× × ×

प्रातःकाल के धुँधलके में पुलिस की काली लारी रिलीफ-केन्द्र के सामने आकर रुकी और केन्द्र के सेक्रेटरी की तलाश होने लगी।

राहुल को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। बहुत दिनों तक उसने अपने-आपको वैज्ञानिक अनुसंधान की आड़ में बचाए रखा था, पर अपना वह संरक्षण उसने स्वयं ही नष्ट कर दिया था। पिछले दो महीनों से उसने अपनी प्रयोगशाला में झूठ-मूठ को भी काम नहीं किया था।

बहुत कटु शब्दों में और क्रोध के आवेश में वह लड़कों में भाषण देता रहा था। उसका भाषण सुनने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। अभी परसों ही उसने भाषण दिया था। उसने कहा था यह लड़ाई भी इतिहास की दूसरी लड़ाइयों की ही तरह है। बड़े-बड़े घाघ राजनीतिज्ञों की लम्बी-चौड़ी बातें भी उतनी ही खोखली हैं जितनी फासिस्टों की। जिन चार स्वतन्त्रताओं का बहुत गुण-गान किया जाता है उनमें आजाद रहने की स्वतन्त्रता शामिल नहीं है—कम-से-कम एशियावासियों के लिए तो नहीं है। बंगाल में जो संकट इस समय है वैसा संकट इससे पहले कभी नहीं आया। यह अकाल, यह महा-विनाश विदेशी शासन का अन्तिम रूप है। यह उसके शासन की स्पष्ट टीका है जिसके लिए किसी प्रमाण की जरूरत नहीं। गवर्नरों ने और ब्रिटिश मन्त्री-मंडल के ढोंगी मन्त्रियों ने पहले तो इसी बात से इनकार कर दिया था कि बंगाल में अकाल है भी। पर जब यह खबर सारी दुनिया में फैल गई, तो उन्होंने झूठे वक्तव्य प्रकाशित किये···क्या आप सोच सकते हैं कि बीस लाख अंग्रेज इसी तरह अकाल में मर जाते—एक ऐसे अकाल के कारण, जिसे रोका जा सकता था और सरकार के कान पर जूँ तक न रेंगती, उसकी कोई आलोचना करने वाला न होता, उसे कोई पश्चात्ताप न होता, वह कान में तेल डाले बैठी रहती। जरा सोचिए हमारी स्त्रियाँ आत्म-हत्या करके मर गईं, केवल इसलिए कि उनके पास अपनी लाज ढकने के लिए कपड़ा नहीं था और हिन्दु-स्तानी मिलों का बना हुआ वही कपड़ा जो उनके लिए प्राप्य नहीं था फौज को दिया जा रहा है। संकट के इस समय हमारे वह देश-भक्त, जनता के विश्वासपात्र नेता, जो इस महाविनाश से मुक्त होने के लिए जमीन-आसमान एक कर देते, उनको जेलों में बन्द करके सड़ाया जा रहा है। बंगाल के वह बीस लाख अकाल-पीड़ित, जिनको गवर्नरों और मन्त्रियों ने बड़ी निश्चिन्तता से और अहिंसात्मक ढंग से मौत के मुँह में पहुँचा दिया, पुकार-पुकारकर यही कह रहे हैं—"भारत छोड़ो!"

उसके स्वर में क्रोध की ज्वाला की गरमी थी। और स्वर को जरा शान्त करने के लिए वह एक क्षण के लिए रुक गया। "भारत छोड़ो," सारे देश से आवाज़ आई। "हम अब तुमसे कोई बहस करना नहीं चाहते," सारे देश का यही कहना था। तुमने हमारे साथ कुछ भलाई जरूर की है, पर बुराई बहुत ज्यादा की है। तुमको अपनी भलाई का बदला पूरी तरह मिल चुका है। हमारा-तुम्हारा हिसाब साफ हो गया है। अब भगवान् के लिए तुम यहाँ से जाओ!

वह कहता रहा कि गुलामी से स्वतन्त्रता प्राप्त करना स्वतः कोई लक्ष्य नहीं है। यह एक संघर्ष और एक नये जीवन का साधन-मात्र है—उस संघर्ष का साधन, जो हमें अकाल के बाद की संकटमय विनाशकारी परिस्थितियों से बचने के लिए करना पड़ेगा; और ये संकटमय विनाशकारी परिस्थितियाँ इस महाविनाश के बाद कई दशाब्दियों तक बाकी रहेंगी। इस नए जीवन का साधन, जिसमें भूख न होगी, भय न होगा, शोषण न होगा और जिसमें हर व्यक्ति की पूर्ण सुरक्षा होगी। इस महान् दैत्य का भारी बोझ जब हमारे ऊपर से उतर जायगा तब हम सारी जनता के लिए एक बेहतर जीवन-व्यवस्था का निर्माण करने का प्रयास आरम्भ कर सकते हैं, संसार की मानव-संख्या के पाँचवें भाग के लिए मनुष्यों का-सा भविष्य बनाने का प्रयत्न कर सकते हैं।

वह लड़कों के सामने इसी प्रकार घंटे-भर तक भाषण करता रहा था। फिर इसमें आश्चर्य की क्या बात थी कि सरकार देश को उससे बचाना चाहती थी।

पुलिस के अफसर ने उसे कुछ क्षण का अवकाश दिया कि वह अपने घर वालों से टेलीफोन पर बात कर ले। वह उनको किसी तरह भी जगाना नहीं चाहता था। मंजु नन्हीं खुक्खू को सीने से लगाए सुख की नींद सो रही होगी, उसे ठेलकर जगाना पड़ेगा। परन्तु वह कम-से-कम एक बार उसकी आवाज़ सुने बिना कैसे जा सकता था, क्योंकि वह

आवाज तो अब बहुत दिनों तक सुनने को नहीं मिलेगी। पहले वह पिताजी से बात करेगा। उनके कमरे में टेलीफोन था।

मालूम पड़ता था कि पिताजी जाग रहे थे, क्योंकि उन्होंने घण्टी बजते ही उत्तर दिया था।

"पिताजी, मैं आपसे विदा माँगता हूँ। मुझे गिरफ़्तार कर लिया गया है।"

समरेन्द्रबाबू इस प्रकार बोल रहे थे जैसे उनके गले में कुछ अटका हो।

"तुम भी, राहुल ?" फिर कुछ क्षण तक खामोशी रही। "राहुल, मैं अंग्रेज़ी में इसलिए बात कर रहा हूँ कि दूसरे कमरे में तुम्हारी माँ न सुन लें। बहुत बुरा समाचार है। कुणाल का नाम उन सैनिकों की सूची में दर्ज कर लिया गया है जिनका कहीं पता नहीं चलता। मेरे पास नई दिल्ली से तार आया है।" और फिर वह इस प्रकार बोलने लगे, मानो प्रार्थना कर रहे हों, "राहुल, तुम्हारी राय में क्या कुणाल सचमुच···" उनका स्वर रुँध गया, वह आगे कुछ न कह सके।

राहुल ने टेलीफोन पर अपना धैर्य बनाये रखने का प्रयत्न किया और बहुत शान्त स्वर में बोला—"पिताजी, न जाने कितने सिपाही और अफ़सर इस सूची में शामिल कर लिए जाते हैं और वह फिर लौट आते हैं। आप चिन्ता न कीजिए। कुणाल को हद-से-हद शत्रु ने कैद कर लिया होगा।"

"क्या इसकी सम्भावना नहीं है कि वह अपनी फौज के पास वापस पहुँच गया हो ···"

"बिलकुल। यह तो अक्सर होता है। पिताजी, मेरे पास समय बहुत थोड़ा है। आप जरा मंजु को टेलीफोन पर बुला दीजिए।"

और उनके रुँधे हुए गले से रुक-रुककर आवाज निकली—"बेटा, भगवान् तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

मंजु को उसकी गिरफ्तारी का ज्ञान था। पिताजी ने उसे पहले ही

बता दिया था ताकि उसे सहसा आघात न पहुँचे। वह शान्त थी और मानो किसी गुप्त शक्ति के कारण उसमें नई ताकत आ गई थी।

"तो, तुम अपनी नई यात्रा पर जा रहे हो ?"

"मंजु," उसने कहा, "तुम जानती थीं कि एक-न-एक दिन तो यह होने वाला ही है। ऐसा नहीं है कि मैं जान-बूझकर इसकी कोशिश कर रहा था, पर मंजु मैं अपने-आपके प्रति तो सच्चा रहना ही चाहता था।"

"प्रिय," उसके शब्दों की कोमलता ने उसका आलिंगन किया, "मैं भी तुम्हारे ही मार्ग पर शीघ्र आऊँगी।"

"तुम, मंजु ?" उसके स्वर में पीड़ा थी।

एक क्षण की खामोशी के बाद, "मैं अब वैसी मूर्ख नहीं हूँ जैसी पहले थी, तुम तो जानते हो।"

हाँ वह जानता था। मंजु में बड़ी तेजी से परिवर्तन आया था। एक बार परिवर्तन आना शुरू हो जाय तो औरतों में मर्दों की अपेक्षा बड़ी जल्दी परिवर्तन आता है। मंजु में एक नई उमंग थी, अब उसमें वह पहले की-सी उल्टी-सीधी धारणाएं न थीं, वह बिलकुल निडर बन गई थी। राहुल को उस पर गर्व था।

"खुक्खू तुम्हें बहुत याद करेगी···वह रो-रोकर जान निकाल देंगी।"

पुलिस-अफसर ने उससे कुछ कहा और राहुल ने टेलीफोन रख दिया। उसे ऐसा सुनाई दे रहा था जैसा खुक्खू अपने पिता के लिए रो रही है। फिर उसको आँसुओं से भीगा हुआ उसका चेहरा दिखाई देने लगा और वह उसे अपनी गोद में लेने के लिए बेचैन हो गया।

काली मोटर उसको लेकर प्रातःकाल के धुँधलके में तेज़ रफ्तार से चली जा रही थी। उसमें दस और कैदी भी थे। क्रोध और चेतावनी के स्वर में बन्दियों ने पराधीन जनता की रण-हुंकार का नारा लगाया, "बन्दे मातरम् !" और जिन लोगों ने सड़क पर इस स्वर को

सुना उन्होंने जवाब दिया, "बन्दे मातरम् !" मोटर तीव्र गति से चलती रही।

राहुल अपने-आप में खोया हुआ था। समय के लम्बे पथ पर, यातना और एकान्त के भय को वह बहुत पीछे छोड़ आया था। एक व्यक्ति की हैसियत से उसके साथ क्या होता है इसकी उसे तनिक भी चिन्ता न थी। उसे चिन्ता केवल इस बात की थी कि जनता को क्या होता है। वह उनके प्रति भी बिलकुल उदासीन था जिन्होंने उसे बन्दी बनाया था। उसके विचारों में न घृणा थी, न क्रोध था, वह भावनाओं से मुक्त निर्वाण की दशा में था।

मोटर जब गंगा के पुल पर से गुजरने लगी तो वह नदी को एक बार देखने के लिए खिड़की से बाहर झाँकने लगा।

वह एकदम चौंक पड़ा। उसने मोटर की बत्ती के प्रकाश में देखा कि एक स्त्री पुल के किनारे-किनारे लगी हुई छड़ को फाँदने का प्रयत्न कर रही है। "रोको ! देखो !" उसने चिल्लाकर सिपाही से कहा, पर उसकी बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। उसे केवल पत्थर के बने हुए चेहरे और पत्थर की आँखें दिखाई दीं। लाचार होकर वह फिर नदी की ओर देखने लगा। उसी क्षण दस कण्ठ स्वर एक साथ पुकार उठे, "बन्दे मातरम् !"

उसने देखा कि स्त्री रुकी और उसके पाँव लड़खड़ा गए। फिर उसने देखा कि वह अपना हाथ उठाकर अपने मुख के पास ले गई और उसका सिर उसकी गरदन पर पीछे की ओर घूमा, इस भय से कि कहीं किसी ने उसे देख न लिया हो। क्या वह अपनी असीम निराशा से मुक्त हो गई है ? शायद वह बच जायगी। उसकी आँखें उत्सुकता से उसे उस समय तक देखती रहीं जब तक कि मोटर पुल के पार होकर मुड़ नहीं गई।

एक और बन्दी भूख के कारागार से भागने का प्रयत्न कर रहा है, उसने एक गहरी आह खींची। वह यह नहीं जानता था कि यह स्त्री

वही माता थी जिसके लिए उसकी आँखें सदा बेचैन रहती थीं—वही किसान माता।

वह होंठ मजबूती से बन्द किये हुए मन-ही-मन हँसा और सोचने लगा कि यदि उन चार स्वतन्त्रताओं में आजाद होने की स्वतन्त्रता शामिल नहीं भी थी, पर उसके अकाल-पीड़ित देश में उन चारों में से तीसरी स्वतन्त्रता तो थी ही—भूख से स्वतन्त्रता; और इसका प्रत्यक्ष-प्रमाण उसकी आँखों के सामने था।

व्यंग्य के भाव की जगह अब उसकी आँखों में उदासी का अन्धेरा था और उसकी आँखों के सामने अनन्त व्यथाओं का चित्र घूम रहा था—उन लाखों लोगों का चित्र, जो एक-एक दाने के लिए तरसकर मर गए थे; उन लाखों लोगों का चित्र, जो अब बीमारियों का शिकार होकर मर रहे थे; उन लाखों लोगों का चित्र, जिनका घर-बार सब छूट गया था और जिनके सामने जीविका कमाने का कोई उपाय नहीं था, जिनके शरीर और आत्मा दोनों नष्ट हो चुके थे, जो मानवता का भग्नावशेष-मात्र थे। जेलखाने उन स्त्री-पुरुषों से भरे हुए थे, जिन्होंने सबके लिए एक स्वतन्त्र जीवन की माँग करने का साहस किया था। कोई दूसरा शत्रु देश को अपने अधीन बनाकर इससे अधिक तबाही नहीं ला सकता था।

जेलखाने की दीवारें सामने दिखाई दे रही थीं।

फाटक के सामने एक और मोटर आकर रुकी और इसमें से गाने की आवाज आई। मोटर देखने में लाश ढोने वाली गाड़ी मालूम होती थी। बंदी गाना गा रहे थे और प्रतीक्षा कर रहे थे कि जेल का फाटक कब खुले और उनको निगल जाय। उनके स्वरों में पराजय की भावना नहीं, बल्कि एक अज्ञात उत्साहमय विजय का उल्लास था।

ओदेर बाँधन जत सख्त हबे
मोदेर बाँधन घुचबे,

ओदेर आँखि जत रक्त हबे
मोदेर आँखि फुटबे ![1]

कवि टैगोर के यह चिर-परिचित शब्द गूँज रहे थे। कवि को जनता के उद्‌गारों का पूर्ण ज्ञान था। गाना सुनकर राहुल की उदासी दूर होने लगी। उस क्षण उसे ऐसा लगा जैसे व्यथा के बादल छँट रहे हैं और क्षितिज पर एक नव-प्रभात की ज्योति जगमगा रही है। स्वतन्त्रता आकाश से नहीं बरसेगी, और न विदेशों से भीख माँगने से मिलेगी। दुःखों और संघर्षों की दलदल में एक दिन जनता की उमंगों के बीज से स्वतन्त्रता का वह कमल खिलेगा जिसके लिए सब उत्सुक हैं—चार पँखड़ियों वाला सुन्दर कमल।

वह अकेला था और शत्रु के वश में था। फिर भी वह अकेला नहीं था। वह असंख्य जनता के तूफान की एक लहर था। उस असंख्य जनता को कैद करने के लिए न किसी में जेलखाने बनाने की शक्ति थी और न जञ्जीरें ढालने की। उसकी आँखों में एक अपार उल्लास की चमक थी। उसका चेहरा विजय-भावना की एक अनोखी ज्योति से दमक रहा था। उसने औरों की आवाज में आवाज मिलाई :

ओदेर आँखि जत रक्त हबे,
मोदेर आँखि फुटबे !

---

१. उनकी आँखें गुस्से से जितनी लाल होती हैं उतनी ही हमारी आँखें और खुल जाती हैं, वे जंजीरों को जितना ही कसते हैं जंजीरें उतनी ही ढीली हो जाती हैं !